दशोपनिषद्भाषांतर।

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-

श्रीमदच्युतानन्दगिरिविरचित।

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तित्तिरि, ऐतरेय, छांदोग्य, बृहदारण्यक इन दश उपनिषदोंका यथावत् सुस्पष्ट शांकर-भाष्यानुसार वर्णन किया है.

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

बम्बई.

संवत् १९९४, शके १८५९.

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, बम्बई.

प्रस्तावना।
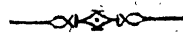
परब्रह्मरूपी परमेश्वरकी जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा भई तब तत्काल मायाने आकर परमात्माका समागम किया. तब परमात्मासे ॐकार ध्वनि उत्पन्न भया, फिर उस ॐकारसे ही सम्पूर्ण वेद और तद्द्वारा सर्व जगत् विस्तारको प्राप्त भया. यह बात सर्वत्र पुराणादिकोंमें सुप्रसिद्धतम है. उन वेदोंके मुख्य तीन काण्ड हैं,—१ ज्ञानकाण्ड, २ उपासनाकाण्ड, ३ कर्मकाण्ड इन तीन कांडोंमें वेदका मुख्य तात्पर्य ज्ञानकांडमें अधिक है. इतर दो कांडोंमें गौण तात्पर्य है. उस ज्ञानकांडके प्रतिपादन करने वासते जो वेदका मुख्य भाग है, उसको उपनिषद् ऐसा कहते हैं. इस उपनिषद् भागका वेदशीर्ष ऐसा भी द्वितीय नाम है. ऐसा उपनिषद् केवल ज्ञानसंवादका है. इसके भी अनेक अनेक विभाग हैं, जिन्होंमें अनेक अनेक संवादरूपसे ब्रह्मात्मतत्त्वज्ञानका उपदेश किया है. उन्होंमें अतिशय मुख्य ऐसे दश उपनिषद् हैं, १ ईश, २ केन, ३ कठ, ४ प्रश्न, ५ मुंड, ६ मांडूक्य, ७ तित्तिरि, ८ ऐतरेय, ९ छांदोग्य १०, बृहदारण्यक. इन दश उपनिषदोंका पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीण श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यस्वामीजीने भाष्य निर्माण करके स्पष्ट अर्थका बोध किया है.

परंतु सांप्रत संस्कृत विद्याका प्रचार कम रहनेसे उनका अर्थ साधारणोंको समझना कठिन है, यह देखकर परम दयालु श्रीशंकराचार्यसंप्रदायप्रविष्ट श्रीपरमहंसपरिव्राजक श्रीअच्युतानन्द स्वामीजीने अपनी उदारबुद्धिसे इन दशों उपनिषदोंका शांकर भाष्यके अनुसार भाषांतर करके सर्व साधारणजनोंके ऊपर अनंत उपकार प्रगट किये हैं.

यह दशोपनिषद्भाषांतर पुस्तक स्वामीजीने प्रथम एक वार छपवायके प्रसिद्ध किया था, वे सब पुस्तकें खप गईं. फिरभी शुश्रूषु मुमुक्षु सज्जनोंकी अत्यंत उत्कण्ठापूर्वक पुस्तकप्राप्तिके विषयमें लालसा उत्पन्न हुई. तब स्वामीजीने उदारतापूर्वक श्रीवेंकटेश्वरयन्त्रालयाध्यक्ष बम्बईको मुद्रित करनेकी आज्ञा दी कि, छपवाके प्रसिद्ध करो कि जिससे वेदांतशास्त्रके जिज्ञासु लोगोंकी इच्छा पूर्ण होय. तब उनकी आज्ञानुसार परम प्रसन्नतापूर्वक स्वकीय " श्रीवेंकटेश्वर " छापाखाना बम्बईमें छापके प्रसिद्ध किया था. केवल एक आवृत्ति मात्र 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' प्रेस कल्याणमें मुद्रित हुआ है, सदैवका सर्वाधिकार श्रीवेंकटेश्वर प्रेसका ही है।

सर्व सज्जनोंसे सविनय प्रार्थना है कि, इस दशोपनिषद्भाषांतर पुस्तकको संग्रह करके परमतत्त्व परब्रह्मका ज्ञान संपादन करके भवभयसे रहित होकर यहां ही जीवन्मुक्तिका अवलम्बन करो और उक्त स्वामीजीके अनंत उपकारसे उत्तीर्ण होओ.

विज्ञापयिता—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

" श्रीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्, प्रेस—बम्बई.

॥ श्रीः ॥

उपनिषत्सारकी

प्रस्तावना ।

सर्व सज्जनोंकूं विदित हो कि स्वामी अच्युतानन्दगिरिजीने अनेक मुमुक्षुजनोंकी प्रार्थनासे ईश--केनादि दश उपनिषदोंकी भाषा करी है । इस ग्रंथवरका नाम "उपनिषत्सार" है । इस ग्रंथमें बहुत अर्थ तो श्रीमच्छांकरभाष्यके अनुसार है । कहीं कहीं आत्मपुराणके अनुसार भी श्रुतियोंके अर्थ निरूपण करे हैं । और कहीं २ शारीरक आदिकोंके अनुसार ऊपरसे अपेक्षित अर्थ भी लिखे हैं । ईशादि दश उपनिषदोंमें कई उपनिषदोंका तौ मूल अर्थ संपूर्ण लिखा है । तिन किसी किसी उपनिषद्में अप्रसिद्ध उपासना लिखी है । तिन अप्रसिद्ध उपासनाओंका मुमुक्षुजनोंकूं विशेष अनुपयोग जानकरि तथा ग्रंथविस्तारके भयसे तिन अप्रसिद्ध उपासनाओंका तात्पर्य ही कह दिया है और श्रीमच्छांकरभाष्यमें उपनिषदोंके अर्थ निरूपण करते जगह जगहमें बहुत शास्त्रार्थ लिखा है, ग्रंथविस्तारके भयसे सो शास्त्रार्थ भी लिखा नहीं । केवल श्रुतियोंके मूल अर्थ ही विशेष लिखे हैं । और जो वेदांत शास्त्रके ग्रन्थ हैं तिन सर्वका मूलभूत वेदरूप उपनिषदें हैं इनके अनुसार सर्व ग्रंथ प्रमाण हैं । जो ग्रंथ उपनिषदोंके अनुसार नहीं और वेदरूप उपनिषदोंसे विरुद्ध है, सो ग्रंथ देवगुरुबृहस्पतिकरि रचित भी प्रमाण नहीं औरकी तौ क्या गिनती है । यातें सर्व वेदांतशास्त्रके ग्रंथोंकी मूलभूत उपनिषदोंका विचार मुमुक्षुजनोंको अवश्य करना चाहिये । परंतु जिन मुमुक्षुजनोंका संस्कृत उपनिषदोंके विचारनेमें सामर्थ्य नहीं है, उन मुमुक्षुजनोंके वासते श्रीस्वामी अच्युतानन्दगिरिजीने संक्षेपसे सरल तथा अतिउत्तम भाषामें उपनिषदोंका सुन्दर अर्थ लिखा है । इस ग्रंथमें विशेषसे तौ ब्रह्मका ही निरूपण है । कहीं ब्रह्मज्ञानका

निरूपण है । कहीं ब्रह्मज्ञानके साधन विवेक वैराग्य गुरुभक्ति सत्य-संभाषण ब्रह्मचर्यादिकोंका निरूपण है । कहीं ब्रह्मज्ञानके फल जीवन्मुक्तिका निरूपण है और कहीं विदेह कैवल्यका निरूपण है । और कहीं उपयोगी अर्थका निरूपण ऊपरसे भी करा है । सो भी श्रुति अर्थकी स्पष्टताके अर्थ है । और या ग्रंथमें वारंवार ब्रह्मादि पूर्व कहे पदार्थोंका ही निरूपण करा है । यातें या ग्रन्थका विचार मनन निदिध्यासनरूप है । और या ग्रन्थके विचारनेसे ब्रह्मबोधद्वारा मोक्षकी प्राप्ति होवे है । और वैराग्यादि साधन उत्पन्न होवे हैं । प्रथम उत्पन्न भये तिन वैराग्यादिकोंकूं दोषदृष्टि आदिकोंके निरूपणद्वारा दृढ करनेहारा यह ग्रंथ है । और परम उदार सर्वके उपकारविषे आसक्तचित्त विदितकीर्ति तथा याज्ञवल्क्यादिकोंकी न्याईं ब्रह्मविद्वरिष्ठ सर्वदा अपरिलुप्तज्ञानस्वरूप निखिलभूपालपूज्य भावनगरमें सर्वोपरि प्रधान नगरवर श्रीगौरीशंकरजी मंडलीवाले श्रीस्वामिअच्युतानन्दगिरिजीकूं अत्यंतप्रीतिपूर्वक चातुर्मास्य ठहरावते भये । ते श्रीगौरीशंकरजी निखिल संसारकूं असाररूप जानते हुए परम वैराग्यवान् संन्यासाश्रमकूं विधिवत् ग्रहण करते भये । संन्यासाश्रममें तिनका नाम श्रीस्वामिसच्चिदानन्दसरस्वती होता भया । ते श्रीस्वामिसच्चिदानंदसरस्वतीजी या " उपनिषत्सार" ग्रंथकूं मुमुक्षुजनोंके विचारने विषे अतिउपयोगी मानते हुए अपने पूर्व आश्रमके आज्ञा माननेवाले पुत्रवर श्रीविजयशंकरजी तथा श्रीप्रभाशंकरजीकूं छपानेवासते आज्ञा करते भये । और श्रीस्वामिसच्चिदानन्दसरस्वतीजीके ही पूर्व आश्रमके संबंधी देशाई श्रीसंतोषरामजी भावनगरमें संन्यासीजनोंके निवास करने योग्य अति उत्तम स्थानकूं बनवावते भये । और ता स्थानमें संन्यासीजनोंके वासते अन्नक्षेत्रकूं भी बांधते भये । और संसारकूं असार जानकरि वैराग्यकूं प्राप्त हुए संन्यासाश्रमकूं

विधिवत् ग्रहण करते भये । संन्यासाश्रममें तिनका नाम श्रीस्वामीस्वयंप्रकाशाश्रम होता भया । तिन श्रीस्वामीस्वयं-प्रकाशाश्रमजीके पूर्वाश्रमके पुत्र नागरवर अतिउदार बुद्धिके सागर सच्छास्त्ररसिक शंकरभक्त संन्यासिजनसेवक प्रथित-कीर्त्ति श्रीहरिप्रसाद देशाईजी जो कि श्रीस्वामिसच्चिदानन्द सरस्वतीजीकी आज्ञामें वर्तमान हैं । तिन श्रीहरिप्रसाद देशाईजी-कूंभी श्रीस्वामिसच्चिदानन्दसरस्वतीजी इस ग्रंथके छपवानेकी आज्ञा करते भये । ये तीनों नागरवर मिलकरि प्रीतिपूर्वक या ग्रंथकूं छपवाते भये "परोपकाराय सतां विभूतयः" उत्तम सत्पुरुषोंकी विभूतियां परपुरुषोंके उपकारवास्ते होवें हैं । जा विभूतिसे कुछ उपकार नहीं होता सो विभूति सर्व ही निष्फल है । या ग्रंथवरके छपवानेसे यह ग्रंथ सुलभ होवेगो । अनेक मुमुक्षुजन इस ग्रंथकूं विचारकरि ज्ञानद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवेंगे । इससे अधिक और क्या उपकार है । जो कोई पुरुष किसी पात्र पुरुषकूं अन्न जल वस्त्रादिकोंका भी दान करता है सो दाता पुरुषकूं उत्तम लोककी प्राप्ति शास्त्रोंमें कही है । जबी मोक्षरूप परमपुरुषार्थ के प्राप्त करनेहारे या ग्रंथकी मुमुक्षु जनोंकूं अल्प द्रव्यसे सुलभता होवेगी, तब सुलभता करनेवाले पुरुषकूं उत्तमोंसे उत्तम फल कैसे नहीं प्राप्त होवेगा, किन्तु अवश्य ही प्राप्त होवेगा । परंतु खेद यह है जो दृष्टफलार्थी पुरुष या संसारमें बहुत हो गये अदृष्टफलार्थी उत्तम पुरुष न्यूनसे न्यून होते चले जाते हैं । श्रीस्वामिसच्चिदानन्द सरस्वतीजी अति उत्तम हैं । इन जैसा संसारभरमें दुर्लभ है । शोक है कि वह अब मोक्षको प्राप्त हो गये अब उनके चिरंजीव दोनों पुत्र धर्मात्मा परम विवेकी वर्तमान हैं, परमेश्वर उनको दीर्घायु करे ।

भवानीशंकर वि० नरोत्तम द्विवेदी.

श्रीः ।

दशोपनिषद्भाषांतरानुक्रमः ।

समाप्तोऽयमनुक्रमः ।

ॐ

दशोपनिषद्भाषान्तरम् ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

अथ ईशोपनिषद्भाषांतरम् ।

मंगलाचरणपूर्वकग्रंथकरणप्रतिज्ञा ।

नत्वा गणपतिं देवं श्रीव्यासं शंकर प्रभुम् ॥
प्रकृतेन वदिष्याम ईशाद्यर्थमविस्तरम् ॥ १ ॥

सर्वविघ्नविनाशक श्रीगणपतिदेवकूं प्रणाम करि तथा श्रीनारायणरूप व्यासभगवान्कूं प्रणाम करि तथा सर्वके प्रभु श्रीशंकराचार्योंकूं प्रणाम करि हम भाषावाणीसे ईशादि उपनिषदोंके अर्थकूं संक्षेपसे कथन करेंगे। प्रथम ईशावास्य यजुर्वेदकी उपनिषत्के अर्थकूं कथन करते हैं। ईश जो परमात्मा है तिसने यह जगत् व्याप्त करा है। जैसे मृत्तिकाने घटादि व्याप्त करे हैं। अभिप्राय यह जैसे मृत्तिका ही घटादिरूपसे स्थित हो रही है। मृत्तिकासे भिन्न कदाचित् भी घटादिक नहीं है। तैसे परमात्मा ही जगत्रूपसे स्थित हो रहा है। यातें जो कुछ नाम रूप जगत् या पृथ्वी मंडलमें प्रतीत होवे है सो ईश्वरसे पृथक् नहीं। और ईश्वररूप ही जीवात्मा है, यातें जीवात्मासे भी यह जगत् पृथक् नहीं। ऐसे अपने स्वरूप आत्मासे विमुख करनेहारे जो स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थ हैं

तिनमें रागकूं त्याग करि अपने आत्माका पालन करो और *किसीके धनकी इच्छाकूं मति करो। धन तौ झूठा होनेसे किसी*का भी नहीं है। आत्माका पालन यह है। जैसे गंधर्वनगर आकाशसे भिन्न नहीं तैसे यह जगत् परमात्मासे भिन्न नहीं यातें नामरूपजगत्में सत्यत्वबुद्धिका त्याग करो और आत्माके निश्चयवास्ते वेदांत श्रवण आदिकोंमें प्रवृत्त होवो। यह ही आत्माका पालन है ताकूं करो। ऐसे अधिकारी पुरुषोंकूं वेदभगवान् उपदेश करे हैं॥ १ ॥ अब आत्मज्ञानमें साधनोंके अभावसे अनधिकारी पुरुषोंकूं कर्मका उपदेश द्वितीय मंत्र करे है। पुरुष शतवर्ष कर्म करता हुआ ही जीवनेकी इच्छाकूं करे। ऐसे कर्म करते हुए तुम पुरुषमें कर्मका संबंध नहीं होगा। इससे दूसरा प्रकार बंधनरूप कर्मसे छूटनेका नहीं है॥ २ ॥ आगेका मंत्र अज्ञानी पुरुषोंकी निंदाकूं करे है। जे विद्वान् पुरुष आत्मामें प्रीतिवाले हैं तिनोंका नाम सुर है तिनसे भिन्न अज्ञानी देवादिक भी असुर हैं। तिन ब्रह्मबोधरहित असुरपुरुषोंकरि प्राप्त होने योग्य जे पुण्य पाप कर्मका फल लोक हैं तिन लोकोंका नाम असूर्य है। ते असूर्यनामा लोक आत्माके शुद्ध रूपकूं आवरण करनेहारे अज्ञानरूप अंधतमकरि व्याप्त हैं। तिन लोकोंकूं आत्महत्यारे पुरुष प्राप्त होवे हैं। शंका—नित्य आत्माका ते अज्ञानी पुरुष कैसे हनन करे हैं? समाधान—जैसे किसी श्रेष्ठ महात्मा पुरुषकूं मिथ्या कोई कलंक आरोपण करना यह ताकी हिंसा कही जावे है तैसे नित्य शुद्ध आत्मामें जो मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि आरोप हैं यह ही आत्माका हनन है॥ ३ ॥ अब जिस आत्माके अज्ञानकरि अज्ञानी आत्महत्यारे जन्ममरणरूप संसारमें घटीयंत्रकी न्यांई फिरे हैं। पुनः जिस आत्माके ज्ञान करि विद्वान् मोक्षको प्राप्त होवे हैं

ता आत्माके स्वरूपका निरूपण करे हैं। यह आत्मा क्रियासे रहित है तथा एक है। पुनः मनसे भी अधिक वेगवाला है। भाव यह जिस जिस पदार्थका मन संकल्प करे है ता संकल्प द्वारा ता पदार्थमें मन प्राप्त होवे है। तिस तिस पदार्थमें यह आत्मा मनके गमनसे प्रथमही व्यापक है और या आत्माकूं नेत्रादिक इंद्रिय प्राप्त होवे नहीं। तामें हेतु यह जहां जहां मनइंद्रिय जावे हैं तहां तहां यह ब्रह्मात्मा आगेही प्राप्त हैऔर यह आत्मा सुमेरुपर्वतकी न्यांई निश्चल हुआ भी शीघ्र गमन करनेहारे जे मन वायु अदिकहैं तिन सर्व-कूं उल्लंघन करि आगे जावे है। तिस परमात्माकरिके प्रेरित हुआ हि-रण्यगर्भरूप समष्टिवायु सर्व प्राणियोंके कर्मोंकूं धारण करे है। या संसारमें जो जो चेष्टा है सो सो चेतन आत्मादेवकरि ही सिद्ध होवे है। चेतनदेव विना कोई चेष्टा सिद्ध होवे नहीं ॥ ४ ॥ आत्माके स्वरूप निरूपण करनेमें मंत्र आलस्य नहीं करे हैं। यातें पूर्व कहे अत्माकूं भी पुनः कथन करे हैं। आत्माका स्वरूप अति आश्चर्य है। आत्मा वास्तवमें गमनादि क्रियारहित हुआ भी गमनादिकोंकूं करे है। भाव यह, निरुपाधिक आत्माका स्वरूप सर्वथा गमनादिकोंसे रहित है। देहादि उपाधिके संबंधसे आत्मामें भ्रांति सिद्ध गमनादि प्रतीत होवेहैं और अज्ञानी पुरुषोंके यह आत्मा कोटि योजनपर्यंत अत्यंत दूर है। ज्ञानी पुरुषोंके तौ अपना स्वरूप होनेसे अत्यंत समीप है और यह आत्मा सर्व प्रपंचके अंतर बाहिर परिपूर्ण है ॥ ५ ॥ अब उक्त आत्माका जो यथार्थ ज्ञान है ताके फलका निरूपण करे हैं। जो विवेकी पुरुष ब्रह्मासे आदि लेकरि पिपीलिकापर्यंत सर्व भूतोंकूं अपने आत्मामें कल्पित देखता है तथा तिन भूतोंमें आत्माकूं अधिष्ठान सत्तास्फूर्तिप्रदाता रूपसे देखता है। सो विवेकी पुरुष किसी दुःखकूं प्राप्त होवे नहीं

वा निंदाकूं करे नहीं ॥ ६ ॥ जिस विवेकी पुरुषके ज्ञानदशामें सर्व भूत चराचर आत्मभवकूं प्राप्त भये हैं तथा जिस विद्वान्ने गुरुशास्त्रके उपदेशसे आत्माकी एकता निश्चय करी है तिस विवेकी पुरुषके ता ज्ञानकालमें वा ता आत्मामें आवरणरूप मोहकी तथा विक्षेपरूप शोककी प्राप्ति होवे नहीं । शोकमोहकी निवृत्ति भी मूल अविद्यारूप कारणसहित होवे है । यातें बीज नाश होनेसे पुनः कदाचित् भी शोक मोह होवे नहीं ॥ ७ ॥ पुनः आत्माके वास्तव स्वरूपकूं और मंत्र उपदेश करे है । सो आत्मदेव सर्वत्र व्यापक है तथा स्वयंज्योति है । लिंगशरीरसे रहित है । तथा व्रण और नाडीसे रहित है । व्रण और नाडीसे रहित कहनेसे स्थूल शरीरसे रहित सूचना करा । शुद्ध है यातें कारणशरीरसे भी रहित है । धर्म अधर्मसे रहित है । सर्वका द्रष्टा है । मनके प्रेरनेहारा है । परिभूः है । अर्थ यह जो सर्वके उपरि है और स्वयंभूः कहिये आपही नीचे तथा आप उपरि है । सो परमात्मा प्रजापतिरूपसे सर्व प्राणियोंके कर्मोंकूं तथा तिन कर्मोंके फलोंकूं यथार्थरूपसे धारण करे है ॥८॥ अब आत्मज्ञानकी प्राप्तिविषे साधन जो चित्तशुद्धि है ता चित्तशुद्धिके करनेहारे जे कर्म तथा उपासना हैं तिनकी भिन्न भिन्न रूपसे निंदा करे हैं सो निंदा समुच्चयविधानके अर्थ है । समुच्चय कहिये उपासना करनी पुनः साथही शुभ कर्म करने । जैसे भिन्न भिन्न कर्मकी तथा उपासनाकी निंदा करी है सो दिखावे हैं । जे पुरुष केवल कर्मकूं करे हैं ते पुरुष अदर्शनरूप तमकूं प्राप्त होवे हैं और जे पुरुष केवल उपासनामें प्रीतिवाले हैं ते पुरुष दारुण तमकूं प्राप्त होवे हैं ॥ ९ ॥ कर्म तथा उपासनाकी निंदा करि अनधिकारी पुरुषोंके कर्म तथा उपासनाके त्याग करानेमें

वेदका तात्पर्य नहीं है। किंतु उपासनासहित कर्मके करानेमें वेदका तात्पर्य है। या तात्पर्यके बोधन अर्थ प्रथम कर्म तथा उपासनाका फल कहे हैं। जभी अनधिकारी पुरुषोंने भी कर्म तथा उपासना न करने होते तौ भिन्न भिन्न कर्म तथा उपासनाका फल न लिखते। लिखा तो है याते अनधिकारी पुरुषोंने चित्तकी शुद्धिवास्ते कर्म तथा उपासना साथ ही करने। भिन्न भिन्न कर्म तथा उपासनाके फलका अब निरूपण करे हैं। उपासनाका फल ब्रह्मलोककी प्राप्ति है। कर्मका फल स्वर्गलोककी प्राप्ति है ऐसे बुद्धिमान् आचार्योंके वचनकूं हमने श्रवण करा है। जे कृपालु आचार्य हमारेकूं कृपा करिके वचन कहते भये ॥ १० ॥ जो पुरुष कर्म तथा उपासनाकूं साथ ही करता है सो पुरुष निषिद्ध कर्मरूप मृत्युकूं त्याग करि देवभावरूप अमृतकूं प्राप्त होवे है ॥ ११ ॥ कार्यउपासना तथा कारण उपासनाके समुच्चय विधान अर्थ भिन्न भिन्न कार्यउपासनाका तथा कारणउपासनाका निषेध करे हैं। जे पुरुष कारण अव्याकृत नाम मायाकी उपासना करते हैं ते पुरुष अदर्शनरूप तमकूं प्राप्त होवे हैं। जे पुरुष हिरण्यगर्भ नाम कार्यकी उपासना करते हैं ते पुरुष अधिक घोर तमकूं प्राप्त होवे हैं ॥१२॥ अब एक एक अवयव उपासनाका फल प्रतिपादन करे हैं। हिरण्यगर्भरूप कार्यकी उपासनासे अणिमादि ऐश्वर्य-रूप फल प्राप्त होवे हैं कारणरूप मायाकी उपासनासे मायामें लय-रूप फल प्राप्त होवे हैं। जैसे सुषुप्तिमें लय होनेसे विक्षेपकी निवृत्ति होवे है तैसे मायामें लय होना भी फल संभवे है। ऐसे बुद्धि-मान् आचार्योंके वचनकूं हमने श्रवण करा है। जे आचार्य हम मुमुक्षु जनोंकूं कहते भये ॥ १३ ॥ जो पुरुष कार्यउपासनाकूं तथा कारणउपासनाकूं मेलकरि करता है सो पुरुष हिरण्यगर्भरूप कार्य-

की उपासनासे अनैश्वर्य अधर्म कामादिरूप मृत्यकूं दूर करि प्रकृतिमें लयरूप फलकूं प्राप्त होवे है ॥ १४ ॥ कर्म तथा उपासना इन दोनोंकरि युक्त जो तत्त्वज्ञानार्थी पुरुष है सो अधिकारी मरणकालविषे आदित्यभगवान्के आगे प्रर्थना करे है तिन प्रार्थना मंत्रोंके अर्थकूं दिखावे हैं। हे सूर्य ! सत्य परमात्माका स्वरूप जो आदित्य मंडलमें स्थित है सो प्रकाशमय पात्रसे आच्छादित है, यातें प्रतीत होवे नहीं। सत्य परमात्माका उपासक जो मैं हूं तिसमें उपासकके अर्थ आवरणकूं दूर करो जिससे मैं सत्य परमात्माका दर्शन करूं ॥ १५ ॥ हे जगत्पालक सूर्य ! हे एकले गमन करनेहारे हे सर्वके नियंता ! हे रसोंके अंगीकार करनेहारे ! हे प्रजापतिके पुत्र ! अपनी रश्मियोंकूं दूर करो। रश्मियोंके उपसंहार करनेसे तुमारे प्रकाशरूपकूं तथा कल्याणरूपकूं मैं प्रत्यक्ष करूं। मैं उपासक भृत्यकी न्यांई नहीं याचना करता किंतु आदित्य मंडलमें स्थित पुरुष मैं हूं। स्वयंज्योतिरूप ही मेरा वास्तवरूप है ॥ १६ ॥ मेरे प्राण परिच्छिन्न अभिमानकूं त्याग करि समष्टिवायुरूप हिरण्यगर्भकूंप्राप्त होवें। कर्म तथा उपासनाके संस्कारसहित जो यह मेरा लिंगशरीर है सो यह लिंगशरीर या स्थूलशरीरसे बाह्यगमन करै और यह मेरा स्थूल शरीर भस्मीभावकूं प्राप्त होवे। मैं स्थूल शरीरसे भिन्न हूं यह पंचभूतोंका कार्य देह मेरा स्वरूप नहीं है। अब मरणकालमें उपासक अपने मनकूं कहे हैं। हे मन ! पूर्व जा देशमें तथा जा कालमें जिस पदार्थकूं तू प्राप्त होता भया है, तिस पदार्थकूं तू संकल्पसहित कर्मकरिके ही प्राप्त होता भया है। संकल्पसहित कर्मोंसे विना किंचित् मात्र भी प्राप्त भया नहीं। इसप्रकारका संकल्पका तथा कर्मका प्रभाव अभी किस वास्ते तुमने विस्मरण करा है। विहित उपासना तथा विहितकर्मके स्मरणका काल प्राप्त भया है यातें जे तुमने बाल्यादि

अवस्थाविषे विहित कर्म तथा विहित उपासना करे हैं तिनकूं स्मरण करो ॥१७॥ ऐसे मनकूं वारंवार कहिकरि अब अग्निदेवताके आगे प्रार्थना करे है । हे अग्ने ! आप हमारेकूं सुखके भोगवास्ते देवयानमार्गकरिके ब्रह्मलोकविषे ले चलो । कैसा है देवयानमार्ग जो प्रकाशमान तथा सर्व दुःखसे रहित है और पापी जे काम क्रोधादिक हमारे शत्रु हैं तिनका नाश करो।जे हमने शुभ कर्म और उपासना करे हैं तिनको जानकरि हमारेकूं ब्रह्मलोकविषे ले चलो और आपके उपकारकूं हम निवृत्त नहीं करि सकते यातें हम अधिकारी जनोंका आपके ताईं वारंवार नमस्कार होवे ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः । ॐ तत्सत् ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य–श्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्ट-परमहंस-परिव्राजक–स्वामिअच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे ईशावास्यार्थनिर्णयः ॥ १ ॥

॥ इति ईशोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ १ ॥

ॐ

अथ केनोपनिषद्भाषांतरम् ।
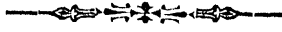
ॐ नमः परमात्मने । अब सामवेदकी केनउपनिषत्के अर्थको दिखाते हैं । केनउपनिषत्का नाम ही तलवकार है । कोई एक मुमुक्षु इस लोकके भोगोंसे तथा परलोकके भोगोंसे विरक्त हुआ या प्रकारके विवेककूं प्राप्त भया जो आत्मा नित्य है तासे भिन्न सर्व प्रपंच अनित्य है और शमदमादिक साधनोंसहित तथा उत्कट मोक्षकी इच्छासहित हुआ ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठगुरुकी शरणकूं प्राप्त भया । गुरुशिष्यद्वारा कथनसे ब्रह्मविद्या शीघ्र बुद्धिमें स्थित होवे है ऐसे भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजीने लिखा है तिनके अनुसार हमने भी अवतरणिका किंचित दिखाई है। अब उपनिषतके अक्षरोंका अर्थ निरूपण करे हैं । शिष्य प्रश्न करे हैं। हे गुरो ! यह मन किसकरि प्रेरण करा अपने अनुकूल पदार्थमें प्राप्त होवे है और किसी चेतनप्रेरक विना तो या जड मनकी स्वतंत्र प्रवृत्ति बने नहीं । जबी स्वतंत्र अगीकार करे तौ अनर्थके हेतुकूं जानिकरि भी दुष्ट सङ्कल्पकूं करे है सो क्लेशदाता संकल्पकूं नहीं करना चाहिये। यातें इस मनका कौन प्रेरक है यह कृपाकरि कहो और हे गुरो ! जिस प्राण विना किसी इन्द्रियकी चेष्टा होवे नहीं ऐसा मुख्य प्राण किसका प्रेरा भया चले है । यह प्राण जड भौतिक परिच्छिन्न सक्रिय होनेसे अनात्मा है यातें इस प्राणका प्रेरक कृपाकरि कहो और जिस वाक्इंद्रियकरि सर्वप्राणी शब्दकूं उच्चारण करे हैं सो वाक्इन्द्रिय किसकरि प्रेरा भया नाना प्रकारके संस्कृत भाषादि शब्दोंकूं उच्चारण करे है । तथा श्रवणइंद्रिय किस देवकरि प्रेरा भया नाना प्रकारके शब्दकूं श्रवण करे है ।

तथा नेत्रइंद्रिय किस देवकरि प्रेरा भया नाना प्रकारके हरित पीतादि रूपकूं देखे है। रसना रसकूं ग्रहण करे है। घ्राणइंद्रिय गंधकूं ग्रहण करे है। त्वक् स्पर्शकूं ग्रहण करे है। ऐसे अन्य इंद्रियमें भी जानना। स्थूल सूक्ष्म संघातका प्रेरक कौन है यह कृपा करि कहो ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यके प्रश्नकूं सुनकरि गुरु उपदेश करे हैं। हे शिष्य! जो तुमने श्रोत्र मन आदिकोंका प्रेरक पूछा है सो आत्मा श्रोत्रका श्रोत्र है, मनका मन है, वाक्का वाक् है, प्राणका प्राण है, नेत्रोंका नेत्र है। तात्पर्य यह है जो मन प्राणादिक आत्माकी सत्तास्फूर्ति करिके ही अपने अपने कार्योंकूं करे हैं। आत्माकी सत्तास्फूर्ति विना किंचिन्मात्र भी करि सकते नहीं यातें ही श्रुतिमाताने इंद्रियोंका इंद्रिय मनका मन प्राणका प्राण कह्या है। ऐसे देह इंद्रियोंके प्रेरक देह इंद्रियादिकोंसे भिन्न आत्माकूं जानकरि और देहइंद्रियादिकोंमें आत्मभावकूं त्यागकरि अधिकारी पुरुष अमृतरूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवे हैं। ता अमृतरूप ब्रह्मकूं प्राप्त भये जन्ममरणरूप अनर्थकूं प्राप्त होवे नहीं ॥ २ ॥ यह आत्मा श्रोत्रका श्रोत्र है यातें ता आत्मामें श्रोत्र प्रवृत्त होवे नहीं। तथा वाक्का वाक् है यातें वाक्इंद्रिय आत्मामें प्रवृत्त होवे नहीं। तथा मनका मन होनेसे मन भी प्रवृत्त होवे नहीं। जैसे अग्नि अपनेसे भिन्न काष्ठादिकोंका दाह करे है अपने दाह करनेमें समर्थ नहीं तैसे जे घटादिक जड पदार्थ हैं तथा अपनेसे भिन्न हैं तिनमें इंद्रिय प्रवृत्त होवे हैं। अपने अधिष्ठान आत्माके प्रकाश करनेमें श्रोत्रनेत्रादि असमर्थ हैं। हे शिष्य! मन इंद्रियादिकोंसे ही ज्ञान होवे है। आत्मा मन आदिकोंका अविषय है यातें ता अविषय आत्माकूं हम मन आदिकोंसे नहीं जान सकते और यह भी हम नहीं जानते जो अधिकारी पुरुषोंकूं आचार्य कैसे उपदेश करे

हैं। हे शिष्य ! यद्यपि यह आत्मा मन वाणी आदिकोंका अविषय है तथापि ता आत्माका निषेधरूपसे श्रुतिभगवती उपदेश करे हैं। सो ब्रह्मात्मा कार्यसे भिन्न है तथा कारणसे भी भिन्न है कार्यकारणका प्रकाश है। ऐसे कार्यकारणसे भिन्न आत्माके स्वरूपकूं हमने आचार्योंके मुखसे श्रवण करा है। जे आचार्य हमारेकूं तिस अविषयस्वभाव आत्माका उपदेश करते भये ॥ ३ ॥ हे शिष्य ! आत्माके स्वरूपकूं पुनः श्रवण करो। जो आत्मा वाणीकरि नहीं कह्या जाता और जिस आत्माकी प्रेरणासे वाणी नानाप्रकारके शब्दोंकूं उच्चारण करे है तिस प्रत्येक देवकूं तुम ब्रह्मरूप जानो। और जिसका विषयरूपसे पुरुष उपासना करते हैं सो विषय जडपरिच्छिन्न पदार्थ ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥ जा आत्माकूं मनकरि पुरुष नहीं जान सकता और जिस आत्माकरि प्रकाशित हुआ मन नाना प्रकारके संकल्प विकल्पकूं करे है ऐसे महात्मा कहते हैं ता साक्षीकूं ब्रह्मरूप जानो। और जिस परिच्छिन्न जडपदार्थको ब्रह्मरूप जानिकरि पुरुष उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं है ॥ ५ ॥ जिस आत्माकूं नेत्रकरि पुरुष नहीं देख सकता और जिस स्वप्रकाश आत्माकरि नेत्रकूं विषय करे है मेरे नेत्र हैं ऐसे पुरुष जाने हैं तिस प्रत्यगात्माकूं ब्रह्मरूप जानो। जिस परिच्छिन्न अनात्माकी पुरुष उपासना करे हैं सो ब्रह्म नहीं है ॥ ६ ॥ जिस आत्मादेवकूं श्रोत्रसे पुरुष नहीं सुन सकते तथा जिस साक्षीकरि यह श्रोत्र प्रकाशित होवे है सो साक्षी ब्रह्म है ऐसे जानो, जिसकूं विषय मानकरि पुरुष उपासना करे हैं सो ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥ और प्राणकी जो क्रियावृत्ति है तथा अंतःकरणकी जो ज्ञानवृत्ति है तिस क्रियावृत्ति तथा ज्ञानवृत्तिसहित हुआ घ्राण इंद्रिय जा आत्माकूं विषय करे नहीं और जिस

आत्माकरि प्रेरा घ्राणइंद्रिय अपने व्यापारकूं करे है ऐसे आत्माकूं तुम ब्रह्म जानो । जाकूं विषयरूप जानकरि पुरुष उपासना करे है सो विषयरूप ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसे हेय उपादेयसे शून्य ब्रह्मात्माका गुरुने शिष्यके प्रति उपदेश करा । शिष्य आत्माकूं मैं वाणीका विषयरूपसे नहीं जान लेवे या अभिप्रायसे गुरु शिष्यकी परीक्षा करे हैं । हे शिष्य ! यदि तूं माने ब्रह्मके स्वरूपकूं मैं सुखेन नहीं जानता हूं अब तुमने अल्प ही ब्रह्मके स्वरूपकूं जाना । यथार्थ ब्रह्मका स्वरूप नहीं जाना । और अधिदेव उपाधिकरि विशिष्ट ब्रह्मकूं जाना तो भी तुमने यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपकूं जाना नहीं । हे शिष्य ! मैं यह मानता हूं जो अब भी तुमको ब्रह्मका विचार करना चाहिये । विचार विना यथार्थ ब्रह्मका बोध होना दुर्घट है । ऐसे गुरुने परीक्षाके लेनेवास्ते कहा तब शिष्य एकांत देशमें स्थित हुआ जा आत्माके यथार्थ रूपका गुरुने उपदेश करा था ता आत्माके यथार्थ रूपकूं अपनी बुद्धिमें आरूढ करता हुआ गुरुके समीप प्राप्त भया या प्रकारके वचनकूं कहता भया । हे गुरो ! मैं ब्रह्मकूं जानता हूं ऐसे मैं मानता हूं ॥९॥ गुरुरुवाच । हे शिष्य ! तूं ब्रह्मके स्वरूपकूं कैसे जानता है ? शिष्य उवाच । हे गुरो ! मैं ब्रह्मकूं जानता हूं ऐसे विषयरूपसे ब्रह्मकूं मैं नहीं मानता और मैं ब्रह्मकूं जानता हूं वा नहीं जानता ऐसे मैं नहीं मानता । गुरुरुवाच । हे शिष्य ! यह तुमने विरुद्ध कह्या जो मैं ब्रह्मकूं जानता भी हूं और नहीं भी जानता । जबी तूं मानता है मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता तब मैं ब्रह्मकूं जानता हूँ यह कैसे कहता है ? जबी मैं ब्रह्मकूं जानता हूं ऐसे तूं मानता है तब मैं ब्रह्मकूं नहीं जानता यह कैसे कहता है ? ऐसे गुरुने परीक्षार्थ कहा भी परंतु शिष्य चलायमान नहीं भया और गर्जन करता हुआ अपने अनुभवकूं कहे है ।

शिष्य उवाच । हे गुरो ! जो कोई अधिकारी हमारे ब्रह्मचारियोंके मध्यमें ता आत्माके स्वरूपकूं जाने है सो मेरी कही रीतिसे ही जाने है । सो रीति यह है । ब्रह्मात्मा ज्ञात है तथा अज्ञात है इन दोनों व्यवहारोंसे विलक्षण है । जो ज्ञात अज्ञातसे भिन्न स्वप्रकाश आत्माका गुरुने शिष्यके प्रति उपदेश करा था तिस स्वप्रकाश आत्माके स्वरूपकूं शिष्यने निश्चय करके ही ज्ञात अज्ञातसे भिन्न कहा । यह गुरु शिष्यका संवाद तो समाप्त भया । अब श्रुति भगवती गुरु शिष्यके संवादसे विना ही अधिकारी जनोंकूं उपदेश करे है ॥१०॥ जो विद्वान् मन वाणीका अविषय ब्रह्मकूं मानता है सो विद्वान् ब्रह्मके स्वरूपकूं यथार्थ जानता है जो पुरुष मन वाणीका विषय ब्रह्मकूं मानता है, सो पुरुष ब्रह्मके यथार्थ स्वरूपकूं नहीं जानता । विद्वानोंके ब्रह्म अविज्ञात है । अज्ञानी पुरुषोंके ब्रह्म विज्ञात है । अर्थ यह मन वाणीका अविषय स्वप्रकाश ब्रह्म है ऐसे स्वप्रकाश ब्रह्मकूं अविषयरूपसे जाननेवाला विद्वान् यथार्थ जाने है और अज्ञानी पुरुषोंके तो देह इंद्रियादि-कोंमें आत्मत्व बुद्धि होनेसे विषयरूपसे जानते हुए भी ते अज्ञानी पुरुष यथार्थ रूपसे ब्रह्मकूं जाने नहीं ॥ ११ ॥ और जितनी अन्तःकरणकी वृत्तियां उत्पन्न होवे हैं ते सर्वहि आत्माके प्रकाशकरि प्रकाशित हुई उत्पन्न होवे हैं । आत्माके प्रकाश विना कोई वृत्ति भी उत्पन्न होवे नहीं । यातें सर्व वृत्तियोंका विषयरूपसे प्रकाश करनेहारा आत्मा तिन वृत्तियोंमें भिन्न ही स्वप्रकाश है । या आत्माके ज्ञानकरिके ही पुरुष अमृतत्वकूं प्राप्त होवे है । अर्थ यह जरामरणादिकोंसे रहित तथा आनन्दरूप जो ब्रह्मात्मा है ताकूं प्राप्त होवे है और आत्माके जाननेसे बलकूं प्राप्त होवे है । जा विद्या-रूप बलसे जन्ममरणकूं प्राप्त होवे नहीं और धन सहाय मन्त्र

ओषधि तप योग इनोंकरि होनेहारा जो सामर्थ्य है ता सामर्थ्य-करि मृत्युका तरण होवे नहीं और ब्रह्मविद्यारूप सामर्थ्यकूं तौ अपने स्वरूपसे ही प्राप्त होवे है। यातें पुनः जन्ममरणकूं प्राप्त होवे नहीं ॥ १२ ॥ यह पुरुष यदि इस जन्ममें ही अपने शुद्ध-रूपकूं जानलेवे तौ सत्यरूप तथा आनंदरूप जो ब्रह्म है ताकूं प्राप्त होवे है और जबी यह पुरुष भरतखंडमें या अधिकारी शरीरकूं पाइकरि परमेश्वरकी मायाकरि मोहित हुआ तथा तुच्छ विषयसुखमें आसक्त हुआ आनंदरूप आत्माकूं नहीं जाने है तबी इसकी बड़ी हानि होवे है। जिस हानिकरि यह पुरुष वारंवार जन्ममरणादिक दुःखोंकूं प्राप्त होवे है। तथा काम क्रोध आदिक जे चोर हैं तिनके अधीन हुआ सो अज्ञानी पुरुष स्वकर्मके अनु-सार अनेक प्रकारके उच्च नीच शरीर ग्रहणसे मुक्त होवे नहीं। इसीसे सो अज्ञानी पुरुष नष्ट हुए जैसा होवे है। यातें धैर्यवान् पुरुष प्रमादरहित हुआ आत्माकूं या अधिकारी शरीरमें ही अवश्य निश्चय करे और यह एक ही आत्मा अनेक स्थावर जंगम भूतोंमें प्रतीत होवे है जैसे वास्तवसे एकही चन्द्रमा जलपात्रोंके भेद-करि अनेक रूपसे प्रतीत होवे है तैसे एक आत्मादेव उपाधिभेदसे अनेक रूपसे प्रतीत होवे है। वास्तवसे एकही है। ऐसे सर्व भूतोंमें परमार्थसे एक ही परमात्मा अनेकरूपसे स्थित है इस रीतिके आत्म-ज्ञानसे ही अधिकारी पुरुष देहइंद्रियादिकोंमें अहंताममताकूं त्यागकरि अमृतभावकूं प्राप्त होवे हैं। अर्थ यह—जो जरामरणादिक संसार धर्मसे रहित आनंदरूप आत्मा है ताकूं ही प्राप्त होवे है यामें किंचित् भी संशय करना नहीं ॥ १३ ॥ अब ब्रह्मविद्याकी स्तुति अर्थ यक्षभगवान्की आख्यायिका लिखे हैं अथवा सर्व-संसारधर्मरहित रूपसे उपदेश करा जो ब्रह्म है तामें शून्यताकी

शंका अज्ञानी पुरुषोंकूं होवे है ता शंकाकी निवृत्तिवास्ते यक्षभगवान्की कथा है । अथवा अतिबुद्धिमान् अग्नि वायु इंद्रादि देवता भी यत्नसे उमादेवीके संवादद्वारा ही जानते भये यातें बुद्धिमान् पुरुषोंको भी ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके वास्ते यत्न बहुत करना या तात्पर्यके बोधनवास्ते यक्षभगवान्की कथा है। अब ता कथाकूं कहे हैं । एक कालमें देवता स्वर्गमें स्थित हुए ब्रह्मविद्याके प्रतापसे सर्व असुरोंसे जयकूं प्राप्त भये । जैसे अग्निकी समीपतासे पतंग नाशकूं प्राप्त होवे हैं तैसे ब्रह्मवेत्ता देवताओंकी समीपतासे सर्व असुर क्षयकूं प्राप्त होते भये। परंतु जैसे अग्निकरि तप्त लोहका पिंड तृणवस्त्रादिकोंका दाह करे है तैसे ब्रह्मरूप अग्निकरि प्रकाशमान हुए देवता असुरोंका नाश करते भये। जैसे अग्निसंबंध विना लोहपिंड किसी पदार्थका दाह करि सकै नहीं तैसे ब्रह्मरूप अग्निके सामर्थ्य विना देवतारूपी लोह असुररूपी तृणादिकोंका नाश करसके नहीं । यातें ब्रह्मतेजसे ही तिन देवतावोंकूं असुरोंके नाशका सामर्थ्य प्राप्त भया । शंका—जो कदाचित् ब्रह्मरूप बलसे भी देवता जयकूं प्राप्त भये । असुर नाशकूं प्राप्त भये । ऐसे माने तौ ब्रह्मरूप बल हम सर्वके है । काहेतें ब्रह्म सर्वका आत्मा है यातें हमारे सर्व शत्रु नाशकूं प्राप्त होइ जावें और हमारा ही सर्वत्र जय होना चाहिये । समाधान—यद्यपि ब्रह्म तौ सर्वत्र सम है । परंतु जैसे सूर्य सर्वत्र व्यापक हुआ भी सूर्यकांतमणिमें स्थित हुआ पटादिकोंका दाह करे है । अन्यमें स्थित हुआ भी दाहरूप कार्यको करे नहीं । तैसे यह ब्रह्मात्मा सर्वत्र व्यापक हुआ भी सत्त्वगुणप्रधान देवताओंके विषे विशेषकरि प्राप्त होवे है । यातें ते देवता बलवाले हुए असुरोंका नाश करते भये ।इस प्रकार ते ब्रह्मवेत्ता देवता भी भोगोंविषे आसक्त हुए हमारा

ब्रह्म सामर्थ्यसे ही जय भया है याकूं भूल जाते भये। उलटा यह मानते भये। जो हमने अपने बलसेही असुरोंका नाश करा है। जैसे कोई मनुष्य मरणपर्यंत दुःखकूं प्राप्त होइके किसी कृपालु देवता वा मुनिकी कृपासे ता दुःखसे रहित हो जावे। पुनः विषयोंमें सोई पुरुष आसक्त हुआ तिनके उपकारकूं विस्मरण करदेवे। तैसे ब्रह्मबलकी कृपा करि जयकूं प्राप्त हुए भी सर्वदेवता भोगोंमें आसक्त होकर ब्रह्मकूं विस्मरण करते भये। तिनके अनंतर रजोगुणकरि युक्त हुए ते देवता या प्रकारके अभिमानकूं प्राप्त होते भये। जा अभिमान करि पुरुष नाशकूं प्राप्त होवे है। देवता कहे हैं। हमारा ही विजय है। हमारा ही यश है। हम देवता ही महान् भाग्यवाले हैं। हमही सुंदर हैं। रूपयौवनकरि सहित हैं। हम युद्धमें बहुत कुशल हैं। हमारे आगे राक्षस क्या हैं। हमारे आगे असुरोंका बल तुच्छ है। हमारेमें शम दमादि सर्व हैं। हमारे जैसा कोई भी या ब्रह्मांडमें नहीं। ऐसे महान् गर्वकूं ते देवता प्राप्त होते भये। कैसा है गर्व जो रजोगुणसे उत्पन्न होनेहारा है। तथा पापकी उत्पत्तिका कारण है। तथा पराक्रमका और यशका नाशक है ॥ १४ ॥ ऐसे देवताओंके गर्वकूं देखकारि सो ब्रह्म पिताकी न्यांई तिन देवताओंके हितकी इच्छा करता हुआ इस प्रकारका चिंतन करता भया। यह देवता मेरी कृपासे ही सर्व असुरोंको जीतकरि महिमाकूं प्राप्त भये हैं। उपकार करनेहारा जो मैं ब्रह्म हूं। ऐसे मेरे स्वरूपकूं भूलकारि कृतघ्न पुरुषकी न्यांई अपनी स्तुति करते हुए मैं उपकारकर्त्ताकूं सर्वथा विस्मरण करते भये हैं। यातें यह अत्यंत मूढ बालक हैं। कृतघ्नता तौ महान् पाप है। जो पुरुष जिस पुरुषके अनुग्रहसे उत्कृष्टताकूं प्राप्त हुआ मोहके वशसे कदाचित् उपकारकर्ताकूं नहीं माने तौ सो कृतघ्नपुरुष शत अयुत जन्मपर्यंत

महान् दुःखकूं प्राप्त होवे है। तथा कोटि कल्पपर्यंत विष्टाविषे कृमि शरीरकूं प्राप्त होवे है। यातें ऐसे कृतघ्नतादोषकी निवृत्ति अर्थ इन अपने प्रिय देवताओंका कृतघ्नतादिक दोषोंका जनक जो गर्व है ताकूं निवृत्त करूं या प्रकारका चिंतन करिके एक अद्भुत यक्षके स्वरूपकूं अपनी मायाके बलसे सो परमात्मा धारण करता भया। कैसा है सो यक्ष? अनंत हैं नेत्र जिसके। तथा अनंत हैं मस्तक जाके। तथा सर्व जीवोंके जे मुख हैं तिन सर्व मुखोंकरि सहित है। तथा जा यक्ष भगवान्में सर्व भूत भौतिक पदार्थ प्रतीत होवे हैं। तथा सर्व शस्त्रोंकूं तथा सर्व वस्त्रोंकूं तथा सर्व मालावोंकूं तथा स्त्री पुरुष नपुंसक चिह्नोंकूं धारण करनेहारा है। ता आश्चर्यरूप यक्ष भगवानकूं देखकरि ते स्थित हुए देवता महान् आश्चर्यकूं प्राप्त होते भये। तथा यह यक्ष कौन है, कौन है या प्रकारके वचनकूं परस्पर कहते भये। भगवान्ने भी ऐसा रूप दिखाया जा रूपकूं देखकरि देवतावोंकूं महान् विस्मयकी तथा भयकी प्राप्ति भयी। महान् भयकू तथा विस्मयकूं प्राप्त हुए तिन देवतावोंके नेत्र उत्फुल्ल होते भये। तथा रोम खडे होते भये। कौन है कौन है या प्रकारका वचन ही बारंबार कहते भये। अपने प्रभावकूं सर्व विस्मरण करते भये। कोई देवता यक्षके समीप जानेकूं समर्थ नहीं भया॥ १५॥ तिसके अनन्तर ते सर्व देवता मिलकारि अग्निकूं कहते भये। हे अग्ने! तुम या यक्षके समीप जाइकरि निश्चय करो। जो यह यक्ष हमारे अनुकूल है वा प्रतिकूल है। कैसा है सो अग्नि जो अग्रगमन करनेहारा है। तथा अति बुद्धिमान् है॥ १६॥ सो अग्नि देवता इन्द्रादिकोंकी आज्ञाकूं मानकरि यक्षके समीप जाता भया। ताकूं यक्ष भगवान् पूछते भये तू कौन है? ऐसे ता यक्षके वचनकूं श्रवण करि अग्नि देवता

अभिमानसहित या प्रकारके वचनकूं कहता भया। मैं अग्नि हूं तथा मेरा नाम जातवेद है। जातवेद पदका अर्थ यह जो धनका दाता वा व्यापक। वा अत्यंत बुद्धिमान् है। या प्रकारके वचनकूं सुनकरि यक्ष कहे है। हे अग्ने! ऐसे तुमारेमें क्या बल है। अग्निरुवाच। हे यक्ष! जितना मूर्तिमान् पृथिवीमें दीखे है। ता सर्व विश्वकूं मैं अग्नि देवता एक क्षणविषे दाह कर देवों इतना मेरेमें बल है॥ १७॥ १८॥ तबी सो यक्ष मंद मंद हँसता हुआ अग्निके आगे एक शुष्क तृण राखकरि कहता भया। या तृणकूं भस्म करो। तबी ता अग्नि देवताने अति वेगकरिके तथा सर्वयत्न करिके ता तृणके दाह करनेका उद्यम करा भी परंतु तिस तृणके दाह करनेकूं समर्थ न भया तबी सो अग्नि देवता लज्जित हुआ तथा भयभीत हुआ ता देवताओंकी सभामें आइकरि सर्व देवतावोंकूं यह कहता भया। मैं या यक्षके जाननेमें समर्थ नहीं हूँ। तुम आप ही निश्चय करो॥१९॥ ऐसे सर्वदेवता अग्निके वचनकूं सुनकरि वायुदेवताकूं कहते भये। हे वायो! तुम निश्चय करो यह यक्ष कौन है तथा याका क्या अभिप्राय है। वायुदेवता तथास्तु यह कहकरि यक्ष भगवान्‌के पास आता भया॥ २०॥ ताकूं यक्ष भगवान् पूछते भये तूं कौन है? वायु कहे है। मैं वायु हूँ तथा मेरा नाम मातरिश्वा है। अर्थ यह। जो आकाशमें विचरनेहारा हूँ ॥ २१॥ यक्षने कहा तेरेमें क्या बल है? वायु कहे है मेरेमें यह बल है जो सर्व विश्वकूं अपनी कुक्षिमें गेरकरि या ब्रह्मांडसे बाह्य ले जानेकूं समर्थ हूँ। जैसे सूक्ष्मतृणकूं बालक अपने मुखमें गेरकरि कहीं अन्य देशमें ले जावे है। तैसे या जगत्‌कूं अन्य देशमें ले जानेकूं मैं समर्थ हूँ॥ २२॥ ऐसे वायुके अभिमान सहित वचनकूं सुनकरि यक्ष कहे है। हे वायो! तुम या

तृणकूं ग्रहण करो अग्निकी न्यांई वायु भी अपना सर्व बल लगाइकरिके भी जबी तृणके ग्रहण करनेकूं समर्थ नहीं भया । तबी सो वायु लज्जित हुआ तथा भयभीत हुआ देवतावोंकी सभामें आइकरि कहता भया । मैं या यक्षके जाननेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ २३ ॥ या प्रकारके वायुके वचनकूं श्रवण करि सभावासी देवता इंद्रकूं कहते भये । हे देवराज ! तुम या यक्षके अभिप्रायकूं निश्चय करो । ऐसे देवतावोंके वचनकूं मानकरि यक्षके पास इंद्र आता भया । ता इंद्रकूं समीप आता देखकरि यक्ष भगवान् ताके विशेष अभिमान निवृत्तिअर्थ अंतर्धान होता भया ॥ २४ ॥ तिस कालमें देवराज इंद्र चारों दिशावोंविषे देखता हुआ ता स्थानविषे ही स्थित होता भया । और यक्षके देखनेकी उत्कट इच्छावाला इंद्र तथा गर्व आदिक दोषरहित हुआ जा देशमें यक्ष अंतर्धान हुआ ता देशमें ही एक किसी अपूर्व स्त्रीकूं देखता भया । कैसी है सो देवी जो बहुत शोभावाली है उपमासे रहित शरीरकूं धारण करनेहारी है । ब्रह्मविद्या या नामकरिके जो प्रसिद्ध है हिमाचलकी कन्या है । अनेक स्वर्णके भूषणोंकरि भूषित है और जा ब्रह्मविद्यारूपी उमा देवीकी कृपासे संन्यासी अपने अखंडस्वरूपकूं जाने हैं । जो उमा देवी महादेव जो कामके नाश करनेहारा है ताके साथही रहे है । ता देवीकूं देखकरि इंद्र पूछता भया हे देवी ! यह अन्तर्धान भया जो यक्ष है सो कौन था ? ॥ २५ ॥ सो देवी कहे है । हे इन्द्र ! यह यक्ष तौ ब्रह्मरूप है । तुमारे अभिमानकी निवृत्ति अर्थ यक्षरूपकूं धारण करता भया है और इस ब्रह्मकी कृपा करिकेही तुम शत्रुवोंकूं जीतते भये हो तथा पूज्य भये हो तुमारा यश बल ऐश्वर्य सर्व ताकी कृपासेही सिद्ध है । तिस देवीके वाक्यकूं सुन-

करि देवता भी जानते भये। जो हमारेकूं सर्व सुख ता परमेश्वरकी कृपासे प्राप्त भया है। ऐसी देवीकी कृपासे परमेश्वरकूंही या जगत्का उपादन तथा निमित्त कारण ते देवता जानते भये ॥ २६ ॥ ता यक्षरूप ब्रह्मकूं इन्द्रदेवता तथा अग्निदेवता तथा वायुदेवता अत्यंत समीपताकरि प्राप्त होते भये। यातें यह तीन देवता और देवताओंसे अधिक हैं ॥ २७ ॥ या तीनों विषे भी इन्द्रदेवता अधिक हैं जिसमें सो इन्द्रदेवता या ब्रह्मके स्वरूपकूं उमादेवीके मुखसे यथार्थ जानता भया ॥ २८ ॥ अब ता ब्रह्मके अधिदेवरूपकूं तथा अध्यात्मरूपकूं कथन करे हैं। ब्रह्मका अधिदैवरूप तौ यह है जो समष्टि हिरण्यगर्भ भगवान्का शरीर है तिस हिरण्यगर्भके समष्टिदेहमें जो परमात्मा विद्युत्केसमान प्रकाशमान है। विद्युत्का प्रकाश तौ जड़ है तासे विलक्षण चेतनप्रकाश और अपनी समीपताकरिके सर्व प्राणियोंके इन्द्रियोंका तथा मनका प्रेरक है। सो तत्त्व ही ता ब्रह्मका वास्तवस्वरूप अधिदैवरूप है जैसे विद्युतकी उपमा ब्रह्मकूं श्रुति देती भयी तैसे नेत्रके निमीलनकी उपमा भी श्रुति देती भयी सो दिखावे हैं। नेत्रके निमीलन करनेकी न्यांई आत्माका प्रकाश है। अर्थ यह। जो ब्रह्म यक्षरूपकूं धारकरि अंतर्धानताकूं प्राप्त हुआ सो विद्युत्के प्रकाशकी न्यांई तथा नेत्रके निमीलनकी न्यांई अंतर्धान होता भया ॥ २९ ॥ अब अध्यात्मरूपकूं श्रवण करो। यह मन जो संकल्प विकल्प करे है सो या आत्मा साक्षीकरिके ही संकल्पादिक करे है। मनका विषयोंमें गमन भी साक्षी प्रत्यग्देवके ही अधीन है। स्वतंत्र मन किंचित् भी करनेकूं समर्थ नहीं ऐसा अध्यात्मरूप आत्माका है ॥ ३० ॥ ऐसा साक्षी आत्माका स्वरूप ही है अर्थ यह-जो अधिकारी पुरुषोंकरिके भजनीय है। जो पुरुष बन

इस नाम करिके ता ब्रह्मका ध्यान करे है । सर्वभूत आराधन करनेवास्ते ता पुरुषकी इच्छा करते हैं ॥ ३१ ॥ ऐसे अध्यात्म अधिदैवरूपकारि आचार्यने शिष्यकूं उपदेश करा । अब उक्त अर्थका प्रश्न उत्तरद्वारा निरूपण करे हैं । हे गुरो ! मेरेकूं उपनिषत् श्रवण करावो । गुरु कहे हैं हे शिष्य ! ब्रह्मके स्वरूपकूं कथन करनेहारी उपनिषत् तेरेकूं हम पूर्व कथन करि आये हैं ॥ ३२ ॥ साधन तौ ता ब्रह्मविद्याके यह हैं । तप ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिमें साधन है । तपका अर्थ इस स्थानमें यह है । जो मनकी एकाग्रता तथा दम भी ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिमें साधन है । दमका अर्थ यह जो बाह्य नेत्र श्रोत्र आदिक इन्द्रियोंकी स्ववशता तथा जे निष्काम कर्म हैं ते भी अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ब्रह्मविद्याके उत्पादक हैं । तप दम कर्म यह तीन ब्रह्मविद्याके प्रतिष्ठा हैं । प्रतिष्ठा कहिये स्थितके हेतु या प्रसंगमें पाद लेने । ऋग् यजु साम अथर्व यह चारि वेद ब्रह्मविद्याके अन्य अंग हैं । सर्वदा सत्यवचनका कथन यह ब्रह्मविद्याका आयतन है । अर्थ यह जो याके आश्रय ब्रह्मविद्या रहे है । सत्यवचन कहना यह ही परम धर्म शास्त्रमें प्रसिद्ध है । यातें सत्यवक्ता पुरुषमें विद्या रहे है ॥ ३३ ॥ जो अधिकारी या ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त होवे है सो पुरुष सर्व पापोंकूं तथा सर्व अनर्थके कारण अज्ञानकूं निवृत्त करि परम ब्रह्मानन्दमें स्थितिकूं पावे है जो आनन्द सर्वथा अविनाशी है ॥ ३४ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ! ॐ तत्सत् ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वामिअच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे तलवकारार्थनिर्णयः ॥ २ ॥

इति केनोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ २ ॥

ॐ

अथ कठोपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐ नमः श्रीगुरुभ्यः । अब यजुर्वेदकी कठउपनिषत्का अर्थ कहे हैं । एक उद्दालकनाम ऋषि वरुणऋषिका पुत्र होता भया । जो उद्दालक अन्नके दानसे महान् कीर्तिकूं प्राप्त भया था । सो उद्दालकमुनि विश्वजित्नामक यज्ञ करनेका आरंभ करता हुआ । सर्व धनके देनेका संकल्प करता भया और तिस उद्दालकमुनिका नचिकेता नामवाला पुत्र होता भया और उद्दालकके गृहमें धन तो गोरूपही बहुत था और अपने पुत्रमें ता ऋषिका बहुत स्नेह था सो उद्दालकमुनि अपनी गौवोंके दो विभाग करता भया । सुंदर गौवां जो दूध तथा संतान देनेवाली हैं तिनका एक विभाग किया । सो सर्व गौवां अपने पुत्रवासते रख लेता भया और दूसरा विभाग दान करनेवासते राखा । जिनका दान करना है ते गौवां ऐसी हैं । जिनोंने जल पान करि लिया है । तथा तृणादिककूं भक्षण कर लिया है । तात्पर्य यह । जो अब सामर्थ्य जिनकी जलके पीनेमें तथा तृणादिकोंके भक्षण करनेमें नहीं है । जबी जलपानादिकोंमें भी तिनकी सामर्थ्य नहीं तो ते दूध देवेंगी वा संतान देवेंगी यामें क्या आशा है ? इसी गौवोंके दानका जबी ता उद्दालक मुनिने आरंभ करा, तबी नचिकेता नामा उद्दालकका पुत्र स्वभावसेही शास्त्रमें श्रद्धावान् पंचवर्षका बालक या प्रकारके विचारकूं करता भया । जो प्राणी किसीकूं सुख देता है सो सुखदाता पुरुषभी सुखकूं प्राप्त होवे है । जो किसीकूं दुःख देवे है सो दुःखदाता पुरुषभी दुःखकूं प्राप्त होवे है । यह मेरा पिता दुःख देनेहारी गौवोंकूं ब्राह्मणोंके नांई देकरि कैसे सुखकूं

प्राप्त होवेगा ? किंतु दुःखकूं ही प्राप्त होवेगा और सुंदर गौवों जे मेरे वास्ते राखी हैं तिनकूं ब्राह्मणोंके तांई किसवास्ते नहीं देता। मेरी चिंता किसवास्ते करता है अंतर्यामीही मेरा पालक है। यातें पिताकूं मेरी चिंता करनी निष्फल है। और मैं इस उद्दालकऋषिका पुत्र हूं। पुत्र सोई है जो नरकादिक दुःखोंसे पिताकी रक्षा करे। जो दुःखसे पिताकी रक्षा नहीं करे सो पिताका मल है। पुत्रपदका अर्थ तामें घटे नहीं। याते मैं इस निषिद्धदानसे पिताकूं निवृत्त करूं। या अभिप्रायकूं मनमें धारकरि नचिकेता पिताकूं कहे है। हे पिता ! जैसे गौवां आपका धन हैं तैसे मैं पुत्र भी आपका धन हूं। मेरेकूं किस ब्राह्मणके तांई देवोगे। यह वचन नचिकेताने इसवास्ते कहा जो मेरा पिता सुन्दर गौवोंका दान करेगा अथवा मेरेसे पूछेगा। तब मैं धर्मशास्त्रके अनुसार अपना अभिप्राय कहूंगा। ऐसे पिताकूं जबी दूसरी वार कहा मेरेकूं किस ब्राह्मणके तांई देवोगे। पिता तूष्णीं रहे। जबी तीसरी वार फेर कहा तबी पिता क्रुद्ध हुआ यह कहता भया तेरेकूं मृत्युके तांई देवोंगा। या प्रकारके वचनकूं नचिकेता श्रवण करि विचार करता भया। यह जो मेरे पिताने हमारेकूं वचन कहा है इसकरिके कुछ मेरी हानि नहीं है। उलटा मेरेकूं तो पुण्यकी प्राप्ति होवेगी। काहेते जो जो शरीर उत्पन्न भया है, सो सो किसी कालमें तो अवश्य मृत्युकूं प्राप्त होवेगा। सो मुझेभी मरना तो था ही। परंतु अब पिताकी आज्ञाका पालन होगा। या पिताकी आज्ञाके पालनसे कल्याण करनेहारा और धर्म कौन है ? पिताकी आज्ञा ही परम धर्म है। ऐसे मेरेकूं पुण्यप्राप्ति अवश्य होवेगी। परंतु या पिताका मेरेमें महान् स्नेह है याते मेरे विना पिता महान् दुःखकूं प्राप्त होवेगा ता पिताके दुःखकूं

विचार करि मेरे चित्तविषे महान् क्लेश होवे है। अपने मृत्युकरि हमारेकूं किंचित्मात्र भी क्लेश नहीं है। यातें हमारेकूं अवश्य मृत्युके पास जाना चाहिये। उत्तम सो पुरुष है जो गुरु वा पिताके मनकी बातकूं समझकरि करता है। और मध्यम सो है जो कह्या मानकरि करे। अधम सो है जो कहेपर भी न करे। मेरे पिताके शिष्य बहुत हैं। तिन सर्वमें मैं नचिकेता अधमभावकूं नहीं प्राप्त होवों। उत्तमभावकूं वा मध्यमभावकूं प्राप्त होवों। उत्तम भावकी प्राप्ति वा मध्यम भावकी प्राप्ति तौ पिताकी आज्ञा माननेसे ही होवेगी। और मेरे धर्मराजके पास जानेसे धर्मराज तथा पिताजीका किंचित्मात्र भी प्रयोजन सिद्ध होना नहीं। केवल पिताकूं दुःख ही प्राप्त होगा। और जबी मैं मृत्युके पास नहीं जावों तो मेरे पिताकूं मिथ्यासंभाषणसे महान् दुःखकी प्राप्ति होगी। और मैं अधमभावकूं प्राप्त होवोंगा। यह चित्तमें धारकरि नचिकेता पिताकूं कहे है हे पिताजी! आप अपने पिता पितामहादिकोंकूं देखो तिनोंने कबी मिथ्या संभाषण नहीं करा। और दूसरे जे महात्मा या संसारमें वर्तमान हैं, तिनकूं देखो और तिनके आचारकूं धारण करो। और आपने भी अबतक आगे कबीभी मिथ्या संभाषण नहीं करा। यातें मेरेमें स्नेहकूं त्यागकरि मृत्युके पास भेजो। अपना सत्य पालन करो। और यह शरीर तौ क्षणभंगुर है। जैसे सूर्यकरि पाककूं प्राप्त हुये आम आदि फल पृथ्वीपर गिरे हैं तैसे कालभगवान्करि जीव वारंवार मृत्युकूं प्राप्त होवे हैं तथा जन्मकूं प्राप्त होवे हैं। यातें हे पिता! ऐसे क्षणभंगुर शरीरमें स्नेहकूं त्यागकरि और अपने सत्यधर्ममें स्थित होयकरि मेरेकूं धर्मराजके पास भेज देवो। इस प्रकार जबी पिताकूं नाना वाक्य कहे तबी सो उद्दालकपिता अत्यंत दुःखी हुआ भी जावो

ऐसे कहता भया। तभी नचिकेता अपने पिताकी भक्तिके बलसे तथा अपने तपके प्रभावसे तथा चित्तशुद्धिके प्रभावसे स्थूलशरीरसहित ही गमन करता भया। और आगे यमराज कहीं ग्राममें गया था। पीछे आये धर्मराजकूं यमराजके भृत्योंने यह कहा हे यमराज! नचिकेतानाम ब्राह्मण अतितेजवाला साक्षात् अग्नि आया है ताकूं प्रसन्न करो। ता नचिकेताने तीन उपवास करे हैं। उपवास करनेका तात्पर्य यह जो मेरेकूं धर्मराज ग्रहण करि लेवें अन्यथा मेरे पिताका वचन मिथ्या होगा और यमराज सर्वज्ञ सर्व जानते हुए नचिकेताकी परीक्षा अर्थ अपने किंकरोंकूं जाते हुए यह कह गये थे। जो तुमारेकूं यम नहीं ग्रहण करेगा ऐसे तुमने नचिकेताकूं कह देना। यह कहकरि तीन दिन बाहिर रहे। पीछेसे आये नचिकेताकूं यमकिंकरोंने कहा हे नचिकेता! अभी तुमारा आयु समाप्त नहीं भया यातें तुम्हारेकूं यमराज नहीं ग्रहण करेगा। तुम पृथिवीलोकमें चले जावो। ऐसे यमकिंकरोंने नाना प्रकारके वचन कहे भी परंतु नचिकेता अपने धैर्यसे चलायमान भया नहीं। ता पीछे तीसरे दिनमें यमराज अपने गृहमें आता भया। ता यमराजकूं किंकर कहे हैं। हे यमराज! अग्निकी न्याईं जो अतिथिब्राह्मण तुमारे गृहमें आया है। ताकी शांतिवासते शीघ्र ही जल आसन भोजनादिकोंसे तुम पूजन करो और हे यमराज! जिस मूढ प्रमादी गृहस्थके गृहविषे अतिथि महात्मारूप अग्नि अन्न जल आदिकोंसे सत्कारकूं प्राप्त होवे नहीं, तिस मंदबुद्धिवाले गृहस्थके या सर्व पदार्थोंकूं नाश करे है। सो पदार्थ यह है जिस पदार्थके प्राप्तिका निश्चय नहीं है ता पदार्थके प्राप्तिकी इच्छाका नाम आशा है। जा पदार्थके प्राप्तिका निश्चय है ता पदार्थके प्राप्तिकी इच्छाका नाम प्रतीक्षा है। तथा सत्संगसे होने-

वाला जो फल है ताकूं संगत कहे हैं। तथा सुखके प्राप्ति करनेहारी वाणीका नाम सूनृता है। यज्ञका नाम इष्ट है। वापी कूप तडाग आदिकोंकूं पूर्त कहे हैं। इन पदार्थोंका और पुत्र पशु आदि सर्व पदार्थोंका नाश करनेहारा गृहविषे सत्कारकूं न प्राप्त हुआ अतिथि है। यातें हे यमराज! आप अवश्य नचिकेताका पूजन करो। ऐसे वाक्य सुनकरि यमराज अत्यंत भयवान् हुआ। नचिकेताके पास जाइकरि यह कहता भया। हे नचिकेता! तुम मेरे गृहविषे तीन रात्रि भोजनादिकोंकूं न करते हुए स्थित भये हो। अब तुम मेरे पर कृपा करो तुमारी कृपासे मेरेकूं कल्याण होवे तेरेकूं मेरा वारंवार नमस्कार है और तीन दिन भोजन विना ही तुम मेरे गृहमें रहे हो यातें तुम तीन वर मांगो जैसे आपकूं अपेक्षित होवे। जो मांगोगे मैं यमराजा सत्य कहता हूं सर्व देवोंगा। यामें किंचित भी संशय करना नहीं। ऐसे जबी यमराजाने कहा तभी नचिकेता तीन वर मांगता भया। एक अपने पिताकी प्रसन्नता, द्वितीय अग्निविद्या, तीसरी ब्रह्मविद्या। अब तीनूंकूं क्रमसे निरूपण करे हैं। हे यमराज! मैं जैसे तुमारी कृपासे तुमारे लोकमें स्थित हूं सर्वदुःखरहित तथा क्रोधादिकोंसे रहित होइकरि प्रसन्नताकूं प्राप्त हूं तैसे मेरे पिता भी सर्वदुःखरहित तथा क्रोधरहित तथा संतापरहित होइकरि स्थित होवैं। जैसे मेरेकूं पूर्व अपना पुत्र जानिकरि संभाषण करते थे तैसे अबभी संभाषण करें और हे भगवन्! यह लोकमें प्रसिद्ध है जो मृत्युलोकमें जाइकरि आता नहीं तैसे मेरे पिता मेरेमें अविश्वास नहीं करें किंतु यह जानें जो सोई मेरा पुत्र है। यह पिताकी प्रसन्नतारूप मैं प्रथम वर मांगता हूं। यमराज कहे हैं हे नचिकेता! जैसे पूर्व तुमारेमें निश्चयवाले पिता होते भये तैसे अब भी मेरी कृपासे तेरेमें तैसा ही निश्चय करेंगे। दुःख

संताप क्रोधरहित होइकरि सुखपूर्वक दिनरात्रिमें भोजन निद्रादि-कोंकूं करते हुए स्वस्थचित्त होइकरि स्थित होवेंगे। अब द्वितीय वर अग्निज्ञानरूपकूं नचिकेता मांगे है। हे यमराज ! मैंने वेद-वेत्ता ब्राह्मणोंसे ऐसे सुना है। जो स्वर्गमें स्थित पुरुषकूं भय प्राप्त होवे नहीं। और हे मृत्यो ! तुमसे भयकूं प्राप्त होवे नहीं। तथा जराअवस्था व्याधि शत्रु क्षुधा तृषा शोक मोहसे भयकूं प्राप्त होवे नहीं। और स्वर्गमें पुरुष महान् आनंदकूं प्राप्त होवे है। हे मृत्यो ! ता स्वर्गका साधनरूप अग्निविद्याकूं तुम भली प्रकार जानते हो और जा अग्निविद्याके प्रभावसे कर्मी पुरुष देवभाव-रूप जो अमृतत्व है ताकूं प्राप्त होवे हैं। ता अग्निविद्याकूं मेरे ताईं कथन करो। श्रद्धावान् अधिकारीकूं तौ गुरु गोप्य वस्तुकूं भी कहे हैं। और हे भगवन् ! मैं भी आपसे श्रद्धासहित होइकरि ही पूछता हूं मेरेकूं कृपा करि अवश्य कहो। ऐसे द्वितीय वरकूं मांगने-वाले नचिकेताकूं यमराज कहे हैं। हे नचिकेता ! या स्वर्गकी साधन अग्निविद्याकूं भली प्रकारसे मैं जानता हूँ। तुम साव-धान होइकरि श्रवण करो। मैं तुमारे प्रति कथन करता हूं। हे नचिकेता ! यह अग्नि विराट्‌रूप है। यह अग्नि स्वर्गादिक लोकोंकी प्राप्तिका तथा स्थितिका कारण है। तुम जा विराट्-रूप अग्निकूं बुद्धिरूपी गुहामें साक्षीरूपसे स्थित जानो। ऐसे नचिकेताके प्रति सर्वलोकोंका कारणरूप विराट् अग्निकूं यम-राजा कथन करते भये। जितनी इष्टका जैसा रखी जाती हैं जैसा स्वरूपवाली हैं। और जे मंत्र तथा क्रियादिक हैं तिन सर्वकूं यमराजा नचिकेताके ताईं कहते भये। ऐसे नचिकेता भी यमराजाके मुखसे श्रवण करिके ता ता अग्निग्रंथका अनुवाद करता भया। पुनः यमराजा नचिकेताकी अलौकिक बुद्धि देखकरि

प्रसन्न हुए यह कहते भये। हे नचिकेता ! मैंने तीन वर देनेकी जो प्रतिज्ञा करी है सो तो मैंने पूर्ण करनी ही है। प्रथम और वरकूं तुम्हारे ताईं मैं प्रसन्न हुआ देता हूँ। जबतक यह सूर्य रहेगा तथा जबतक या संसारमें वेद रहेगा तबतक जो अग्नि तुमने मेरेसे श्रवण करा है या अग्निका नाम नचिकेता होगा। अर्थ यह नचिकेताका जो होवे ताकूं नाचिकेत ऐसे कहे हैं। दूसरा यह है जो दिव्यमालारूप वर मैं तुम्हारेकूं देता हूँ। कैसी माला है। जामें अनेक रत्न जटित हैं तथा अनेक स्थूल आमलकफलके समान जा मालामें मोती जटित हैं। ऐसी स्वर्णजटित मालाकूं कंठमें तुम धारण करो। जैसे मेघोंमें विद्युत् प्रकाश करे है तैसे नचिकेताके कंठमें सो माला प्रकाश करती भई। अब नाचिकेतनामक अग्निका माहात्म्य वर्णन करे हैं। हे नचिकेता ! जो तुमने मेरेसे अग्नि ग्रहण करा है ता अग्निका जो पुरुष तीन वार अनुष्ठान करेगा सो पुरुष माता पिता तथा गुरुकी शिक्षाकूं प्राप्त हुआ ब्रह्मलोक-प्राप्तिद्वारा जन्ममृत्युकूं तर जावेगा। अर्थ यह—जो निवृत्त करेगा अथवा या लोकमें ही अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा जन्ममृत्युके अभावरूप मोक्षकूं प्राप्त होवेगा। कैसा विराड्रूप अग्नि है जो हिरण्यगर्भसे उत्पन्न भया है और जो देवतावोंकरिके स्तुति करने योग्य है ऐसे विराट्अग्निकूं जानकरि पुरुष शांतिकूं प्राप्त होवे है। ऐसे अग्निज्ञान शोकनिवृत्तिका तथा स्वर्गप्राप्तिका तथा मृत्युपा-शनिवृत्तिका साधन मैं यमराजाने तुमारेकूं कह दिया। जा अग्निकूं तुमने दूसरा वर मांगा सो अग्नि तेरे नामसेही नाचिकेत रूप करिके कथन करा जावेगा। अब तीसरा वर मांगो। नचि-केता उवाच। हे भगवन् ! मृत्युसर्वका होना है। मेरेकूं यामें संशय यह है कोई चार्वाकादिक तौ मरणअवस्थाके अनंतर आत्मा नहीं

है ऐसे कहे हैं और तामें यह युक्ति कहे हैं । जो आत्मा देहसे भिन्न माने तौ देहसे जबी मस्तककूं पृथक् करदेवै तब जैसे ग्रीवासे रुधिर निकसे है तैसे आत्माभी निकसता प्रतीत होवै, प्रतीत तौ होवे नहीं याते देहसे भिन्न नहीं है । और नास्तिकोंकी युक्ति अनन्त है । मुमुक्षुजनोंके परमार्थमें अनुपयोगी जानकरि तिन नास्तिकोंकी युक्ति लिखी नहीं । और दूसरे वेदकूं माननेवाले जे आस्तिक हैं ते देहसे भिन्न आत्माकूं माने हैं । हमारेकूं दो प्रकारके मतकूं श्रवण करि यह संशय उत्पन्न भया है जो देहसे भिन्न आत्मा है वा नहीं ? आप कृपा करि मेरेकूं ऐसा उपदेश करो जा उपदेशसे या संशयकूं निवृत्त करि आत्माकूं जान लेवों । यह ही मैं तीसरा वर मांगता हूं । या प्रकारके नचिकेताके वचनकूं श्रवण करि यमराजा अपने हस्तकी भ्रमणरूप चेष्टाकूं करता हुआ नचिकेताकी परीक्षा वासते ऐसे कहता भया । यमराज उवाच । हे नचिकेता ! यह तौ सूक्ष्म आत्मा है । यामें देवतावोंकू भी संदेह है । ऐसे संशयग्रस्त वरके मांगनेसे क्या है ? तुम और कोई सुन्दर वर मांगो और या दुर्विज्ञेय वस्तुके पूछनेसे तुमारेकूं क्या मिलेगा?तुम या आग्रहकूं त्याग करो । मैं तो वररूपी पाशकरि बांध्या हूं मेरेकूं क्लेश नहीं देवो मेरेसे कोई और वर मांगकरि सत्यवचनरूपी पाशसे मुक्त करो । नचिकेता उवाच । हे भगवन् ! आप कहते हो जो यामें देवतावोंकू भी संशय है और आप भी दुर्विज्ञेय कहते हो और तुमारे जैसा वक्ता या संसारमें दूसरा प्रतीत नहीं होता जासे मैं अपने संशयकूं निवृत्त करूं और इस वरसे अधिक श्रेष्ठ दूसरा वर मैं मानता नहीं । यमराजा नचिकेताके वैराग्यकी परीक्षा करे हैं । यमराज उवाच । हे नचिकेता ! तुम या प्रकारके सुन्दर वर मांगो ते वर यह हैं, शतवर्षकी आयुवाले पुत्र तथा पौत्र, बहुत पशु, हस्ती, स्वर्ण, अश्व, मण्डलाधिपत्य,

चिरजीवन, धन, अपनी स्थिरजीविका, चक्रवर्ती राज्य, दिव्य मनुष्यलोकमें कामप्राप्ति, सत्यकामता, दिव्य स्त्रियां; तिन स्त्रियोंकी दासियोंका नृत्यवादित्रादिकोंविषे कुशलपना यह षोडश वर तुम नचिकेताके तांई मैं यमराजा देता हूं। यह तीसरा वर मांगो और मैंने दिव्य अप्सरा आदिक जे भोग्य तुमकूं देने वासते कहे हैं। तिनसे आनन्दकूं प्राप्त होओ और हे नचिकेता! बुद्धिमान् सो है जो सुख करनेवाले वस्तुकूं मांगे। आत्मज्ञान तौ किंचित्‌मात्र सुख करनेवाला नहीं है। याते तुम पूर्व कहे सुखजनक षोडश वरकूं मांगो। और आत्मा मर गया वा नहीं मरा तामें प्रश्न मत करो। नचिकेता उवाच। हे भगवन्! जिन स्त्री आदिक पदार्थोंकूं तुमने सुखका साधन कथन करा है। ते सर्व पदार्थ दूसरे दिनपर्यंत रहेंगे वा नहीं रहेंगे। ऐसे निश्चय नहीं करा जाता। और दुःखरूप इन विषयोंमें सुख भ्रांति मूढोंकूं हो रही है। जैसे पित्तदोषकरि दुष्टनेत्रवाले पुरुषकूं श्वेत शंख भी पीतरूप होइकरि प्रतीत होवे है तैसे दुःखरूप विषयसुख भी कामरूपी ज्वरसे उत्पन्न भया जो व्यामोह है ता व्यामोहरूपी दोषकरि दुष्टचित्त पुरुषकूं सुखरूप प्रतीत होवे है। और हे यमराज! यह स्त्री आदिक भोग तौ कूकर शूकर आदि देहमें भी प्राप्त होवे हैं। और पुरुषके इंद्रियोंका जो तेज है ताके नाश करनेहारे हैं। धर्मके तथा मोक्षके महान् विरोधी हैं और हे भगवन्! जीवन भी मैं नहीं मांगता। काहेते जो अतिदीर्घ आयुवाला ब्रह्मा है तानेभी अन्तमें मृत्युकूं प्राप्त होना है। यातें गाने बजानेवाली स्त्रियोंकी दासीगण तथा अप्सरा पुत्र पौत्र हस्ती चिरजीवन चक्रवर्तीराज्य धन स्थिरजीविका और जे आपने कहे ते सर्व अपने पास राखो। मेरेको इनकी किंचित् भी इच्छा नहीं। और हे भगवन्! जो तुमने मेरे तांई धन

देनेकूं कहा सो ता धनकरि पुरुष कदाचित् तृप्तिकूं प्राप्त होता नहीं। जैसे घृतकरि अग्नि और जैसे समुद्र जलोंकरि तृप्त होवे नहीं तैसे तृष्णावालेकी धनकरि तृष्णा निवृत्त होवे नहीं। और जबी व्यवहारमें मेरेकूं धन अपेक्षित होवेगा तौ आपके शरणमें प्राप्त जो हम हैं तिन हमकूं धन तो आप ही प्राप्त होवेगा ता धनकी प्रार्थना करनी निष्फल है। तथा जीवन भी मेरेकूं मांगके योग्य नहीं है। काहेते जो जीवन आगे ही प्राप्त है। जबी आपही स्थावर जंगमरूप जगत्के मारनेवाले मृत्यु हैं और हम आपके शिष्य हैं तथा तुमारे शरणमें स्थित हैं तौ हमकूं मरनेका क्या भय है। तातें तीसरा वर मेरेकूं आत्मविद्या ही देवो। और हे यमराज ! जबी तुमारे जैसे जरामरणसे रहित देवतावोंकी समीपताकूं या पृथ्वीमें रहनेवाला जरामरणकरि ग्रस्त यह पुरुष प्राप्त होवे तौ तुच्छ पदार्थोंकी इच्छा करनी योग्य नहीं। प्रथम तो तुमारी प्राप्ति दुर्लभ है कदाचित् दैवयोगसे तुमारी प्राप्ति भी हो जावे तौ बुद्धिमान्कूं चाहिये जरामरणादिकोंसे रहित वस्तुकूं ही प्राप्त होवे। और यह तुच्छ जो स्त्रीसुख तथा जीवन धन इत्यादिक हैं तिनकूं मांगे नहीं ! इस रीतिसे यमराजने नचिकेताकूं चलायमान करा भी परंतु सो नचिकेता चलायमान नहीं भया और यह कहता भया। हे भगवन् ! जामें देवतावोंकूं भी संशय है ऐसी दुर्विज्ञेय जो वस्तु है ता आत्माविषे ही मेरा प्रश्न है ता प्रश्नके उत्तररूपी वरसे भिन्न तो मैं किंचित् भी मांगता नहीं हूं। ऐसे योग्य अधिकारी नचिकेताकूं जानकरि यमराजा कहे हैं। यमराज उवाच। हे नचिकेता ! या संसारमें दो प्रकारका फल है एक श्रेय है दूसरा प्रेय है। अर्थ यह ज्ञानकरि प्राप्त होनेहारा जो नित्य फल है ताकूं श्रेय कहे हैं। और मूढ पुरुषोंकी इच्छाका विषय तथा क्षणभंगुर जो विषयानन्द है ताकूं

प्रेय कहे हैं। ऐसे दोनों भिन्न भिन्न हैं। यह दोनों पुरुषकूं बाधते हैं। अथ यह पुरुष आपकूं अधिकारी मानकरि तिनमें प्रवृत्त होवे हैं। मुमुक्षु साधनसंपन्न तौ ज्ञानद्वारा श्रेयरूप मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं और अज्ञानी काम्य कर्मकूं करिके विषयसुखरूप प्रेयकूं प्राप्त होवे हैं। और मुमुक्षुपुरुष तौ नित्यमोक्षकूं प्राप्त होता है। परंतु जो विषयोंका अर्थी हुआ विषयसुखरूप प्रेयकी प्राप्तिवास्ते अनेक प्रकारके कर्मोंकूं करे है। सो विषयी या मोक्षरूप पुरुषार्थसे भ्रष्ट होवे है। यह श्रेय और प्रेय अविवेकी पुरुषोंकूं वास्तवरूप भिन्न भिन्न प्रतीत होवें नहीं। और जैसे हंसपक्षी अपने मुखसे क्षीरनीरकूं पृथक् करि देवे है तैसे विवेकी पुरुष विवेकसे श्रेय प्रेयकूं भिन्न भिन्न जाने हैं। और जानकरि श्रेयरूप मोक्षकी प्राप्तिवास्ते साधनकूं संपादन करे हैं और अल्पबुद्धिवाला जो अविवेकी है सो शरीरादिकोंकी वृद्धिवास्ते तथा भोगोंकी प्राप्तिवास्ते कर्मोंकूं करे है। और तुमारेकूं मैं यमराजने अनेक दिव्य स्त्री पुत्र आदिक भोग दिये भी परंतु तुमने अनित्य जानकरि त्याग किये हैं। और या लोकमें सर्व पुरुष धनरूपी शृंखलासे बांधे हुए हैं। ता धनरूपी शृंखलासे आप मुक्त भये हो। हे नचिकेता! या संसारमें कर्म तथा ज्ञानरूपी दो मार्ग हैं। कर्मसे अनित्य स्वर्गादिक लोककूं पुरुष प्राप्त होवे हैं ज्ञानसे नित्य मोक्षरूप फलकूं प्राप्त होवे हैं और तुम तौ केवल ज्ञानकूं चाहते हौ और भोगोंमें लोलुप नहीं भये याते आप धन्य हैं। मैं आपकी स्तुति करि नहीं सकता। हे नचिकेता! कर्म भी दो प्रकारका है एक विहित है जाकूं शास्त्र सुखप्राप्तिवास्ते कहे है। दूसरा निषिद्ध नरकादिकोंकूं देनेहारा है। विहित कर्म भी दो प्रकारका है एक तो निष्काम है दूसरा सकाम है। निष्काम यह है अनित्य फल जे स्वर्ग स्त्री पुत्रादिक हैं

तिनकी इच्छा विना कर्म करना तिनसे तौ चित्तशुद्धिद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं। सकामसे जन्ममृत्युकूं प्राप्त होवे हैं। सकाम कर्म करनेवाले पुरुषोंका यह निश्चय है जो हमही पंडित हैं हमही बुद्धिमान् हैं ऐसे अविद्यामें वर्त्तमान हुए ते मूढ सर्वदा कुटिलगतिकूं ही प्राप्त होवे हैं। जैसे अंधपुरुषके पीछे अंध गमन करे हैं तैसे सकाम कर्मके करनेवाले जे अंध गुरु हैं तिनके पीछे चलनेहारे जे अंध शिष्य हैं ते भी सकाम कर्मकूं ही करे हैं और निषिद्ध कर्मके करनेहारे जे पुरुष हैं तिनकूं स्वर्गादिक लोकोंकी प्राप्तिका साधन कर्म उपासनादिक प्रतीत होवे नहीं। ते बालक धनके अभिमानकरि मूढ हो रहे हैं और स्त्री पुत्र धन आदिक सहित यह लोकही श्रेष्ठ है ऐसे माननेवाले हैं और सकाम कर्म करनेवाले तौ स्वर्गादिक लोककूं प्राप्त होवे हैं ता अनंतर मेरे पासोंमें आवे हैं। अथवा कभी किसी किसी निष्काम कर्मके प्रभावसे शुद्ध अंतःकरणवाले हुए ज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्षकूं भी प्राप्त होवे हैं। और निषिद्धकर्म करनेहारे तौ साक्षात् मेरे वश हुए अनंत दुःखोंकूं अनुभव करे हैं। और हे नचिकेता! ऐसे पापी पुरुषोंकूं आत्माका श्रवण भी दुर्लभ है। और बहुत पुरुष भूत भावी वर्त्तमान प्रतिबंध सहित हुए आत्माके श्रवणकूं करते भी यथार्थ ब्रह्मबोधकूं प्राप्त होवें नहीं। तीन प्रकारके जे प्रतिबंध कहे तिनमें भूतप्रतिबंध तौ यह है त्याग करे किसी स्त्री आदिक विषयका वेदांतश्रवणकालमें वारंवार स्मरण होना। भावी प्रतिबंध यह है जो और जन्मका देनेवाला प्रारब्धकर्म जाकी भोगे विना निवृत्ति होनी नहीं। जैसे वामदेवके एक जन्मके देनेवाला प्रारब्ध कर्म था प्रथम जन्ममें अनेक प्रकारके श्रवणादिक वामदेव महात्माने करे भी। परंतु ता भावी प्रतिबंधसे ज्ञान भया नहीं।

द्वितीय जन्मकूं प्राप्त होइकारि ऋषि वामदेव प्रारब्धकर्मकूं भोगकारि क्षय करता हुआ ज्ञानकी प्राप्तिसे मोक्षकूं प्राप्त भया। यह वामदेवकी कथा अन्य उपनिषत्की है यातें इहां ता कथाका संकोच करा है आगे लिखेंगे। प्रतिबंधप्रसंगसे किंचित् दिखाई है। इस रीतिसे भूतप्रतिबंधकी तौ जिस पदार्थमें प्रीति है ता पदार्थ उपहित आत्माके ध्यानसे निवृत्ति होवे हैं। परंतु भावी प्रतिबंधकी निवृत्ति विना भोगसे होवे नहीं और वर्त्तमान प्रतिबंध च्यारि प्रकारका है। एक तौ विषयोंमें आसक्ति है। और द्वितीय बुद्धिकी मंदता है। जो वेदांत श्रवण करते भी बुद्धिमें अर्थ आरूढ न होना और तृतीय कुतर्क है जो श्रुतिसे विपरीत शुष्कतर्क है और चतुर्थ विपर्यय दुराग्रह है। अर्थ यह जो आत्मा के कर्तृत्व भोक्तृत्वमें युक्तिप्रमाणसे विना हठ करना। अब प्रसंगसे तिन वर्तमान प्रतिबंधोंकी निवृत्ति भी कहे हैं। प्रथम विषय आसक्तिरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति तो शमसे तथा दमसे होवे है। जब नेत्रादिकोंकूं तथा मनकूं अपने वश करे है तथा सत्संग करे है तब विषय आसक्तिरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति होवे है। वारंवार वेदांत श्रवणसे बुद्धिमंदतारूप जो द्वितीय प्रतिबंध है ताकी निवृत्ति होवे है और युक्तिपूर्वक आत्माके मनन करनेसे कुतर्करूप तृतीय प्रतिबंधकी निवृत्ति होवे है। अनात्म प्रत्ययरहित आत्माकार वृत्ति करनेसे विपर्यय दुराग्रहरूप जो चतुर्थ प्रतिबंध है ताकी निवृत्ति होवे है इस रीतिसे भूत भावी वर्त्तमान प्रतिबंध तथा तिनकी निवृत्तिका प्रकार प्रसंगसे किंचिन्मात्र कह्या। अब उपनिषत् अर्थकूं ही कथन करे हैं। हे नचिकेता! ऐसे भूत भावी वर्तमान प्रतिबंधसहित कोई पुरुष आत्मश्रवणकूं करते हुए भी आत्माकूं यथार्थ जाने नहीं और मन वाणीके अविषय या आत्माका उपदेश करनेवाला वक्ता

आश्चर्य है अर्थ यह जो दुर्लभ है और या आत्माके दृढतर अपरोक्ष निश्चयवाला दुर्लभ है तथा ता अपरोक्षज्ञानीसे शिक्षाकूं प्राप्त हुआ जो शिष्य है सो भी दुर्लभ है सो शिष्य भी आत्माके यथार्थ रूपकूं जाने है। ब्रह्मज्ञानी गुरु विना तौ बहुत वार उपदेश करा हुआ भी आत्मा जाना जावे नहीं। यातें अज्ञानी गुरुकूं त्याग करि ज्ञानीसे उपदेश ग्रहण करि ज्ञान संपादन करना और यह दुर्विज्ञेय आत्मा अपनी तर्कोंसे स्वतंत्र जाना जावे नहीं। इस आत्माके ज्ञानसे ही जन्ममरणकी प्राप्ति होवे नहीं। और हे नचि-केता ! श्रुतिविरुद्ध तर्क तौ उलटा ज्ञानमें प्रतिबंधक है। ता तर्क-करि आत्मा जानना अतिकठिन है। अर्थ यह कभी शुष्क तर्कसे जाना जावे नहीं। यातें श्रुतिभगवती वारंवार ब्रह्मवेत्ता आचार्यकी शरणकूं ही ज्ञानकी प्राप्तिमें साधन कथन करे है। हे नचिकेता ! जैसे तुम अपने पुण्योंके प्रतापसे धैर्यकूं प्राप्त भये हौ तैसे किसी पुरुषकूं तीन काल भूत भविष्यत् वर्तमानमें होना दुर्लभ है और मैंने अनेक प्रकारके पदार्थ तुमारेकूं दिये भी तुम सर्वका त्याग करते भये यातें तुमारे जैसा शिष्य अतिदुर्लभ है। और मैं यह इच्छा करता हूं जो तुमारे जैसा शिष्य वा पुत्र प्रश्न करनेहारा हमारे कुलमें और होवे। हे नचिकेता ! दूसरे पुरुषोंकी तौ क्या वार्ता है मैं यमराजा मेरे भी तेरे जैसा धैर्य नहीं है। काहेते यमराजा मैं हृदयमें स्थित ब्रह्मानंदकूं नित्य अपरोक्ष जानता हूं। और कर्मका फलरूप सर्व अनित्य है ऐसे भी जानता हूं। परंतु मेरेमें तेरे जैसी पदार्थोंमें त्यागबुद्धि नहीं है। और यह पुरुष यज्ञ आदिक कर्मों-करिके मोक्षरूप नित्य फलकूं प्राप्त होवे नहीं ऐसे न जानकरि मैंने अग्निसाध्य यज्ञादि अनेक कर्म करे तिन कर्मोंकरि या लोकपाल पदवीकूं प्राप्त भया हूं। ऐसे यत्नोंसे सर्व कामकी प्राप्तिकूं मैं

यमराजा प्राप्त भया हूं और सर्व ऐश्वर्यकूं प्राप्त भया हूं । सर्व जगत्का नियंता भया हूं और अभयकी परम पदवीकूं प्राप्त भया हूं तथा अणिमादि ऐश्वर्यकूं प्राप्त भया हूं । ते सर्व पदार्थ तुमारेकूं मैं यमराजाने दिये भी.परंतु तुमने सर्व पदार्थोंकूं अनित्य जानकरि त्यागही करा है । यातें तुमारे धैर्यकी मैं स्तुति करि नहीं सकता । हे नचिकेता ! जिस आत्माके जाननेवास्ते तुमने सर्व पदार्थ त्याग करे हैं ता आत्माकूं श्रवण करो । यह आत्मा दुर्दर्श है । अर्थ यह जो अतिसूक्ष्म होनेसे याका प्रत्यक्ष करना कठिन है और जीवोंके बाह्य पदार्थोंके ज्ञानकरि आत्मा जाना जावे नहीं और सबकी बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है तथा या शरीरमें ही स्थित है । बुद्धि भी तौ शरीरमें ही है । यातें बुद्धिमें स्थित है यह कहा । ऐसे आत्माके ज्ञानसे ही स्वप्रकाश आत्माकूं विवेकी पुरुष जानता हुआ हर्ष शोक आदिक अनर्थकूं निवृत्त करे है और या आत्माकूं सत शास्त्रके उपदेशसे तथा महात्माओंके उपदेशसे श्रवण करिके शरीरादिकोंसे भीन्न जानकरि ता साक्षीकूं ही ब्रह्मरूपसे जानते हुए अधिकारी परम आनंदकूं प्राप्त होवे हैं । ऐसे ब्रह्मरूपी मंदिरकी प्राप्तिवास्ते हे नचिकेता ! तुमारेकूं हम खुले द्वार मानते हैं । भाव यह जो तुम मोक्षके योग्य हो । इस रीतिसे नचिकेताने देहके नाश होनेसे भी आत्माका नाश नहीं होता यह तौ निश्चय करा । काहेते जीवकूं श्रेयकी प्राप्ति तथा स्वर्ग नरक प्राप्ति जा यमराजाने कही तासे जाना जो देहसे भिन्न है । देह तौ इहांही नाशकूं प्राप्त होवे है याते देहसे भिन्न जो आत्मा है ताकूं ही श्रेय प्रेय आदिकोंकी प्राप्ति संभवे है । यातें इस देहसे भिन्न तौ नचिकेताने निश्चय करा । अब आत्माके वास्तवरूपके जाननेकी इच्छावाला हुआ नचिकेता प्रश्न करे है ।

नचिकेता उवाच। हे भगवन्! जो आत्मा पुण्य पापसे भिन्न है। तथा पुण्य पापका जो फल तथा पुण्य पापके जे कारक तिन सर्वसे आत्मा भिन्न है। तथा कार्य कारणसे भिन्न है। तथा भूत भविष्यत् वर्त्तमान या तीनकालसे रहित है। ऐसे आत्माकूं आप प्रत्यक्ष निश्चय करि रहे हैं। ता आत्माके वास्तवस्वरूपकूं मेरे तांई कथन करो। यमराजोवाच। हे नचिकेता! जा आत्माका तैंने प्रश्न करा है ता आत्माके स्वरूपकूं ही च्यारि वेद बोधन करे हैं और जा आत्माकी प्राप्ति वास्ते अनेक प्रकारके तप शास्त्रने कहे हैं और जिस आत्माकी प्राप्तिवास्ते अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य आदिक साधनोंकू करे हैं सो यह आत्मा ॐकाररूप है। हे नचिकेता! यह ॐप्रणव अक्षर ही सगुण ब्रह्म है। तथा पर जो निर्गुण ब्रह्म है सो भी ॐकाररूपही जानना। जैसे शालिग्रामका विष्णुरूपसे नर्मदेश्वरका शिवरूपसे शास्त्रने ध्यान कह्या है तैसे ॐअक्षरका भी परब्रह्म तथा अपरब्रह्मरूपसे ध्यान श्रुतिभगवती यम राजाद्वारा सर्व मुमुक्षु जनोंकूं बोधन करे है। जो अधिकारी ॐकार का सगुण रूपमें ध्यान करेहै सो सगुणरूपकूं प्राप्त होवे है। जो निर्गुण रूपसे प्रणवका ध्यान करे है सो ध्याता निर्गुणरूपकूं ही प्राप्त होवे है। या ॐ अक्षरके सगुण रूप करि ध्यान करनेसे तथा निर्गुण रूपकरि ध्यान करनेसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है। ता ब्रह्मलोकमें महाआनंदकूं प्राप्त होइ करि कैवल्य मोक्षकूं प्राप्त होवे है। अब जा आत्माका ॐ रूपसे ध्यान कहा ता आत्माका वास्तवरूप कहे हैं यह स्वप्रकाश आत्मा जन्ममरणसे शून्य है। काहेतें अनित्य घट देहादिक ही उत्पत्तिनाशवाले होवे हैं। नित्य आत्माका उत्पत्ति नाशादि कोई विकार बने नहीं और यह नित्य आत्मा किसी कारणसे उत्पन्न होवे नहीं और यह आत्मा अद्वितीय है यातें

वास्तवसे या आत्मासे भिन्न कोई कार्य भी उत्पन्न होवे नहीं । अब षड् भाव विकाररहित आत्माका उपदेश करे हैं । जिस हेतुसे यह आत्मा अज है इसीसे या आत्माका जन्म नहीं । नित्य होनेसे नाशरूप मरण भी होवे नहीं । और शाश्वत है अर्थ यह जो अपक्षयवार्जित है और यह आत्मा पुराण है । अर्थ यह प्रथम ही नवीन है यातें ही वृद्धिरहित है । जन्मरूप प्रथम विकारके निषेध करनेसे अस्तिरूप जो द्वितीय विकार है ताका भी निषेध जान लेना । जो जन्मकूं प्राप्त होवे है सो अस्तित्वरूप द्वितीय विकारकूं प्राप्त होवे है या आत्माका जन्म ही नहीं यातें अस्तित्वरूप जो द्वितीय विकार ताकूं कैसे प्राप्त होवेगा । नाशके निषेधसे विपरिणामका निषेध है । ऐसे यह आत्मा नित्य है यातें या स्थूल शरीरके नाश होनेसे भी या नित्य आत्माका नाश होवे नहीं । हे नचिकेता ! जो पुरुष या आत्माकूं मरनेवाला मानता है और जो पुरुष आत्माकूं मारा गया मानता है ते दोनों आत्माके यथार्थ रूपकूं जानते नहीं । जिस हेतुसे यह आत्मा न किसीकूं मारता है न किसी करिके मारा जाता है । और हे नचिकेता ! यह आत्मा सूक्ष्म परमाणु आदिकोंसे भी अति सूक्ष्म है । अर्थ यह जो दुर्विज्ञेय है । और बडे आकाशादिकोंसे भी बडा है और या जीवकी बुद्धिरूपी गुहामें ही स्थित है । ऐसे आत्माकूं जो निष्काम पुरुष है सोई मनकी शुद्धि करिके प्रत्यक्ष करे है । ता आत्माके ज्ञानकरि सर्व कर्मके करनेसे वृद्धिक्षयरहित रूप जो आत्माकी महिमा है, ताकूं प्राप्त होवे है । इससे अनंतर शोक मोहसे रहित होवे है । हे नचिकेता ! यह आत्मा अचल हुआ भी दूर देशमें गमन करे है । तथा शयन करता हुआ भी सर्व देशमें प्राप्त होवे है और विद्या धन आदिकोंके अभिमान-

सहित हुआ भी यह आत्मा सर्व मदसे रहित है। भाव यह आत्मा बुद्धि साथ मिलकारि बुद्धिके धर्म मदादिकोंकूं धारण करे है। और वास्तवसे तौ बुद्धिसंबंधसे रहित है। ताके धर्म मदादिकोंसे रहित स्पष्ट ही है। ऐसे आत्माकूं सूक्ष्म बुद्धिमान् जे मेरे जैसे पंडित हैं ते पंडित ही प्रत्यक्षरूप करि जाने हैं। और जे पुरुष अनात्मपदार्थोंमें आसक्त हैं तथा अतिबहिर्मुख हैं ते पुरुष आत्माके स्वरूपकूं कैसे जानेंगे तिनकूं आत्मा जानना दुर्घट है। हे नचिकेता! यह आत्मा वास्तवसे स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन शरीरोंसे रहित है। तथा या तीन अनित्य शरीरोंमें स्थित है और यह आत्मा आकाशादिक जे व्यापक हैं तिन सर्वसे अधिक व्यापक है। ऐसे आत्मदेवकूं अपरोक्ष जानकरि अधिकारी सर्व शोककूं निवृत्त करे है। तात्पर्य यह कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप बंधका नाम शोक है। सो बंध अज्ञानका कार्य है। अधिकारी पुरुषके अज्ञानकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञानसे होवे है। अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे बंधरूप शोककी निवृत्ति होवे है। हे नचिकेता! यह आत्मा बहुत वेदके पठनकरि प्राप्त होवे नहीं और ग्रंथके अर्थ धारणकी जो सामर्थ्य है ताकूं मेधा कहे हैं ता मेधा करि भी आत्मा प्राप्त होवे नहीं और बहुत श्रवण करनेसे भी प्राप्त होवे नहीं। जो अधिकारी या आत्माका अभेदरूपसे नित्यचिंतनरूप भजन करे है सो अधिकारी आत्मस्वरूपकूं प्राप्त होवे है। तिस अधिकारीके ताईं आत्मा अपने परमार्थस्वरूपकूं प्रगट करे है। अर्थ यह जो यथार्थ रूपकूं सो अधिकारी ही ध्यानकर्त्ता जाने है। हे नचिकेता! जो पुरुष पापकर्मसे निवृत्त नहीं भया तथा जो पुरुष शम दमसे रहित है तथा समाधिसे रहित है ऐसे बहि-र्मुख पुरुषकूं आत्मसाक्षात्कार होवे नहीं और जा मायाविशिष्ट

ब्रह्मात्माका यह ब्राह्मण क्षत्रियादिक सर्व जगत् ओदन है तथा सर्वके मारनेवाला मृत्यु जाका शाकादिरूप है ता मृत्युरूप शाककूं मेलकरि सर्व जगद्रूप ओदनके भक्षण करनेहारा जो स्वरूपमें स्थित है ऐसे आत्माके परमार्थरूपकूं विचाररहित कैसे जान सके है। विचाररहित आत्माके स्वरूपकूं सर्वथा जाने नहीं। हे नचिकेता ! जिस ध्यानरूप उपायकरि यह आत्मा जाना जावे है ता उपायकूं श्रवण करो। जैसे लोकप्रसिद्ध पिप्पल आदिक वृक्षोंविषे पक्षी रहे हैं तैसे बुद्धिरूपी वृक्षमें जीव ईश्वर दोनों रहे हैं। कैसी बुद्धि है देहकी अपेक्षासे जो उत्कृष्ट है। तथा परब्रह्मकी स्थिति योग्य है। तामें जीव तो कर्मके फलकूं भोगे है और ईश्वर कर्मफलकूं भोगावे है। आप ईश्वर कर्मफलकूं भोगे नहीं और ते ईश्वर जीव सर्वज्ञता अल्पज्ञतारूप विरुद्धधर्मवाले हैं। ऐसे ब्रह्मवेत्ता तथा स्वर्गमेघादि पंच पदार्थोंमें अग्निबुद्धि करनेवाले गृहस्थकर्मी कथन करे हैं और तीन वार नाचिकेत अग्निकूं जिनोंने चयन करा है ते भी ईश्वरजीवस्वरूपकूं कथन करे हैं और जे अग्निहोत्रादिक कर्मोंकूं निष्काम होइकरि करते हैं तिनकूं संसारसमुद्रसे पार करनेहारा जो परमेश्वर है सोई सेतु है। और संसारसमुद्रसे तरनेकी इच्छावाले हुए मुमुक्षु जनोंका यह आत्मा ही अभयरूप परतीर है। हे नचिकेता ! यह जीव पुण्यपापरूप कर्मके फलका भोक्ता है सो रथी है। अर्थ यह जो रथका स्वामी है और शरीररूपी रथ है। बुद्धि सारथी शरीररूपी रथकूं चलानेवाला है। मनरूपी रज्जु है। इंद्रियरूपी अश्व है। शब्दस्पर्शादिरूप भूमिविषे चले है और आत्मा देह इंद्रिय मन इनसे मिलकरि कर्ता भोक्ता हो रहा है। वास्तवसे उपाधि विना यह आत्मा शुद्ध है। कदाचित् भी कर्तृत्व भोक्तृत्वकूं

प्राप्त होवे नहीं। और जैसे अश्वादिकोंके चलानेका तथा निग्रहण करनेका जाकूं ज्ञान है ऐसा सारथी रथवाले स्वामीकूं अपने अभिलषित देशमें प्राप्त करे है, तैसे जाके बुद्धिरूपी सारथीमें यह दोनों प्रकारका सामर्थ्य है इंद्रियोंकूं शुभ मार्गमें चलाना तथा स्वाधीन राखना सो बुद्धिरूपी सारथी ब्रह्मभावकी प्राप्ति करे है। या अर्थकूं ही स्पष्ट करे हैं। हे नचिकेता! जिस पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी अविवेकी है तथा मनरूपी रज्जुकूं जाके बुद्धिरूपी सारथीने वश करा नहीं ताके इंद्रियरूपी अश्व भी दुष्ट अश्वकी न्याईं वश होवें नहीं और जा पुरुषका बुद्धिरूपी सारथी विवेकी है तथा मनरूपी रज्जु जाके वश है ताके इंद्रियरूपी अश्व सर्वदा वशवर्ती हैं। जैसे श्रेष्ठ अश्व सदा सारथीके वशवर्ती होवे हैं तैसे प्रमादरहित बुद्धि सारथीके वश इंद्रिय होवे हैं और जाका बुद्धिरूपी सारथी विज्ञानसहित नहीं है तथा मनरूपी रज्जु जा सारथीके वश नहीं है और सर्वदा अंतरबाह्यसे अशुचि रहे है सो विवेकहीन मूढ पुरुष ता ब्रह्मरूप देशकूं प्राप्त होवे नहीं। उलटा जन्ममरणरूप संसारकूं ही प्राप्त होवे है। और जाका बुद्धिरूपी सारथी विवेकसहित है तथा मनरूप रज्जु अंतर्मुख है और जो अधिकारी सर्वदा शुचि रहे है सो अधिकारी ता ब्रह्मके स्वरूपकूं प्राप्त होवे है। जासे पुनः जन्ममरणकूं प्राप्त होवे नहीं। हे नचिकेता! इस प्रकार जिसके बुद्धिरूपी सारथीने मनरूपी रज्जुकरिके इंद्रियरूपी अश्वोंकूं वश करा है सो अधिकारी या संसाररूप समुद्रके पाररूप परमात्माकूं प्राप्त होवे है। अब आत्मा ही सर्वके अंतर है ताकी प्राप्तिवास्ते विवेकादिक संपादन करने चाहिये। या अर्थके प्रतिपादन करनेवास्ते अंतरकी परंपराकूं दिखावे हैं। हे नचिकेता! शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह

पंच भूत आकाशादिकोंका साररूप हैं। यातें यह शब्दादि सूक्ष्म रूपसे इंद्रियोंके कारण हैं। यातें इंद्रियोंसे शब्द स्पर्श आदिक पर हैं इंद्रियोंकूं मन ही प्रवृत्त करे है यातें मन इंद्रियोंसे पर है और निश्चय विना संकल्प विकल्प करनेहारा जो मन है तासे किंचित् भी प्रयोजन सिद्ध होवै नहीं। यातें मनसे निश्चयरूप बुद्धि पर है। समष्टिरूप हिरण्यगर्भकी बुद्धि व्यष्टिबुद्धिका कारण है यातें व्यष्टिबुद्धिसे समष्टिबुद्धि पर है। ता समष्टिबुद्धिकूं ही श्रुतिभगवतीने महत्तत्त्वरूपकरि कथन करा है। ता महत्तत्त्वसे अव्यक्त जो महत्तत्त्वका कारण माया है। सो माया महत्तत्त्वसे पर है। अव्यक्तरूप माया भी अपने आश्रयविषयकी प्राप्तिवास्ते चैतन्यकी अपेक्षा करे है। यातें ता मायासे भी पुरुष पर है। और पुरुष जो व्यापक आत्मा है सो अपनी उत्पत्तिवास्ते तथा अपने प्रकाशवास्ते किसी पदार्थकी अपेक्षा करे नहीं। यातें यह चेतन पुरुषही सर्वसे पर है। तथा सर्वकी पर्यवसानभूमि है और सर्व मुमुक्षुजनोंकूं फलरूप है। पूर्व सर्व प्रसंगमें परशब्दका अर्थ सूक्ष्म तथा व्यापक यह जानना। और यह आत्मा सर्वभूतोंमें स्थित है भी परंतु अज्ञानकरि आच्छादित होनेसे अज्ञानी पुरुषोंकूं सर्वत्र प्रतीत होवे नहीं। और जे विवेकी हैं ते सूक्ष्म तथा एकाग्रबुद्धिसे आत्माकूं प्रत्यक्ष करे हैं। हे नचिकेता! या आत्माकी प्राप्तिवास्ते मैं योगका उपदेश करता हूं तुम श्रवण करो। प्राज्ञ जो बुद्धिमान् हैं सो अपने कर्मइंद्रिय तथा ज्ञानइंद्रिय तिन सर्वकूं मनमें लय करे। तात्पर्य यह जो सर्व इंद्रियोंके व्यापारोंकूं त्याग करिके केवल मनका जो व्यापार है यहही मनमें इंद्रियोंका लय है तथा इच्छा रूप जो मन है ता मनका निश्चयरूप बुद्धिमें लय करे। इच्छा-वृत्तिकूं त्याग करि निश्चयरूपसे स्थित होवे। ता निश्चयरूप व्य-

ष्टिबुद्धिका समष्टिबुद्धिमें लय करे । तात्पर्य यह जो सामान्याहंकार जो अहं अस्मि यह है ता रूपसे स्थित होवे । ता महत्तत्त्वरूप समष्टिबुद्धिकूं शांतात्मा जो शुद्धब्रह्म है तामें लय करे । अब श्रुति भगवती स्वतंत्र ही अपने प्रिय मुमुक्षु जनोंकूं उपदेश करे है । भो मुमुक्षवः ! तुम आत्मज्ञानके सम्मुख होवो । अज्ञानरूपी निद्राकी ब्रह्मज्ञानरूप जागरणसे निवृत्ति करो । जब पर्यंत तुम अज्ञानरूपी निद्राकरि शयन करते हो । अर्थ यह जो आत्माके यथार्थ स्वरूपकूं नहीं जानते तब पर्यंत जन्ममरणरूप संसारस्वप्न महाभयंकर निवृत्त होवे नहीं यातें ब्रह्मज्ञानरूप जागरणसे अज्ञानरूपी निद्राकी निवृत्ति करो । ता ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति साधनसंपन्न होइकरि गुरुउपसत्तिसे होवे है । यातें श्रेष्ठ जे आचार्य हैं तिनकूं ब्रह्मरूप जानकरि तिनसे उपदेशकूं ग्रहण करो । और जैसे क्षुरकी धारा अतितीक्ष्ण है ताके उपरि गमन करा जावे नहीं तैसे दुःसंपाद्य जो ज्ञानमार्ग महात्मा कथन करे हैं ताकी प्राप्तिवास्ते यत्न अति अवश्य करना । हे नचिकेता ! यह आत्मा शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन सर्वसे रहित है नाशरहित है । आदि अंतसे शून्य है । महत्तत्त्वसे पर है तथा निश्चल है । ता आत्माकूं गुरुमुखसे श्रवणकरिके तथा श्रुतिअनुकूल तर्कोंसे मनन करिके तथा ता आत्माविषे अनात्मप्रत्ययरहित सजातीय प्रत्यय करे हैं । ऐसे अधिकारी आत्माके श्रवणादिकोंकूं करते हुए ता आत्माकूं साक्षात् करे हैं । तिस साक्षात्कारसेही या संसारूप मृत्युके मुखसे मुक्त होवे हैं । अब इस कठवल्ली ग्रंथका माहात्म्य कहे हैं । यह यमराजाने जो नचिकेताके ताईं ग्रंथ उपदेश करा है सो सनातन है । अर्थ यह वैदिक होनेसे चिरकालका है । ता ग्रंथकूं कथनकर्त्ता तथा श्रवणकर्त्ता बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है । तात्पर्य यह ज्ञान जाकूं

भया नहीं तो या ग्रंथका कथनकर्त्ता तथा श्रवणकर्त्ता ब्रह्मलोकमें प्राप्तिद्वारा ही मुक्तिकूं प्राप्त होवे है । जो पुरुष प्रतिबन्धरहित है । सो पुरुष इस जन्ममें ही ज्ञानद्वारा परम मोक्षकूं प्राप्त होवे है और जो पुरुष या परम गोप्य ग्रंथकूं ब्राह्मणोंकी सभामें श्रवण करावे है सो पुरुष महान् फलकूं प्राप्त होवे है । तथा जो पुरुष पवित्र होइकरि श्राद्धकालमें श्रवण करे है सो श्राद्ध ता पुरुषकूं अनन्तफलकी प्राप्ति करे है । तात्पर्य यह जो आत्माका प्रतिपादक यह ग्रन्थके कथनका तथा श्रवणका भी जब यह पूर्व उक्त फल है तौ ज्ञान प्राप्त होनेकरि मोक्षकूं प्राप्त होवे है यामें क्या आश्चर्य है । पूर्व यह कहा आत्मा सर्वत्र व्यापक भी है परंतु आवरणसहित होनेसे सर्वत्र प्रतीत होवे नहीं । यातें हे नचिकेता ! श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकरि आत्माका प्रत्यक्ष होवे नहीं । यामें हेतु यह है जो जगत्का कर्त्ता स्वतंत्र परमेश्वर है सो परमेश्वर श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकूं अन्तर आत्मासे बहिर्मुख ही रचता भया । इसीसे तां परमात्माने इन श्रोत्रादिकोंका हिंसन करा है । जैसे राजा अपने किसी मन्त्रीकूं अपने पुरका अधिकार छुडाइकरि किसी दूर देशमें अधिकार देवे । यह ता मंत्रीकी हिंसा कही जावे है । तैसे आत्माकूं इन इंद्रियोंने विषय न करना यह ही इन इंद्रियोंकूं हिंसा है । जिस हेतुसे ईश्वरने इन्द्रिय बहिर्मुख ही रचे हैं । इसीसे यह पुरुष बाह्य नामरूप प्रपंचकूं ही देखे हैं अन्तर आत्माकूं प्रत्यक्ष करे नहीं । कोई बुद्धिमान् जितेंद्रिय तथा उत्कट मोक्षकी इच्छावाला हुआ या आत्माकूं अपरोक्ष रूपसे प्रत्यक्ष करै है । हे नचिकेता ! या लोकके तथा परलोकके जे विषय हैं तिन बाह्यविषयोंकूं अति यत्नोंकरि बाल ग्रहण करे हैं । बाल पदका अर्थ आत्मविचाररहित है । ते अविवेकी वारंवार मृत्यु जो

मैं हूँ तिस मेरी पाशकूंही प्राप्त होवे हैं । और कैसा हूं मैं जो सर्वलोकमें व्यापक हूँ और विवेकी पुरुष तौ ब्रह्मासे लेकरि स्तंबपर्यंत स्थावर जंगम सर्व प्राणियोंकू मृत्युग्रस्त जानिकारि कर्म उपासनाके फलकूं अनित्य ही जाने हैं। आत्मज्ञानके फल मोक्षकूं नित्य जाने हैं। इस प्रकार कर्मफलकूं अनित्य जानकरि ते विवेकी तेरी न्याईं स्वर्गादिकोंकी इच्छाकूं करैं नहीं। हे नचिकेता! जिस आत्माके ज्ञानकरि ता आत्माकूंही विवेकी प्राप्त होवे हैं तथा सर्व इच्छासे निवृत्त होवे हैं ता आत्माके स्वरूपकूं श्रवण करो। जिसे आत्माकरि यह पुरुष नेत्रजन्य अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा रूपकूं जाने है। तथा रसना इन्द्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा यह पुरुष मधुरादि रसकूं जाने है । तथा जा आत्माकरि ही यह पुरुष गंध तथा शब्द तथा स्पर्शकूं जाने है । तथा जा आत्माकरि मैथुननिमित्तसे उत्पन्न भये सुखकूं जाने है। हे नचिकेता ! जो आत्मा तुमने पूछा था ता आत्माकरि ही सर्वसंघातकी चेष्टा सिद्ध होवे है । जो आत्मा तुमने पूछा था सो यह है यातें भिन्न और आत्मा नहीं । और या आत्माकूं ज्ञान करिके ही विवेकी कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवे हैं। हे नचिकेता ! जा आत्माकरि यह पुरुष स्वप्नअवस्थाकूं जाने है तथा जागरितकूं जा आत्माकरि जाने है ऐसे आकाशादिकोंसे भी व्यापक आत्माकूं यह विवेकी प्रत्यक्ष करता हुआ शोककूं प्राप्त होवे नहीं। हे नचिकेता ! यह आत्मा बुद्धि आदिकोंका साक्षी होनेसे अत्यंत समीप है और कर्मके फल सुखदुःखकूं अनुभव करे है। तथा प्राणादिकोंकूं धारण करनेहारा है । प्राणबुद्धि आदिकोंसे भिन्न है। ऐसे सर्व जगत्के नियंता आत्माकूं अधिकारी पुरुष जानकरि किसी संशयकूं तथा निंदाकूं करे नहीं । इस प्रकार त्वंपदार्थका शोधन

करा । अब तत्पदार्थके शोधनका प्रकार कहे हैं । हे नचिकेता ! जिस चेतनपरमात्मासे हिरण्यगर्भ उत्पन्न होवे है । कैसा है हिरण्यगर्भ जो पंचभूतोंसे उत्पन्न भया है । अपने हिरण्यगर्भसे पूर्वजन्ममें अनुष्ठान करे जे कर्म तथा उपासना तिनसे उत्पन्न होवे है । जो हिरण्यगर्भ सर्वकी बुद्धिरूपी गुहामें कार्यकारणरूप भूतोंसहित स्थित है । ऐसे हिरण्यगर्भकूं अधिकारी पुरुष आत्मरूप जाने हैं । सोई यह आत्मा है जो तुमने धर्माधर्म तथा कार्यकारणसे रहित पूछा था । और सर्वदेवतारूप जो हिरण्यगर्भ है सोई प्राणस्वरूप है और ता हिरण्यगर्भका नाम अदिति है । अर्थ यह जो सर्वस्थूलप्रपंचकूं भक्षण करे है । या हिरण्यगर्भकी ही सर्वदेवता विभूतियां हैं । यातें हिरण्यगर्भ सर्व देवमय है । सर्वव्यष्टिभूत प्राणी या विषे तादात्म्यसंबंध करिके रहे हैं यातें सर्वभूतमय हैं । जैसे सुवर्णका कार्य सुवर्णसे भिन्न नहीं तैसे परमात्माका कार्य हिरण्यगर्भ परमात्मासे भिन्न नहीं । ऐसा हिरण्यगर्भ सर्वभूतोंसहित जा परमात्मासे उत्पन्न होवे है ता परमात्माकूं तुम अद्वितीयजानो । और हे नचिकेता ! दोनूं काष्ठोंसे उत्पन्न भया विराट्रूप जो अग्नि है ता विराट्रूप अग्निकूं श्रद्धापूर्वक याज्ञिक धारण करे हैं जैसे गर्भिणी स्त्रियां स्नेहपूर्वक अपने गर्भकूं धारण करे हैं, तैसे यज्ञ करनेवाले जा विराट्रूप अग्निकूं श्रद्धापूर्वक धारण करे हैं और निद्रारहित जे योगी पुरुष हैं तेभी अपने चित्तमें ता विराट्रूप अग्निकूं धारण करे हैं । और सर्व भूतोंमें सो विराट स्थित है और ता विराट्कूं ही योगी पुरुष हृदयमें जानकरि दिनदिनमें ताकी स्तुति करे हैं और यज्ञमें स्थित ता विराट्रूप अग्निकूं कर्मी पुरुष दिनदिनमें स्तुति करते हैं । सो यह विराट् भी परमात्मरूप है ऐसे जानो । हे

नचिकेता ! जा प्राणसे सूर्य उदय होवे है और जा प्राणमें ही दिनदिनमें अस्त होवे है और अग्नि आदिक जे अधिदेव हैं तथा अध्यात्म जे वाक् आदिक हैं । ते सर्व जा प्राणके स्वरूपमें स्थिति कालमें रहे हैं और जा प्राणके उल्लंघन करनेविषे कोई समर्थ नहीं है ऐसे प्राणकूं अद्वितीय परमात्मरूप जानो । ऐसे तत्त्व पदार्थोंकूं कथन करि अब दोनूंका अभेद निरूपण करे हैं। हे नचिकेता ! जो परमात्मा तुमारे शरीरविषे तथा हमारे शरीर विषे तथा अन्य सर्व जीवोंके शरीरोंविषे साक्षीरूपसे स्थित है सोई परमात्मा परोक्ष ईश्वर शरीरविषे तथा हिरण्यगर्भ शरीरविषे स्थित है । तथा जो चेतन ईश्वर हिरण्यगर्भादिरूप शरीरोंविषे स्थित है सोई साक्षीरूपसे अस्मदादि शरीरोंमें स्थित है । और जो पुरुष या परमात्मामें किंचित् मात्र भी भेद देखता है । सो पुरुष वारंवार जन्ममरणकूं प्राप्त होवे है । और यह आत्मा शुद्ध मनकरि प्राप्त होवे है । नेहनानाऽस्ति किंचन । अर्थ—यह जो या ब्रह्ममें किंचित् मात्र भी भेद नहीं है । मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति । अर्थ—यह जो पुरुष या आत्मामें नानाकी न्याईं देखे है सो भेदद्रष्टा मृत्युसे मृत्युकूं प्राप्त होवे है । अर्थ यह जो बारंबार मृत्युकूं ही प्राप्त होवे है और यह आत्मा अंगुष्ठपरिमाण हृदयमें स्थित है । यातेंही श्रुतिभगवतीने अंगुष्ठ परिमाणवाला आत्मा है यह कहा । ऐसे आत्माकूं जे अधिकारी भूत भविष्यत् पदार्थोंका ईशानरूप जाने हैं तिनकूं संशयादिक प्राप्त होवें नहीं । हे नचिकेता ! यह अंगुष्ठमात्र आत्माही प्रकाशरूप जो धूमरहित अग्नि है ताकी न्याईं स्वयं ज्योतिरूप है । और यह तीन कालोंविषे विपरीत भावकूं प्राप्त होवे नहीं । और जैसे ऊंचे पर्वतोंमें मेघोंसे पतन भया जो

जल है सो नीचे देशविषे विकीर्णभावकूं प्राप्त होवे है। ऐसे आत्माकूं भिन्न देखनेहारा नाना प्रकारकी उच्च नीच योनियोंकूंही प्राप्त होवे है। हे नचिकेता! स्वभावसे शुद्ध जो जल है सो जभी किसी शुद्ध देशमें मेघोंसे गिरे है सो जल पूर्व जैसा शुद्ध ही रहे है तैसे आत्मा भी वास्तवसे शुद्ध तथा भेदरहित है ऐसे जाननेवाले अधिकारीका आत्मा भी जन्म मरणसे रहित होइकरि स्थित होवे है। पूर्व अनेक प्रकारके भेद दर्शनसे अनंत योनियोंकू प्राप्त होइकरि सर्व अनर्थकूं प्राप्त भया। अब सत् शास्त्रके तथा संत जनोंके उपदेशसे अभेद रूपसे सर्वकूं देखता हुआ स्वस्वरूपमें स्थितिकूं प्राप्त होवे है। अब प्रकारांतरसे आत्माका उपदेश करे हैं। हे नचिकेता! या आत्मारूप राजाका यह शरीररूपी पुर है। या पुरके एकादश द्वार हैं। नाभिसहित तीन नीचेके तथा सप्त शिरमें और एक मस्तकमें है। पुरका स्वामी जो राजा है सो जन्ममरणादिक विकारोंसे रहित है तथा स्वयंज्योति रूप है। मनसे तथा वाक् आदिक इंद्रियोंसे रहित है। ऐसे आत्माकूं ध्यान करता हुआ विवेकी पुरुष ज्ञानप्राप्तिसे सर्व बंधरूप जो शोक है ताकूं निवृत्त करे है। मुक्त हुआ ही मुक्त होवे है। काहेते आत्मा तौ नित्य मुक्त है कदाचित भी वास्तव आत्मामें बंध भया नहीं। परंतु अज्ञानकरि अपनेमें कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप बंध प्रथम मानता था। अब ब्रह्मज्ञानप्राप्तिसे अज्ञानकूं निवृत्त करि सर्व बंधसे मुक्त होवे है। हे नचिकेता! यह आत्मा केवल एक शरीरमें नहीं रहता। किंतु सर्व देहमें रहेहै। यह प्रतिपादन करे हैं। यह आत्मा हंस है। अत्माकार वृत्तिमें स्थित होइकरि जो अज्ञान तत्कार्यका नाश करे ताकू हंस कहे हैं। और यह आत्मा आदित्यरूप है। और यह आत्मा जीवोंकूं धनकी नांई प्रिय

है यातें वसु कहा है। यह आत्मा अंतरिक्षमें गमन करनेहारा वायुरूप है । और यह आत्मा अग्निरूप है । और भोक्तारूप है । और यह पृथिवीमें स्थित है । तथा सूर्यमंडलमें स्थित है । हृदयदेशमें स्थित है । और जा पुरुषके कुल गोत्रका ज्ञान नहीं तथा मध्याह्नादिकालमें गृहस्थके गृहमें अन्न आदिके अर्थ प्राप्त भया है ताकूं अतिथि कहे हैं । सो अतिथि भी आत्मरूप है । और यह आत्मा सोमरूपसे कलशमें स्थित होवे है । और मनुष्योंमें स्थित है । तथा देवतावोंमें स्थित है । और यह आत्मा सत्यमें स्थित है । और यह समष्टि बुद्धिमें तथा व्यष्टि बुद्धिमें साक्षी रूपसे स्थित है । और यह आत्मा शंखशुक्त्यादिरूपसे जलसे उत्पन्न होवे है । और पृथिवीमें यवव्रीहि आदि रूपसे उत्पन्न होवे है और इंद्रियरूपकरि उत्पन्न होवे है । और पर्वतोंसे नद्यादिरूपसे उत्पन्न होवे है । और यह आत्मा हिमादिपर्वतसे गिरिजारूपकरि उत्पन्न होवे है । हे नचिकेता ! बहुत क्या कहें । जो यह आत्मा सत्यरूपसे प्रतीत होवे है । और सर्वका कारण होनेसे सर्व प्रपंचमें व्यापक है ऐसे आत्माके जाननेमें लिंग कहे हैं । हे नचिकेता ! यह आत्मा सर्वके हृदयमें स्थित हुआ प्राणरूप वायुकूं ऊर्ध्व ले जावे है । और अपानवायुकूं नीचे ले जावे है । अंगुष्ठ परिमाण हृदयदेशमें स्थित होनेसे परिच्छिन्न परिमाणवाला प्रतीत होवे है, और या आत्माकूं नेत्र अदिक इंद्रिय रूपादिकोंके ज्ञानरूपी बली याकूं प्राप्त करे हैं । जैसे वैश्य लोग भेट लेकरि राजाकूं मिले हैं । तैसे या आत्माकूं नेत्रादिक अपने अपने विषयोंके ज्ञानोंकूं लेकरि शरणमें प्राप्त होवे हैं । जबी राजा अपने पुरसे गमन करे तबी मंत्री भृत्य राजाके साथ ही गमन करे हैं तैसे या आत्माके या शरीररूप पुरसे गमन करनेसे इंद्रिय प्राण मन सर्व साथ ही

गमन करे हैं। और पुनः या शरीररूपी पुरकी शोभा रहे नहीं तथा दाह करने योग्य होवे है। यह ही आत्मा तुमारे प्रश्नका विषय है। हे नचिकेता! यह शरीर भी प्राण अपान तथा नेत्रादिकोंकरि जीवे नहीं, काहेते यह सर्व जड हैं इन सर्वकी स्थिति तथा स्वस्वव्यापारोंमें प्रवृत्ति रथकी न्याईं विना चेतन देवसे होवे नहीं। यातें इन सर्वका प्रेरक इन सर्वसे भिन्न है। हे नाचिकेता! यह धर्मादिकोंसे रहित आत्माका उपदेश करा। और जो तुमने मरनेसे अनंतर आत्माका सत्त्व पूछा था सो अब कहे हैं। हे नचिकेता! ब्रह्म जो गोप्य है तथा अनादि है यातें भिन्न वास्तवसे जीव नहीं है। और यह जीव अपने परमार्थरूपकूं न जानकरि जन्म मरणकूं प्राप्त होवे है। हे नचिकेता! जैसे यह जीव शरीरकूं त्यागकरि अपने अज्ञानसे क्लेशकूं प्राप्त होवे है सो श्रवण करो। जिनके पुण्य विशेष हैं और पाप न्यून हैं ते मनुष्यादि जंगम देहकूं प्राप्त होवे हैं। और जिन पुरुषोंके पाप अधिक हैं पुण्य न्यून हैं ते पशु आदि शरीरकूं प्राप्त होवे हैं और पापकमकी अति अधिकतासे वृक्षादि देहकूं प्राप्त होवे हैं। हे नचिकेता! या मानुष्य देहमें जैसे पुरुपने कर्म करे हैं तथा जैसी या पुरुषके मनमें वासना उत्पन्न भयी है, तिन कर्म वासनाके अनुसार या जीवका वारंवार घटीयंत्रकी न्याईं या संसारमें नीचे ऊपर गमन आगमन होवे है। विना ब्रह्मबोधसे या जन्ममरणरूप संसारसे कदाचित् मुक्ति होवे नहीं। और जीव ब्रह्मके एकत्व ज्ञानसे या संसारकी निवृत्ति होवे है। यातें जीव ब्रह्मके अभेद ज्ञान वासते अब पुनः उपदेश करे हैं। हे नचिकेता! स्वप्नमें देह इंद्रिय आदिक शयनकूं प्राप्त होवे हैं। और यह स्वयंज्योति आत्मा शयनकूं प्राप्त होवे नहीं। सर्वकूं प्रकाश करे है। और स्वप्न अवस्थामें अनेक

पदार्थोंकूं यह आत्मा ही अविद्या साथ मिलकारि उत्पन्न करे है। और यह साक्षी ही शुद्धरूप है। स्वप्नमें जे अनेक पदार्थ स्त्री गृह क्षेत्रादिक उत्पन्न भये हैं तिनका आत्मामें किंचित् भी संबंध नहीं है। और साक्षी अद्वितीय ब्रह्मरूप है और मोक्ष-रूप है। हे नचिकेता! भूरादि चतुर्दश लोक तथा तिन लोकोंमें स्थित जे जरायुज अंडज स्वेदज उद्भिज्ज यह चारि प्रकारके प्राणी हैं। ते संपूर्ण ही ब्रह्मात्मके आश्रित होइकरि रहे हैं। ता आत्माकूं कोई उल्लंघन करि सकता नहीं। ता ब्रह्मात्माकूंही श्रुति भगवती अनेक दृष्टांतोंसे कथन करे है। हे नचिकेता! जैसे वास्तवसे अग्नि एकही है और काष्ठादि उपाधि करि अनेक रूपसे प्रतीत होवे है तैसे एकही आत्मा सर्व भूतोंमें स्थित है और हस्ती पिपीलिकादि-कोंमें अनेक रूपसे प्रतीत होवे है। और जैसे वायु एक हुआ भी अनेक प्राणियोंमें स्थित होइकरि अनेक रूपसे प्रतीत होवे है। तैसे एकही आत्मा ब्रह्मासे आदि स्तंबपर्यंत सर्व भूतोंमें व्यापक है। हे नचिकेता! जैसे यह सूर्य भगवान् सर्व भूतोंके नेत्रोंका देवता होइकरि सर्वके नेत्रोंमें स्थित होवे है और नेत्रोंके अंधत्वा-दिक दोषोंके तथा स्वच्छतादि गुणोंकरि लिपायमान होवे नहीं तैसे यह आत्मा साक्षी रूपसे स्थूल सूक्ष्म शरीरोंविषे स्थित हुआ भी इन शरीरोंके गुण दोषोंकरि लिपायमान होवे नहीं। और यह आत्मा असंग है यातें आध्यात्मिक लोकोंके दुःखोंसे कदा-चित् लिपायमान होवे नहीं। हे नचिकेता! यह एकही आत्मा सर्व भूतोंके अंतर है तथा सर्व जगत्का नियंता है। और वास्तवसे एक हुआ भी अनेक रूपोंकूं उपाधिकरि धारण करे है। ता आत्माकूं जे अधिकारी अपने अंतःकरणमें साक्षी-रूपसे प्रत्यक्ष जाने हैं। तिन विवेकी पुरुषोंकूंही नित्य ब्रह्मानंदकी

प्राप्ति होवे है । और जे विषय आसक्त चित्त हैं ते कदाचित् ता नित्य आत्मानंदकूं प्राप्त होवें नहीं । उलटा संसारचक्रमेंही क्लेशकूं प्राप्त होवे हैं । हे नचिकेता ! यह आत्मा नित्योंका नित्य है, नित्य जे अन्य शास्त्रमें काल आकाशादिक हैं तिन सर्वकूं सत्ता स्फूर्ति देनेहारा है । यातेंही श्रुति भगवतीने नित्यका नित्य कहा है । और यह आत्माकूं चेतन जे ब्रह्मादिक हैं तिन सर्वकूं चेतन करनेहारा है । यातें श्रुतियां आत्माकूं चेतनोंका चेतन कहे हैं । यह आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ही सर्व प्राणियोंके कर्म अनुसार फल देनेहारा है । ता आत्माकूं जे धीर अंतःकरणमें साक्षीरूपसे जाने हैं ते अधिकारी नित्य शांतिकूं प्राप्त होवे हैं। इतर बहिर्मुखोंकूं शांति प्राप्त होनी दुर्लभ है । वाणीका अविषय परम सुखरूप जो ब्रह्म है ताकूं संन्यासी अपरोक्ष रूपसे जाने है ऐसे सुखकूं मैं अधिकारी कैसे निश्चय करूं । सो सुखरूप ब्रह्म प्रकाशता है वा नहीं । तहां यह उत्तर है । यह ब्रह्मात्मा प्रकाशता है । और स्वयं ज्योतिरूप है । या आत्माके प्रकाश करनेमें सूर्य तथा चंद्र तथा तारे तथा विद्युत् यह सर्व समर्थ नहीं हैं । और जबी सूर्यादिक भी या आत्माके प्रकाश करनेमें समर्थ नहीं तौ यह अग्नि आत्माकूं प्रकाश करेगा यामें क्या कहना है । यातें आत्माके प्रकाशके पश्चात्‌ही ते सूर्य चन्द्रादि प्रकाश करे है । स्वतंत्र प्रकाश सूर्यादिकोंका नहीं है । किंतु आत्माके प्रकाश करिके ही यह सूर्यादि सर्व जगत् प्रतीत होवे है । अब कारणब्रह्मका निरूपण करे हैं जैसे वृक्षादि कार्यद्वारा ता कारण बीजका अनुमान होवे है तैसे या जगद्रूप कार्यद्वारा ता कारण ब्रह्मका अनुमान होवे है । हे नचिकेता ! यह संसाररूपी अश्वत्थका वृक्ष है । जो वस्तु दूसरे दिन पर्यंत न रहै ताकूं अश्वत्थ कहे हैं । यह शरीरादि रूप संसार क्षणभंगुर है यातें या

संसारकूंभी अश्वत्थ रूपसे श्रुति भगवतीने कथन करा है। और यह संसार कदलीके स्तंभकी न्यांई साररहित है। या संसाररूप वृक्षका मूलकारण सर्वसे ऊर्ध्व ब्रह्म है तथा चतुर्दश भुवनोंमें होनेवाले जे अंडजादि चतुर्विध जीव हैं ते सर्व ब्रह्ममूलकी अपेक्षासे नीचेकी शाखा हैं। और जैसे बीजसे अंकुर अंकुरसे बीज होवे है। तैसे यह जगत् स्वरूपसे तौ अनित्य है परंतु प्रवाहरूपसे अनादि है। पुण्य पाप रूप कर्मसे शरीरादि उत्पन्न होवे हैं। और शरीरसे उत्पन्न होवे हैं। ऐसे श्रुति माताने प्रवाहरूपसे या संसारकूं अनादि कहा है। जो या संसारवृक्षका मूल कारण ब्रह्म है, सो ब्रह्म शुद्ध है तथा स्वप्रकाश है। और सोई ब्रह्म अविनाशी है। ता ब्रह्ममेंही सर्वलोक स्थित हैं। और ता ब्रह्मकूं कोई पुरुष उल्लंघन करि सके नहीं। हे नचिकेता! जो तुमने धर्मादिकोंसे रहित पूछा था सो यही आत्मा है। हे नचिकेता! यह सम्पूर्ण जगत् जा परमात्मासे उत्पन्न भया है तथा जा परमात्मामें स्थित होइकरी अपने अपने व्यापारोंमें प्रवृत्त होवे है, सो यह आत्माही मृत्युरूप होइकरि सर्वका संहार करे है। और इन्द्रके उद्यत वज्रकी न्यांई यह आत्माही सम्पूर्ण इन्द्र चन्द्र सूर्यादि जगत्कूं महान् भयका हेतु है। या आत्माकूं ही विवेकी जानते हुए अमृतरूप मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं। हे नचिकेता! जैसे लोकपाल भी परमात्मासे भयभीत हैं सो श्रवण करो। या परमात्माके भय करिके ही अग्नि सर्वत्र व्याप्त हुआ भी अपने कार्य प्रकाश पाकादिकोंकूं करे है। सर्व जगत्के भस्म करनेमें समर्थ है भी, परंतु ता परमात्माकी आज्ञासे सर्व जगत्का दाह करे नहीं। और ता परमात्माके भयसे ही सूर्य जगत्कूं तपावे है और ता परमेश्वरके भयसे ही इंद्र वर्षा करे है। ता परमात्माके भयसे ही वायु चले है। ता परमात्माके भयसे ही मृत्यु सर्व जीवोंके

प्राणोंकूं निकासे हैं। पूर्व च्यारि देवतावोंकी अपेक्षासे मृत्युकूं पंचम वेदने कहा है। जबी ऐसे महान् प्रभाववाले देवता भी या परमात्मासे भयकूं प्राप्त होवे हैं तौ अन्य जीवकी क्या कथा है? भयकी निवृत्तिका उपाय ब्रह्मज्ञान है। हे नचिकेता! जबी यह पुरुष या शरीरके होते ही आत्माकूं न जाने तौ अनंत योनियों-में वारंवार जन्ममरणकूं ही प्राप्त होवे है और पुण्यकर्मके अनुसार जबी स्वर्गादिक फलोंकूं भी प्राप्त होवे है तहांभी मरणादिकोंका क्लेश तौ निवृत्त होवे नहीं। हे नचिकेता! जैसे शुद्ध दर्पण विषे मुख स्पष्ट प्रतीत होवे है। तैसे या अधिकारी देहमें जो शुद्ध-बुद्धि है तामें यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होवे है। और जैसे स्वप्नअवस्थामें अपना स्वरूप जीवोंकूं स्पष्ट प्रतीत होवे नहीं तैसे स्वर्गलोकमें भोगोंकी अधिकतासे यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होवे नहीं। तैसे स्वर्गलोकमें सकंपजलमें कंपादि विपरीत धर्म-वाला अपना मुख प्रतीत होवे है तैसे गंधर्वलोकमें विषयोंकी आसक्तिसे विपरीत धर्मसहित आत्मा प्रतीत होवे है। इस रीतिसे और लोकमें यथार्थ बोध होना दुर्घट है। और छाया आतप जैसे भिन्न भिन्न प्रतीत होवे हैं तैसे ब्रह्मलोकमें आत्मा पंचकोशसे भिन्न रूपसे प्रतीत होवे है, परंतु सो ब्रह्मलोक उपासना करिके प्राप्त होवे है। और ता ब्रह्मलोककी प्राप्तिमें विघ्न अनंत हैं यातें ता ब्रह्मलोककी आशा करि या अधिकारी देहमें वेदांतश्रवणा-दिकोंसे विमुख होना नहीं। हे नचिकेता! आकाशादिक पंचभू-तोंसे भिन्नभिन्न उत्पन्न भये जे इंद्रिय हैं तिन सर्वइंद्रियोंसे आत्मा भिन्न है। और यह इंद्रियादिक सुषुप्ति आदि अवस्थामें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं और जागरित अवस्थामें उदय होवे हैं और आत्मा कदाचित् भी उदय अस्तकूं प्राप्त होवे नहीं।

ऐसे विवेकी जानता हुआ जन्ममरणके हेतु कर्तृत्वभोक्तृत्वरूप बंधकूं निवृत्ति करे है। हे नचिकेता! इंद्रियोंसे मन पर है। मनसे निश्चय रूप बुद्धि पर है। ता व्यष्टिबुद्धिसे समष्टिबुद्धिरूप महत्तत्त्व पर है। ता महत्तत्त्वसे अव्यक्त जो माया है सो माया पर है। ता मायाकूं प्रकाश करनेहारा जो पुरुष आत्मा है सो पर है। सो आत्मा व्यापक है और बुद्धिआदिकोंसे रहित है। या आत्माकूंही जानकरि विवेकी जन्ममरणसे रहित हुआ परम मोक्षकूं प्राप्त होवे है और यह आत्मा नेत्रादिकोंका विषय नहीं इसीसे या आत्मामें नेत्रादि प्रवृत्त होवे नहीं यातें इन नेत्रोंकरि कोई पुरुष भी या आत्माकूं देखसके नहीं। यातें संकल्पसहित मनकूं वश करनेहारी जो अंतर्मुख शुद्ध बुद्धि है ता बुद्धिसे ही विवेकी पुरुष आत्माकूं जाने है। ता आत्मज्ञानसेही परम मोक्षकूं प्राप्त होवे है। हे नचिकेता! जा कालमें या पुरुषके ज्ञान इंद्रिय तथा मन अपनी चंचलताकूं त्याग करि निश्चलताकूं प्राप्त होवे है ता कालमें ता निश्चलताकूं परम गति या नाम करि महात्मा कहे हैं। ता एकाग्रताकूं ही महात्मा योग मानते हैं। यह इंद्रियोंकी निश्चल धारणा ही परम योग है। यह इंद्रियोंकी धारणारूप योग ही ब्रह्मप्राप्तिद्वारा या जगत्के उत्पत्ति तथा संहारकी सामर्थ्यरूप ऐश्वर्यकी प्राप्तिका कारण है। यातें ता योगकी प्राप्तिवासते प्रमादकूं त्याग करे। हे नचिकेता! तो योगके विना तौ यह आत्मा वाणी करि प्राप्त होवे नहीं तथा श्रोत्र नेत्रादिकोंकरि यह आत्मा प्राप्त होवे नहीं, ऐसा शुद्ध चेतन ही सत्यरूप है। या प्रकारके वचनोंकूं कथन करनेहारे जे आस्तिक पुरुष हैं तिन आस्तिक पुरुषोंके मतकूं त्याग करिके जे बहिर्मुख नास्तिकोंके मतमें श्रद्धा करे हैं तिन बहिर्मुखोंकूं आत्मबोध कदा-

चित् होवे नहीं। हे नचिकेता ! यह अधिकारी प्रथम आत्माकूं बुद्धि आदि उपाधिवाला निश्चय करे। तथा जगत्का कारण अस्तिरूपसे निश्चय करे। ता अनंतर वास्तव अविक्रिय शुद्धरूपसे निश्चय करे। ऐसे जा अधिकारीने प्रथम अस्तिरूपसे आत्माकूं निश्चय करा है। ता अधिकारीकूं ही आत्मा प्रसन्न होकरि अपने यथार्थ रूपमें दिखावे है। हे नचिकेता ! या पुरुषकी बुद्धिमें स्थित जे विषयोंकी इच्छा हैं ते संपूर्ण जिस कालमें निवृत्त होवे हैं। तिस कालमें अमृतभावमें प्राप्त होवे हैं। और अज्ञानकालमें मर्त्यनाम मरनेवाला मानता था अब ब्रह्मबोध प्रतापसे मरणादिकोंके त्याग करे है। और या शरीरमें ही ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवे है। हे नचिकेता ! जिस कालविषे या पुरुषके ग्रंथिकी न्याईं हृदयमें स्थित बंधनरूप देहादिकोंमें अहंता और पुत्रादिकोंमें ममता निवृत्त होवे है। ता कालमें ही पुरुष अमृतभावकूं प्राप्त होवे और जन्ममरणकूं त्यागकरि यहां ही ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवे है। जाकी अविद्यादि ग्रंथि निवृत्तिकूं प्राप्त होवे है ताकी तो या शरीरमेंही मुक्ति होवे है। ताका स्वर्गनरकादिकोंमें गमन होवे नहीं। और जे उपासक हैं तथा अन्य शुभ अशुभ करनेहारे हैं तिनकी गतिका प्रकार कहे हैं। हे नचिकेता ! हृदयरूप मूलसे प्रधान नाडियां एक उपरि शत १०१ निकसे हैं। तिन सर्व नाडियोंसे विलक्षण जाकूं सुषुम्ना कहे हैं। सो सुषुम्ना नाडी ब्रह्मलोककी प्राप्तिमें द्वार है और सूर्यमंडल पर्यंत प्राप्त भई है। ता सुषुम्ना नाडीकरि यह जीव ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है। अन्य नाडियोंकरि यह जीव उच्च नीच शरीरकूं प्राप्त होवे है। अब सर्व कठ उपनिषत्के अर्थकूं संक्षेपसे प्रतिपादन करे हैं। हे नचिकेता ! यह सर्वके अंतरात्मा अंतःकरणके अंगुष्ठ-

परिमाण होनेसे अंगुष्ठ परिमाणवाला है । और यह आत्मा सर्वके हृदयमें स्थित है । ता आत्माकूं तीन शरीरसे भिन्न जाने । जैसे मुंजरूप बाह्य त्वचासे इषीकारूप मध्यके तृणकूं भिन्न करे हैं । तैसे अन्वयव्यतिरेककरि स्थूल सूक्ष्म कारण या तीन शरीरसे आत्माकूं भिन्न करे । संक्षेपसे अन्वयव्यतिरेककूं प्रसंगसे कहे हैं । स्वप्नावस्थामें यह स्थूलशरीर प्रतीत होवे नहीं । यातें या स्थूल शरीरका व्यतिरेक है । आत्मा स्वप्नमें भी प्रकाश करे है । यह आत्माका स्वप्नमें अन्वय है । सुषुप्तिमें भी सूक्ष्म शरीरका अभाव है । यह सूक्ष्म शरीरका सुषुप्तिमें व्यतिरेक है । आत्मा सुषुप्तिमें भी अज्ञानकूं प्रकाश करे है । यह आत्माका सुषुप्तिमें अन्वय है । और अज्ञानरूप कारणशरीर समाधि अवस्थामें रहे नहीं । यह कारण शरीरका व्यतिरेक है । और आत्मा समाधि अवस्थामें भी प्रतीत होवे है । यह आत्माका समाधि अवस्थामें अन्वय है । ऐसे धैर्यसे अन्वयव्यतिरेकरूप युक्तिकरिके तीन शरीरोंसे अपने साक्षीरूपकूं पृथक् करे ता साक्षीकूं ब्रह्मरूप निश्चय करे । कैसा ब्रह्म है । स्वयंप्रकाश है तथा शुद्ध है जरामरणशून्य है । ता शुद्धब्रह्मकूं जाननेवाला विवेकी भी शुद्धब्रह्मकूं ही प्राप्त होवे है । कथाकूं समाप्त करे हैं । ऐसे यमराजासे उपदेशकूं ग्रहण करि तथा संपूर्ण समाधिके प्रकारकूं ग्रहण करि नचिकेता ब्रह्मकूं प्राप्त होता भया । और पुण्यपापसे रहित हुआ अमृतभावकूं प्राप्त भया । ऐसे नचिकेताकी न्याई कोई अन्य भी या ब्रह्मकूं जाननेवाला अमृतभावकूं प्राप्त होवे है । अब शांतिमंत्रके अर्थकूं कहे हैं । सो परमात्मा हम गुरु शिष्य दोनूकूं ज्ञानप्रकाश करनेसे रक्षा करे । तथा ज्ञानके फल प्रगट करने करि हमारा पालन करे । और हम गुरु शिष्यका पठन बलवाला होवे । सर्वविघ्नोंके नाश करनेवाला होवे । और हमारे

प्रमाद करि पढने पढानेसे भया जो दोष ता दोषसे उत्पन्न भया जो हम गुरु शिष्यमें द्वेष सो द्वेष हमकूं मति प्राप्त होवे। अध्यात्म अधिभूत अधिदैव या तीन प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिवासते अंतमें तीन वार शांति पाठ है सो यह है॥ ॐ॥ शांतिः शांतिः शांतिः। ॐ तत्सत्। इति श्रीमत्परमहंसपरिव्रजकाचार्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपाद शिष्यसंप्रदायप्रविष्ट-परमहंसपरिव्राजकस्वामि-अच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे यजुर्वेदीयकठोपनिषदर्थनिर्णयः॥ २॥

इति कठोपनिषद्भाषांतरम्॥ २॥

ॐ

अथ प्रश्नोपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐ नमो वेदपुरुषाय । अथ अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषत्प्रारंभः । किसी देशमें षट्ऋषि परस्पर स्नेहवाले हुए इकट्ठे होते भये । तिन षट्ऋषियोंके नाम वर्णन करे हैं । भरद्वाजऋषिका पुत्र होनेसे भारद्वाजनामकूं प्राप्त भया, सुकेशा नामवाला एक होता भया । द्वितीय शिबिऋषिका पुत्र होनेसे शव्य नामकूं प्राप्त हुआ, सत्यकामनामा ऋषि होता भया । और तीसरा गोत्रकरि गार्ग्यसंज्ञाकूं प्राप्त भया सौर्यायणिनामा ऋषि था । और चतुर्थ अश्वलऋषिका पुत्र होनेसे आश्वलनामावाला हुआ कौशल्यनामक ऋषि होता भया। और पंचम विदर्भऋषिके कुलविषे उत्पन्न होनेसे वैदर्भि या नामकूं प्राप्त हुआ भार्गवनामा ऋषि होता भया । षष्ठ कतऋषिके कुलविषे उत्पन्न होनेसे कात्यायन नामकूं प्राप्त हुआ कबंधी नामा ऋषि था । यह षट् ऋषि च्यारि वेदोंकूं पढकरि वेद उक्त कर्म उपासनाकूं करते भये । ता कर्म उपासनाके करनेसे शुद्ध अंतःकरणवाले हुए निर्गुण ब्रह्मके जाननेकी इच्छाकूं करते भये । और आपसमें मिलिकरि या प्रकारका विचार करते भये । जो गुरु ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ होवे सो हमकूं निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करे । ऐसे विचार करते हुए ते ऋषि ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ पिप्पलादगुरुकी शरणकूं प्राप्त होते भये। और कहते भये हमकूं निर्गुणब्रह्मका उपदेश करो । दंतधावनकाष्ठरूप भेटकूं ग्रहण करि शरणकूं प्राप्त भये । जे षट्ऋषि हैं तिनकूं पिप्पलादऋषि यह कहता भया । हे ऋषयः ! यद्यपि तुम आगेही तपस्वी हो तथापि तुम मेरे समीप ब्रह्मचर्यसे तथा श्रद्धासे इंद्रियसंयमरूप तपकूं धारकरि एक

वर्षपर्यंत रहो। एक वर्षके पश्चात् जैसी तुमारी इच्छा हो तैसे तुमने प्रश्न करने और यदि हम तुमारे प्रश्नोंके उत्तर देनेमें समर्थ भये तब तुमारे प्रति सर्व उत्तर देवेंगे। ऋषि पिप्पलादने जो कहा हम जानेंगे तब हम उत्तर देवेंगे। या कहनेसे अभिमानराहित्य यह ब्रह्मवेत्ताका चिह्न है यह जनाया। तामें हेतु यह है जो आगे पिप्पलादनामा ऋषिने षट् ऋषियोंके प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं। ऐसे जभी पिप्पलादऋषिने नम्रतापूर्वक कह्या तभी ते ऋषि श्रद्धापूर्वक ता पिप्पलाद ऋषिके समीप ब्रह्मचर्यसहित तपकूं करते भये। वर्षके व्यतीत भयेसे अनंतर कबंधी नामा कतऋषिका पुत्र होनेसे कात्यायननामकूं जो प्राप्त भया था सो पिप्पलादमुनिकूं दंडवत् प्रणाम करि यह प्रश्न करता भया। हे भगवन्! यह संपूर्ण प्रजा किस कारणसे उत्पन्न होवे है यह कृपा करि हमारेकूं कहो। ऐसे कबंधीऋषिके प्रश्नकू श्रवण करि पिप्पलाद गुरु उपदेश करे हैं। हे कबंधीकात्यायन! प्रजापति जो विराट् है सो विराट् विचार करिके भोक्तारूप अग्निकूं और भोग्यरूप चंद्रमाकूं रचता भया। यद्यपि मायाविशिष्ट परमेश्वरसे जगत् उत्पत्ति कथन करने योग्य थी। तथापि कात्यायन महासृष्टि परमेश्वरसे उत्पन्न भयी है ऐसे पूर्वही भली प्रकारसे जानता है। ऐसे जानकरि ता महासृष्टिकी उपेक्षा करिके विराट्से उत्पन्न भयी सृष्टिकूं पिप्पलादगुरु निरूपण करे हैं। ऐसे उत्पन्न करे जे अग्नि चन्द्रमा हैं यह दोनूं अग्नि चंद्रमा मेरी बहुत प्रजाकूं उत्पन्न करेंगे ऐसे विचार करि ता विराट्ने अग्नि चन्द्रमा यह दोनूं उत्पन्न करे। सो भोक्तारूप अग्नि दो प्रकारका है। एक अध्यात्म प्राण है सो भोक्ता है। दूसरा अधिदैव अग्नि है सो सूर्यरूप है। और चंद्रमा अन्नरूप है। अर्थ यह भोग्यरूप है। जो मूर्त्तरूप

स्थूल है तथा अमूर्त्तरूप सूक्ष्म है सो सर्व अन्नरूप है और वास्तवमें तौ अमूर्त्त प्राण अत्ता है। अर्थ यह भोक्ता है। गौणसे अमूर्त्तकूं भी श्रुतिने पूर्व अन्नरूपता कही। अन्न तौ केवल मूर्त्त जो स्थूल है सोई भोग्य है। अब भोक्ता जो अधिदैवरूप करि आदित्य है ताकूं कहे हैं। सूर्य भगवान् पूर्व दिशासे उदय हुआ पूर्वदिशामें जे प्राण हैं तिनकूं अपनी किरणोंमें धारण करे है। अर्थ यह जो अपने प्रकाशसे पूर्व दिशाके नेत्ररूप प्राणोंकूं प्रकाश करे है तैसे दक्षिणदिशामें स्थित प्राणोंकूं तथा तिन दिशाकूं प्रकाश करे है तथा पश्चिम उत्तर दिशाकूं प्रकाश करे है तथा तिन दिशामें स्थित नेत्ररूप गौण प्राणोंकूं प्रकाश करे है तथा च्यारि कोणोंकूं और तिन कोणोंमें स्थित नेत्ररूप प्राणोंकूं प्रकाश करे है। तैसे ऊर्ध्वदिशा तथा नीचेकी दिशाकूं प्रकाश करे है और उपरि नीचे स्थित जे नेत्र हैं तिनकूं प्रकाश करे है। हे कात्यायन! यह सूर्यभगवान सर्व दिशाओंमें प्रकाशता हुआ सर्व नेत्ररूप प्राणोंकूं प्रकाश करे है। और सर्व प्रकाश्य वस्तुका भोक्ता पुरुष है। तथा सर्व विश्वका आत्मा है। हे कात्यायन! यह सर्वरूप तथा किरणवाला तथा ज्ञानरूप सर्व प्राणोंका आश्रय सूर्य है। सर्व प्राणियोंका नेत्ररूप और अद्वितीय तथा तपावनेहारा तथा प्राणियोंके प्राणोंकरि सहस्ररूपोंसे वर्त्तमान जो सूर्य उदय होता है ताकूं पंडित पुरुष जानते हैं। हे कात्यायन! यह प्रजापति विराट् वर्षरूप है। ता वर्षरूप प्रजापतिके दक्षिणायन तथा उत्तरायणरूप दो मार्ग हैं। जे पुरुष अग्निहोत्रादि रूप इष्ट कर्मकूं करे हैं तथा वापी कूप तडाग देवतामंदिर अन्नदान आदिरूप पूर्त्त कर्मकूं करे हैं। तैसे नित्यकर्म करनेहारे चंद्रलोककूं प्राप्त होवे हैं। ता चंद्रलोकसे या लोककूं प्राप्त होवे हैं। कर्मफल भोगके अनंतर

चन्द्रलोकमें तिनका रहना होवे नहीं।ऐसे स्वर्गलोकार्थी तथा प्रजाकी कामनावाले हुए दक्षिणायन मार्गकूं ही प्राप्त होवे हैं। ता मार्गकरि भोग्यरूप चंद्रमाकूं प्राप्त होवे हैं। हे कात्यायन! उत्तरायणमार्गकरि भोक्तारूप सूर्यको प्राप्त होवे हैं। अब उत्तरायणमार्गकी प्राप्तिमें साधनोंकूं श्रवण करो। तप जो इंद्रियोंका जय है तथा ब्रह्मचर्य श्रद्धा सगुण उपासनादिक ता उत्तरायणमार्गकी प्राप्तिमें साधन हैं। तिन साधनोंकरि जे पुरुष यह मानते हैं स्थावर जंगम जगत्का पालक जो आदित्य है सोई हम हैं। ऐसे माननेवाले पुरुष उत्तरायणमार्गद्वारा आदित्यकूं प्राप्त होवे हैं। यह आदित्य सर्व प्राणोंका आश्रय है। तथा अभय है। तथा अमृत है। उपासक पुरुषोंकी परम गति यह है। या सूर्यमंडलद्वारा ब्रह्मलोककूं प्राप्त भया जो उपासक है सो या संसारमें पुनः प्राप्त होवे नहीं। और केवल कर्मी उपासना विना या आदित्यमंडलकूं प्राप्त होवे नहीं। यद्यपि गीतामें भगवान्ने यह कहा है। हे अर्जुन! ब्रह्मलोक-पर्यंत जे लोक हैं तिन सर्वसे या संसारमें अवश्य आगमन होवे है। या अस्थानमें श्रुतिने तिन उपासक पुरुषोंका आगमनका अभाव प्रतिपादन करा है। यातें गीतावचनसे यह श्रुतिवचन विरुद्ध प्रतीत होवे है। जैसे वेद ईश्वररचित है तैसे गीताभी श्रीकृष्णभगवान् रचित है। यातें गीताकूं अप्रमाणता कहना भी बने नहीं। तथापि जे पुरुष ईश्वरउपासना विना पंचाग्निविद्या अश्वमेध दृढब्रह्मचर्य इत्यादि साधनोंकरि उत्तरायण मार्गद्वारा ब्रह्मलोकमें प्राप्त भये हैं, तिनका आगमन होवे है। और जे ईश्वर उपासनाकरि तथा अहंग्रहउपासना करि ब्रह्मलोकमें प्राप्त भये हैं, तिनका या संसारमें आगमन होवे नहीं। ब्रह्मलोकमें ईश्वरकृपाकरि ज्ञानकूं प्राप्त हुए परम मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं। यातें

गीतामें ईश्वरउपासकके विना जे पुरुष पंचाग्निविद्या अश्वमेधादि उपायसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त भये हैं तिनका आगमन कहा है। और या उपनिषत्में आदित्य भगवान्की अहंग्रहउपासनासे आगमनका अभाव प्रतिपादन करा है। यातें गीतावचनसे विरोध नहीं। हे कात्यायन ! या सूर्यभगवान्का षट्ऋतुरूप पाद हैं। मूलश्रुतिमें हेमंतशिशिरकी एकताके अभिप्रायसे सूर्यके पंच ऋतु पाद कहे हैं। द्वादशमासरूप अन्य अवयव हैं और यह सूर्य तीसरे आकाशमें हैं। जलवान् हैं। सूर्यसेही वर्षा होवे है। दूसरे वेदके आचार्य तौ ऐसे कहे हैं। सप्त अश्वोंवाला जो रथ है तामें स्थित जो सूर्य है सोई वर्षरूप चक्र है, ता वर्षरूप चक्रकी षट्ऋतु रूप अरा हैं। ता सूर्यमें जगत् स्थित है। मासरूप प्रजापति है। मासरूप प्रजापतिका कृष्णपक्ष अन्न है। शुक्लपक्ष भोक्ता प्राण है। ऐसे प्राण आदित्यरूप अग्नि भोक्ताकूं जे जानते हैं ते कृष्णपक्षमें भी यज्ञ करते हुए शुक्लपक्षमें ही करते हैं। ऐसे न जाननेवाले शुक्लपक्षमें भी यज्ञ करते हैं तौ भी कृष्णपक्षमें ही करते हैं ऐसे जानना। दिनरात्रिरूप प्रजापति है जिस प्रजापतिका दिन प्राण है रात्रि अन्न है। जे पुरुष दिनमें स्त्रीके साथ मैथुन करते हैं ते अपने प्राणोंका नाश करते हैं। जे गृहस्थ विधिपूर्वक रात्रिमें अपनी स्त्रीके साथ मैथुन करते हैं ते ब्रह्मचारी ही हैं। हे कात्यायन ! अन्नरूप भी प्रजापति है। माता पिताने भक्षण किया जो अन्न है ता अन्नसे वीर्य और रक्त उत्पन्न होवे है। ता वीर्य और रक्तसे यह सर्व जीव उत्पन्न होवे हैं। ऐसे रात्रिमें अपनी स्त्रीके साथ गमन करना यह प्रजापतिका व्रत कहावे है। या व्रतकूं जे गृहस्थ विधिपूर्वक करते हैं तिनकूं प्रत्यक्ष फल तौ पुत्र कन्याकी प्राप्ति होवे है। द्वितीय अदृष्ट फल स्वर्ग प्राप्त होवे है। हे कात्यायन !

निर्मल ब्रह्मलोक तौ तिनकूं प्राप्त होवे है जिनके सर्वदा सत्य संभाषण हैं। तथा जिनका किसी व्यवहारमें कौटिल्य नहीं है और जिनके माया नहीं। माया नाम बाह्यसे और प्रकारका प्रतीत होना अंतरसे और प्रकारका होना। सत्यसंभाषण तथा कौटिल्यराहित्यं तथा मायाराहित्य तथा ईश्वर उपासना इन साधनोंके विना ब्रह्मलोक प्राप्त होवे नहीं। ऐसे पिप्पलाद ऋषिने अग्निचंद्रमाद्वारा प्रजापतिही सर्व जगत्का कर्त्ता है यह कहा। ऐसे प्रजापति विराट्कूं जगत्का कारण निश्चयकरि कात्यायन तौ तूष्णीं होता भया १। अधिदैव सूर्य अग्नि आदि रूपसे प्राणकी उपासनामें उपयोगी अर्थका प्रथम प्रश्नमें कथन करा अब अध्यात्मरूपसे प्राणके प्रभावके निरूपणवास्ते द्वितीय प्रश्नका आरंभ है। अब वैदर्भिनामा भार्गवऋषि प्रश्न करे है। भार्गव उवाच। हे भगवन्! या संघातकूं कितने देवता धारण करे हैं और तिन देवताओंमें भी कितने देवता प्रकाश करनेहारे हैं। तिन सब देवताओंविषे भी श्रेष्ठ कीर्त्ति अधिकतादि गुणोंवाला कौन है। या तीन प्रश्नोंका उत्तर कहो। अब पिप्पलाद गुरु उत्तर कहे हैं। पिप्पलाद उवाच। हे भार्गव ! आकाशादि पंच भूत श्रोत्रादि पंच ज्ञानइंद्रिय वागादि पंच कर्मइंद्रिय एक मन एक प्राण इनके अभिमानी सप्तदश देवता या सर्व शरीरकूं धारण करे हैं। तिन सर्वमें पंच ज्ञानइंद्रिय एक मन यह षट् प्रकाश करे हैं। तिन षट्में भी प्राण श्रेष्ठ है। काहेते अंध बधिर आदि नेत्र श्रोत्रादिकोंसे रहित हुए भी जीवते देखनेमें आवे हैं। जबी प्राण निकसने लगे तबी सर्व विवरण होइ जावे हैं। यातें प्राण ही या संघातमें श्रेष्ठ है। या प्राणकी श्रेष्ठता अब कथन करे हैं। यह श्रोत्रादि इंद्रिय या संघातकूं प्रकाशते हुए अभिमान करते

भये और यह कहते भये कि हम ही या शरीरकूं धारण करते हैं। ऐसे अभिमानवाले श्रोत्रादिकोंकूं श्रेष्ठ प्राण कहता भया । तुम अविवेककरि अभिमानकूं मति करो । या शरीरकूं प्राण अपान व्यान उदान समान या पंचरूपसे मैं रक्षा करता हूं। तुम किसवास्ते व्यर्थ अभिमान करते हो। ऐसे प्राणके वचनकूं श्रवण करिके भी ते नेत्रादि श्रद्धा न करते भये । प्राणने तिन श्रोत्रादिकोंकी अश्रद्धा निश्चय करी, तब प्राण महान् क्रोधकूं प्राप्त भया और या शरीरसे बाह्य निकस जाता भया तबी श्रोत्रादिक भी दुःखी हुए निकस जाते भये । जैसे मधुकरराजा नाम प्रधान मक्षिका जबी मधुदेशसे चली जावे तबी दूसरी मक्षिका ता मधुदेशमें स्थित होवे नहीं किंतु तिस राजाके साथही गमन करे हैं। जबी राजा स्थित होवे है तबी दूसरी मक्षिका स्थित होवे हैं । तैसे जबी प्राण गमन करे तबी श्रोत्रादिक भी गमन करें। जबी प्राण स्थित होवे तबी श्रोत्रादिक भी स्थित होते भये। ऐसे श्रोत्रादिक सर्व अपनी स्थिति प्राणके आश्रयही निश्चय करि प्राणकी स्तुति करते भये। हे प्राण ! तुमही सूर्य हो। तुमही अग्नि हो । मेघ इंद्र वायु पृथिवी अन्नदेवता स्थूल सूक्ष्म और देवताओंका भोग्यरूप अमृत यह सर्व पदार्थ तुम ही हो। जैसे रथकी नाभिमें अरा स्थित होती है तैसे तुम प्राणमें सर्व जगत् स्थित है। ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद यज्ञ क्षत्रिय ब्राह्मण यह सर्व तुमारेमें स्थित हैं। प्रजापति विराट् तुम हो । तुम ही माताके गर्भमें प्रथम स्थित होइकरि उत्पन्न होते हो। जो तुम प्राणरूपकरि या शरीरमें स्थित है तुमारे वास्ते यह मनुष्यादि सर्व जीव नेत्रादिकोंकरि रूपादिकोंके ज्ञानरूप बलियोंकूं देवे हैं। हे प्राण ! देवताओंमें हविके भक्षण करनेहारा जो श्रेष्ठ अग्नि है सो तुमारा स्वरूप है। पित्रोंका अन्न भी तुम

हो । इंद्रियोंके मध्यमें जो श्रेष्ठ तुम प्राण हो तुमारे करिके ही या शरीरकी चेष्टा होवे है । हे प्राण ! तुमही परमेश्वर हो और शिव-रूप हुए अपने बलकरि या जगत्का नाश करते हो और विष्णु-रूपसे जगत्की पालना करते हो और सर्व ज्योतियोंके पति सूर्य-रूपसे अंतरिक्षमें विचरते हो और हे प्राण ! जबी तुम मेघरूप होइकरि वर्षा करते हो तो तब अन्न बहुत होवे है । ता अन्नकूं प्राप्त होइकरि यह सर्व तेरी प्रजा सुखकूं प्राप्त होवे है । हे प्राण ! तुम स्वभावसे शुद्ध हो । अथर्वण वेदके वेत्ता जे ऋषि हैं तिनके अग्निका नाम एकर्षि है । हे प्राण ! एकर्षि अग्नि हविभक्षणकर्ता तुम हो । या जगत्के श्रेष्ठ पति तुम हो । हम श्रोत्रादि तुमारेकूं हवि देनेहारे हैं । हे प्राण ! तुम हमारे सर्वके पिता हो । हमारे अप-राधकूं आप क्षमा करो । जो तुमारी मूर्ति वाक्में स्थित है और जो श्रोत्रमें तथा नेत्रोंमें स्थित है तथा जो तुमारी मूर्ति मनमें स्थित है ता मूर्तिकरिही सर्व हमारेमें बल है ता मूर्तिकूं कृपा करि मति निकासो । ता मूर्तिकरि ही हमारा सर्वका कल्याण है । हम सर्व आपके किंकर हैं । हे प्राण ! हम बहुत क्या कहें जो स्वर्गमें भी पदार्थ हैं तिन सर्वके आप रक्षक हो जैसे माता पुत्रोंकी रक्षा करे है तैसे तुम हमारी रक्षा करो, हमारी धनादि रूप जो श्री है ताकी रक्षा करो । तथा ता श्रीकी रक्षा वास्ते हमारे तांई बुद्धिका दान करो । ऐसे अन्य श्रोत्रादिरूप देवता प्राणकी स्तुति करते भये । यातें प्राण ही सर्वसे श्रेष्ठ है । ऐसे भार्गव ऋषि श्रवण करि तूष्णींकूं प्राप्त भया तिसके अनंतर आश्वलायन नामवाला कौश-ल्यऋषि प्राणके उत्पत्ति स्थिति आदिकोंके निर्णय वासते षट् प्रश्नोंकूं करता भया । आश्वलायन उवाच । हे भगवन् ! या प्राण-की किससे उत्पत्ति होवे है १ । किस निमित्तसे या शरीरमें

संबंध होवे २ । और यह प्राण अपनेकूं भिन्न भिन्न करिके किस प्रकारसे या शरीरमें स्थित होवे है ३ । और किस द्वारसे किस वृत्तिकरिके तथा किस निमित्तसे या शरीरसे बाह्य निकसे है ४ । और यह प्राण बाह्य अधिदैव तथा अधिभूतकूं कैसे धारण करे है ५ । और यह प्राण अध्यात्मकूं कैसे धारण करे है ६ । या प्रश्नोंका हमकूं आप उत्तर कहो। पिप्पलाद उवाच । हे आश्वलायन ! तुम अतिशयकरिके ब्रह्मपरायण हो यातें ब्रह्मिष्ठ हो । जिस हेतुसे तुमने अतिसूक्ष्म प्रश्न करे हैं यातें ही तुम ब्रह्मिष्ठ हो । अब मैं तुमारे प्रश्नोंका उत्तर कहता हूं तुम सावधान होइकरि श्रवण करो । यह प्राण आत्मासे उत्पन्न होवे है । यह प्रथम प्रश्नका उत्तर है १ । मनके संकल्पकरिके उत्पन्न भये शुभाशुभ कर्म हैं तिन कर्मोंकरिके ही या स्थूल शरीरमें प्राप्त होवे है । यह दूसरे प्रश्नका उत्तर है २ । और जैसे चक्रवर्ती राजा अपने मंत्रियोंकूं आज्ञा करे है । इन ग्रामोंमें तुम आज्ञा करो और न्याय करो ऐसे द्वितीय तृतीयादि अपने सर्व मंत्रियोंकूं प्रेरण करे है । ऐसे यह प्राण सर्व नेत्रादिकोंकूं अपने अपने स्थानोंमें स्थापन करिके तिन सर्व नेत्रादिकोंकूं प्रेरण करे है । और पायु उपस्थमें अपने रूपसे यह प्राण स्थित होवे है । दो नेत्र दो श्रोत्र दो नासिका एक मुख इन सप्त छिद्रोंविषे प्रधान प्राणरूप करिके आप प्राण स्थित होवे है । तथा मुख नासिका द्वारा बाह्यगमनागमन करे है । यह समाननामा प्राण शरीरके सर्व देशोंमें व्यापक होइकरि रहै है । सो समाननामा प्राण ही भक्षण करे अन्नकूं तथा पान करे जलकूं समान करे है । यातें सर्व शरीरमें व्यापकरूपसे रहे है । अब व्यानके आश्रय करनेवास्ते प्रथम नाडियोंकी संख्या कथन करे हैं । हे आश्वलायन ! हृदयदेशमें यह जीवात्मा विशेष करिके रहे है । या

हृदयदेशमें एक सुषुम्नारूप मूलसहित एक सौ एक १०१ नाडी हैं। तिस सुषुम्नानाडीकूं छोडकरि तिन शतस्कंध नाडियोंमें भी एक एक नाडीमें सौ सौ शाखा नाडियां रहे हैं। तिन सौ सौ शाखा नाडियोंमें भी एक एकमें बहत्तर बहत्तर सहस्र प्रतिशाखा नाडियां रहे हैं। शाखा प्रतिशाखा नाडियां मिलकरि ते नाडियां बहत्तर कोटि ७२००००००० संख्यावाली होवे हैं। तिन सर्वमें व्याननामा प्राण वर्ते है और तिन सर्वमें जो सुषुम्ना नामा नाडी है ता करिके उदाननामा प्राण ही विचरे है। कैसाभी उदान है ऊर्ध्व गमन करनेका है स्वभाव जिसका ३। इतनेकरिके किस द्वारसे तथा किस वृत्तिसे तथा किस निमित्तसे प्राण निकसे है या प्रश्नमें दो प्रथम अंशोंका उत्तर कह दिया। सुषुम्नानाडीरूपद्वारसे तथा उदानवृत्तिसे निकसे है ऐसे प्रथम दो अंशोंका उत्तर कहिकरि अब किस निमित्तसे है या तृतीय अंशका उत्तर कहे हैं। हे आश्वलायन! जा पुरुषने पुण्यकर्म करे हैं ता पुरुषकूं उदाननामा प्राण स्वर्गादि ऊर्ध्व लोककूं ले जावे है और जा पुरुषने पाप कर्म करे हैं ता पुरुषकूं सो उदान नरकादि नीच लोककूं प्राप्त करे है। जा पुरुषने पुण्य पाप मिश्रित कर्म करे हैं ता पुरुषकूं मानुष्यलोकमें सो उदाननामा प्राण प्राप्त करे है ४। अब बाह्य अधिदैवरूप जगत्कूं तथा अधिभूतरूप बाह्य जगत्कूं कैसे धारण करे है तथा अध्यात्मजगत्कूं कैसे धारण करे है या पंचम तथा षष्ठ प्रश्नका उत्तर कहे हैं। हे आश्वलायन! बाह्य जो आदित्यरूप अधिदैव प्राण है यह बाह्य अध्यात्मरूप जगतको धारण करे है। यह आदित्यरूप प्राण उदय हुआ नेत्रोंमें स्थित अध्यात्मप्राणकूं घटादिज्ञानमें उपकार करे है और पृथ्वीमें अभिमानी जो प्रसिद्ध अग्नि देवता है सो यह देवता पुरुषकी अपानवृत्तिकूं अपने अधीन

करिके वर्ते है। तिस देवता विना शरीर भारी होनेसे गिर पडे वा आकाशमें उपरि चला जावे नीचे न गिरना वा उपरि न जाना यह केवल अग्निरूप पृथिवीकी ही कृपा है। पुरुषके शरीरमें जो समान वायु है सो समान वायु आकाशस्थ बाह्य वायुरूप है। जो बाह्य पृथिवी स्वर्गके मध्यमें स्थित हुआ अंतर समानवायु उपरि अनुग्रह करे है। सो सामान्यरूपसे बाह्यव्यापक वायु है सो व्यानरूप है। व्यान भी सर्व नाडियोंमें व्यापक है। व्यापकतासे ही बाह्यवायुकूं व्यानरूप कह्या। सो सामान्यरूपसे बाह्य वायु व्यानके उपरि अनुग्रह करता हुआ वर्ते है। जैसे उदान ऊर्ध्व गमन करे है तैसे बाह्य तेज भी ऊर्ध्व गमन करे है यातें तेज उदानरूप है। बाह्य तेजकी कृपासे ही उदान या शरीरमें वर्त्तता है। जब यह शरीर शीतल होइ जावे तब याकूं लोक मरनेवाला जाने हैं। तब मनमें वागादिक इंद्रिय सर्व मिल जावे हैं। ता मनसहित इंद्रियोंकरि यह जीव अन्य शरीरकूं प्राप्त होवे है। मरणकालमें या जीवका जा शुभ शरीरमें वा अशुभ शरीरमें चित्त होवे है प्राणवृत्तिसहित होइकरि पूर्व शरीरकूं त्यागिके उदानवृत्तिसे ता शरीरकूं प्राप्त होवे है। यहां यह भाव है। सूर्य अग्नि आकाश सामान्य वायु और तेजरूप हुआ मुख्य प्राण सूर्य अग्नि आदिक बाह्य अधिदैवकूं धारण करता है। सूर्य आदि रूपसे स्थित होना ही तिन सूर्य आदिकोंका धारण हैं। और सूर्य भगवान् उदय हुआ चक्षु आदिकोंका अनुग्रह करता है इत्यादि कथनसे चक्षु आदि रूप बाह्य अधिभूतकूं मुख्य प्राण सूर्य आदि रूपसे धारण करे है यह सूचन करा। और अन्य श्रुतिमें यह कहा है सो प्राण ही चक्षु प्राण ही वाक् मन श्रोत्रादिरूपसे स्थित होवे है या कथनसे चक्षु आदि अध्यात्मका धारण कहा। हे आश्वलायन! जो पुरुष पूर्व कही

रीतिसे प्राणकूं उत्पत्ति आदि सहित जाने है सो ज्ञाता पुरुष या लोकमें पुत्र पौत्रादिकोंके वियोगकूं प्राप्त होवे नहीं और शरीरकूं त्यागकरि प्राण सायुज्यरूप अमृतभावकूं प्राप्त होवे है। उक्त अर्थकूंही संक्षेपसे यह मंत्र कहे है। जो पुरुष प्राणकी उत्पत्ति परमात्मासे जाने है। कर्म करि या शरीरमें स्थितिकूं जाने है। तथा प्राण सर्वका स्वामी है। तथा प्राण अपानादि पंचरूपसे स्थित है। तथा बाह्य आदित्यादि रूपसे अध्यात्मनेत्रादिरूपसे स्थितिकूं जानता हुआ सो पुरुष प्राण सायुज्यरूप अमृतत्वकूं प्राप्त होवे है। ऐसे आश्वलायनऋषि श्रवण करि तूष्णींकूं प्राप्त भया। अब गार्ग्यनामा सौर्यायणिऋषि प्रश्न करे है । गार्ग्य उवाच । हे भगवन्! या शरीरमें कौन शयनकूं प्राप्त होवे है । जो जागता होगा सोई शयन करेगा यातें जाग्रत् किसका धर्म है ? १ । और या शरीरमें कौन जागरितकूं प्राप्त होवे है। अर्थ यह शरीरकी अवस्थात्रयमें रक्षा कौन करे है । सावधान हुआ ही या शरीरकी रक्षा करेगा यातें जागरितकूं कौन प्राप्त होवे है २।और कौन स्वप्नोंकूं देखे है।अर्थ यह जो स्वप्नमें सावधान रहेगा तिसीके आश्रय स्वप्न होगा यातें स्वप्नका आश्रय कौन है। यह प्रश्न है ३ । और सुषुप्ति अवस्थामें कौन सुखकूं प्राप्त होवे है । अर्थ यह सुषुप्तिमें जो रेहेगा तिसीकूं सुषुप्तिका सुख प्राप्त होगा । और तामेंही सुषुप्तिकी आश्रयता होगी यातें सुषुप्तिका आश्रय कौन है। यह चतुर्थ प्रश्न है ४ । और सुषुप्तिमें सर्व प्राणादिक किसमें स्थित होवे हैं। या प्रश्न अवस्थात्रय रहित तुरीय अक्षरकूं पूछा । ऐसे प्रश्नोंका अभिप्राय है ५। पिप्पलाद उवाच। हे गार्ग्य ! जैसे सूर्यके अस्त होने कालमें जेती सूर्यकी किरणें हैं ते सर्व सूर्यमें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं। जबी सूर्य उदय

होवे तबी पुनः ते किरणें उदय होवे हैं । तैसे नेत्रादिकोंका प्रकाशक जो मन है सो मन सुषुप्तिमें लय होइ जावे है । तथा मनके लय होनेसे नेत्रादिक इंद्रिय भी लय होवे हैं । इंद्रियोंके लय होनेसे यह पुरुष देखता नहीं । तैसे ही श्रोत्र घ्राण रसना त्वचा वाक् शिश्न गुदा पाद इन सर्व इंद्रियोंके व्यापारोंसे रहित होवे है । ताकूं लोक कहे हैं जो यह शयन करे है । यातें नेत्रादिक इंद्रियसहित मनका ही जाग्रत् अवस्थाधर्म है । हे गार्ग्य ! सुषुप्ति अवस्थाविषे मनसहित इंद्रियोंके लय हुए भी प्राण अपान व्यान समान उदान यह पंच प्रकारका ही प्राण अग्निकी न्याईं स्थितिरूप जाग्रतकूं प्राप्त होवे है । यातें प्राण ही या शरीरकी रक्षा करे है १ । इहां सुषुप्तिमें विद्वान् पुरुषकूं श्रुतिने अग्निहोत्रकी प्राप्ति कही है सो दिखावे हैं । जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्री पुरुषोंका गार्हपत्यनामा अग्नि सर्वदा स्थित रहे है । और आहवनीयनामा अग्नि तौ होम करनेवासते गार्हपत्यअग्निसे उठाइके प्रज्वलित करा जावे है । तैसे इहां अंतर प्रवेश करनेहारे अपानवायुसे बाह्य गमन करनेहारा प्राणवायु उठाया जावे है यातें प्राण आहवनीयरूप है और अपान गार्हपत्यरूप है । व्यानवायु दक्षिण अग्निरूप है काहेते जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी शालामें दक्षिणदेशमें सो दक्षिण अग्नि स्थित होवे है तैसे यह व्यानवायु हृदयके पंच छिद्रोंमें दक्षिणछिद्रमें रहे है यातें ही व्यानकूं दक्षिण अग्निरूप कह्या । यह समान वायु होतारूप है । काहेते यह समानवायु ऊर्ध्वश्वासनिःश्वासरूप दोनों आहुतियोंकूं समभावसे प्राप्त करे है । मनरूप यजमान है । स्वर्गादि फल ही उदान है । काहेते उदान करिके ही स्वर्गादिक फलकूं यह पुरुष प्राप्त होवे है । और या मनकूं दिन दिनविषे सुषुप्तिअवस्थामें उदानवायु

ब्रह्मानंदकूं प्राप्त करे है। ऐसे विद्वान्का सदा अग्निहोत्र होवे है २। अब तृतीय प्रश्नका उत्तर कहे हैं। और यह मन ही चेतनप्रतिबिंबके सहित हुआ नाना प्रकारके स्वप्नोंकूं देखे है और स्वप्न अवस्थामें जा पदार्थकूं देखे है। बाहुलताकरि या जाग्रत्में वा पूर्व जन्ममें देखे ही पदार्थ स्वप्नअवस्थामें प्रतीत होवे हैं याकूं ही प्रतिपादन करे हैं। जे पुत्रादि जाग्रत्में देखे हैं तिनके संस्कार सहित हुआ यह पुरुष अविद्याकरिके देखेकी न्याईं देखे है। ऐसे ही जो पदार्थ जाग्रत्में श्रवण करा है ताके संस्कारसहित हुआ यह मन उपाधिकपुरुष अविद्याकरिके श्रवण करतेकी न्याईं श्रवण करे है। तथा अनेक देशोंमें जे अनेक पदार्थ वारंवार अनुभव करे हैं तिनकूं स्वप्नमें अनुभव करे है। और जैसे जे पदार्थ या जन्ममें देखे तथा श्रवण करे हैं तिन पदार्थोंकूं स्वप्नअवस्थामें देखे श्रवण करे अविद्याकरि माने है। तैसे जे पदार्थ केवल मनकरिके या जाग्रत्में वा पूर्व जन्मकी जाग्रत्अवस्थामें अनुभव करे हैं तिनकूं भी स्वप्नअवस्थामें अनुभव करे है। और आप ही यह मनविशिष्ट पुरुष सर्व रूप हुआ सर्वकूं देखे है। यातें चेतनके प्रतिबिंबसहित हुआ यह मन ही स्वप्नअवस्थाका आश्रय है ३। हे गार्ग्य ! यह मन ही सुषुप्तिकूं प्राप्त होवे है। और जबी या मनकी पित्तरूप तेजकरि वासना निवृत्त होवे है। तब यह मनरूप देव स्वप्नोंकूं देखे नहीं तथा ता कालमें सुखकूं प्राप्त होवे है। यद्यपि स्पष्टरूपसे मन सुषुप्तिमें रहे नहीं। तथापि सूक्ष्मरूप करि यह मन रहे है यातें ता मनके ही आश्रय सुषुप्ति अवस्था है ४। हे गार्ग्य ! जा आत्माका प्रतिबिंब मनमें स्थित है ता आत्मामें ही यह प्राणादि सर्व जगत् स्थित है। जैसे या लोकमें सायंकालविषे अनेक दिशा-ओंसे आइकरि अनेक पक्षी किसी वृक्षमें अपने वास अर्थ स्थित

होवे हैं तैसे पृथिव्यादि पंच भूत तथा तिन पृथिवी आदिकोंके गंधादिक पंच गुण तथा नेत्रादि दश इंद्रियां तथा अंतःकरण-चतुष्टय तथा पंच प्रकारका प्राण यह सर्व आत्मामें ही स्थित हैं। हे गार्ग्य! सो अधिष्ठान आत्मा ही नेत्रादिकोंसे मिलकरि द्रष्टा श्रोता स्प्रष्टा घ्राता रसयिता मंता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुष है या आत्माकी उपाधिका अक्षर आत्मामें लय होवे है यातें ता उपाधि उपहित आत्माका भी अक्षरमें लय कहा है। अब कथन करे निर्गुण आत्माके ज्ञानका फल कहे हैं। यह आत्मा अज्ञान-रहित है तथा सूक्ष्मशरीररहित तथा लोहितादिगुणरहित है। या विशेषणसे ही स्थूल शरीरका निषेध करा। यातें ही शुद्ध है। ऐसे शुद्ध अक्षर आत्माकूं जो अधिकारी अपने अंतःकरणमें अपने स्वरूपसे निश्चय करे है सो अधिकारी ता अक्षर आत्माकूं प्राप्त होवे है। या फलकूं ही यह मंत्र कथन करे है। जा अक्षर आत्मा-में इंद्रियों सहित मन तथा पंच प्राण तथा पृथिवी आदि अपने गंधादिगुणोंसहित लय होवे हैं ता अक्षर आत्माकूं जो अधिकारी प्रत्यक्ष करता है सो अधिकारी सर्व होवे है तथा सर्व भावकूं प्राप्त होवे है। पूर्व अज्ञान कालमें भी सर्वरूप है परंतु ता अपनी सर्वरूपताकूं अज्ञानकरि विस्मरण करे है। ज्ञानकरि अज्ञान निवृत्त होनेसे अपनी सर्वरूपताकूं तथा प्राप्त हुएकी न्याईं प्राप्त होवे है। जैसे यह कंठमें भूषण विस्मृत हुआ बोधकालमें प्राप्त हुआ ही प्राप्त होवे है तैसे यह आप सर्वरूप है तथा सर्वज्ञ परमात्मारूप अपने ज्ञानकरि अपने स्वरूपकूं ही प्राप्त होवे है ९। ऐसे गार्ग्य ऋषि तौ उपदेशकूं श्रवण करि तूष्णींकूं प्राप्त भया। जा पुरुषके चित्तमें अक्षरके उपदेश करनेसे भी ता अक्षर परमात्माका ज्ञान होवे नहीं ता पुरुषके अर्थ प्रणवकी उपासना अब कहे हैं।

शैब्यनामवाला सत्यकामऋषि ता पिप्पलादिके आगे या प्रकारका प्रश्न करे है । सत्यकाम उवाच । हे भगवन् ! पुरुषोंके मध्यमें जो अधिकारी अपने मरनेपर्यंत ॐकाररूप प्रणवका ध्यान करे है सो ध्याता पुरुष पृथिवी आदि लोकोंविषे किस लोककूं प्राप्त होवे । या प्रकारके प्रश्नकूं श्रवण करि ता सत्यकामके प्रति पिप्पलादमुनि या प्रकारका उत्तर कहे हैं । पिप्पलाद उवाच । हे सत्यकाम ! यह ॐ अक्षर परब्रह्म है। परब्रह्म नाम अक्षरका है। अपरब्रह्म नाम प्राणस्वरूपका है । जैसे शालग्राममें विष्णुका ध्यान शास्त्रमें विधान करा है तैसे ॐकारमें परब्रह्मका तथा अपरब्रह्मका ध्यान कहा है। जो पुरुष परब्रह्मरूपसे ॐकारका ध्यान करे है सो पर, अक्षर ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है । जो पुरुष अपररूपसे ॐकारका ध्यान करे है सो पुरुष अपर ब्रह्मरूप प्राणकूं प्राप्त होवे है । हे सत्यकाम ! ॐकारकी जो अकारमात्रा है ताकूं ऋग्वेदरूपकरिके जो पुरुष चिंतन करे ता ध्याता पुरुषकूं ऋग्वेदके अभिमानी देवता शीघ्रही या पृथ्वीलोककूं प्राप्त करे हैं और या मनुष्यलोकमें प्राप्त हुआ अधिकारी देहमें इन्द्रियसंयमरूपी तपकूं तथा ब्रह्मचर्यकूं तथा श्रद्धाकूं प्राप्त होवे है ऐसे उत्तम साधनोंसे यथार्थ शुद्धरूप ब्रह्मकूं निश्चयकरि ता शुद्धब्रह्मस्वरूपकूं प्राप्त होवे है । और जो पुरुष अकार उकार या ॐकारकी दो मात्रावोंकूं यजुर्वेदरूपसे चिन्तन करे है ता ध्याता पुरुषकूं यजुर्वेदके अभिमानी देवता स्वर्गलोकमें प्राप्त करे हैं । ता स्वर्गलोकमें अनेक प्रकारकी विभूतिकूं अनुभव करिके या मानुष्यलोकमें ही प्राप्त होवे है । और जो पुरुष अकार उकार मकार या तीनमात्रासे ॐकारका चिन्तन करे है तथा ता ॐकारकूं अक्षरब्रह्मरूपसे ध्यान करे है सो ध्याता पुरुष सामवेदके अभिमानी देवतावोंकरि ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है

और ध्यानके प्रभावसे सूर्यमण्डलमें प्राप्त हुआ ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है तथा तासे आवृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं। स्वर्गादिक लोकोंसे कर्मफल भोग अनंतर आवृत्ति होवे है। ॐकारका ब्रह्मरूपकरि ध्याता पुरुष आवृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं और जैसे सर्प अपनी त्वचाकूं जीर्ण जानकरि त्याग करे है और पुनः नवीन दूसरी त्वचासहित होवे है तैसे यह उपासक सर्व पापरहित हुआ ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है। और ब्रह्मलोकमें प्राप्त होइकरि हिरण्यगर्भसे उपदेशकूं ग्रहण करि अज्ञानसे परे तथा परिपूर्ण आत्माकूं प्रत्यक्ष करे है। या अर्थकूं संक्षपसे यह दो मन्त्र कथन करे हैं। ॐकारकी तीन मात्राके भिन्न भिन्न ध्यान करनेहारा तौ मृत्युकूं प्राप्त होवे है। और जो अधिकारी तीन मात्राकूं मेलकरि ध्यान करता है सो ध्याता पुरुष जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तथा तीन शरीरोंके अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञ तथा समष्टि शरीर अभिमानी वैश्वानर हिरण्यगर्भ ईश्वर तिन सर्वका क्रमसे अकार उकार मकारके साथ अभेदचिंतन करनेसे कदाचित विक्षेपकूं प्राप्त होवे नहीं। और या ॐकार उपासनाकी विशेष रीति तौ मांडूक्यउपनिषत्में कहेंगे। इहां श्रुतिमें रीतिमात्र जनाई है। ग्रन्थ विस्तारके भयसे हमने अधिक अर्थ लिखा नहीं। ऐसेही पूर्व उक्त अर्थके करनेहारे दो मंत्रोंके अर्थकूं कहे हैं। अकारमात्रके ध्यान करनेवालेकूं ऋग्वेदके अभिमानी देवता या मानुष्यलोकमें प्राप्त करे हैं। तथा अकार उकाररूप दो मात्राके ध्यानसे यजुर्वेदके अभिमानी देवता स्वर्गमें प्राप्त करे हैं और ॐकारकूं तीन मात्रासे ध्यानकर्त्ता पुरुष ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है। ताकूं सामवेदके अभिमानी देवता ब्रह्मलोकमें ले जावे हैं। और हिरण्यगर्भके उपदेशसे शांतब्रह्म तथा अजर

अमृत अभय ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। अथवा इहां मानुष्यलोकमें ही ध्यानसे एकाग्रताकूं प्राप्त भया पुरुष अजर अमर ब्रह्मके उपदेशसे ता ब्रह्मकूं ही प्राप्त होवे है। ऐसे सत्यकामऋषि उपदेशकूं ग्रहण करि तूष्णींकूं प्राप्त भया। तिसके अनंतर भरद्वाजका पुत्र होनेसे भारद्वाज नामवाला सुकेशाऋषि प्रश्न करे है। सुकेशा उवाच। हे भगवन्! हिरण्यनाभ नामवाला कोशल देशका राजा क्षत्रिय मेरेकूं प्राप्त होइकरि यह पूछता भया। हे भारद्वाज! तुम षोडशकलावाले पुरुषकूं जानते हो तौ ता पुरुषकूं मेरे प्रति कहो। ता विनयसहित राजपुत्रकूं मैं कहता भया। हे राजन्! जो तुमने षोडशकल पुरुष पूछा है ता षोडशकल पुरुषकूं मैं नहीं जानता। ऐसे मैंने ता राजपुत्रकूं कहा भी परंतु सो राजपुत्र विश्वास न करता भया जो यह भारद्वाजऋषि षोडशकल पुरुषकूं जानते तौ हैं। मेरेकूं किसी निमित्तसे नहीं कहते ऐसे माननेवाले राजपुत्रकूं पुनः मैं यह कहता भया। हे राजन्! यदि मैं षोडशकल पुरुषकूं जानता तौ मैं तुमारे ताईं किसवास्ते न कहता। जो पुरुष या लोकविषे मोहके वशसे मिथ्या वचनकूं कहे है सो मिथ्यावादी पुरुषरूप वृक्ष मूलसहित नाशकूं प्राप्त होवे है। अर्थ यह जो या लोकका सुख तथा स्वर्गादि परलोकका सुखरूप फल ताकूं प्राप्त होवे नहीं। और भाग्यरूप मूलसहित नाशकूं प्राप्त होवे है। ऐसे मिथ्या संभाषणके दोषकूं जानता हुआ मैं भारद्वाज स्वप्नमें भी मिथ्या वचनकूं कहता नहीं। जाग्रत् अवस्थाविषे मैं भारद्वाज ऋषि कैसे मिथ्या संभाषण करूंगा। यातें हे राजन्! तुम मेरे वचनमें विश्वास करो। मैं षोडशकल पुरुषकूं जानता नहीं हूँ। यदि जानता तौ तुम अधिकारीके ताईं अवश्य मैं कहता। हे भगवन् पिप्पलादमुने! सो हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे वचनकूं श्रवण

करि तूष्णींभावकूं प्राप्त होइके रथपर आरूढ हुआ शीघ्र ही अपने देशमें गमन करता भया । यावत्काल जिज्ञासित वस्तु जानी न जावै तावत्कालपर्यंत सो अज्ञात वस्तु हृदयमें बाणकी न्याईं क्षोभजनक होवे है । यातें भगवान् मेरे हृदयमें ता पुरुषके अज्ञानरूप बाणके विक्षेपकी निवृत्तिवास्ते आप कृपा करि ता पोडशकल पुरुषकूं मेरे ताईं प्रतिपादन करो । और सो षोडशकल पुरुष कहां रहे है यह भी कहो । ऐसे प्रश्नकूं श्रवण करि ता सुकेशा ऋषिके ताईं पिप्पलादमुनि उत्तर कहता भया । पिप्पलाद उवाच । हे सौम्य ! सो पोडशकलावाला पुरुप शरीरके हृदयदेशमें साक्षीरूपसे स्थित है । यह पोडशकला या साक्षीपुरुषमें ही स्थित हैं । सो साक्षी आत्मा ही सर्वजगतका अधिष्ठान हुआ सर्वका नियंता है । या आत्माकूं अद्वितीयताबोधनअर्थ सर्व जगद्रूप पोडशकलाओंकी या आत्मासे ही उत्पत्ति श्रुतिभगवती कहे है । हे भारद्वाज ! यह आत्मा अपने बंधनवास्ते पोडशकलारूप उपाधिके उत्पत्तिअर्थ या प्रकारका विचार करता भया । मैं आत्मा साक्षीरूपसे या शरीरमें स्थित हुआ भी व्यापक हूं तथा क्रियारहित हूं ऐसे मैं व्यापक परमात्मा लोकपरलोकमें गमन आगमनरूप संसारकूं कैसे प्राप्त होवोंगा । या प्रकारका चिंतन करिके सो परमात्मा ही पञ्चवृत्तिवाले प्राणकूं उत्पन्न करता भया । ता प्राणकरिके आत्माका शरीरसे बाह्य निकसना तथा लोकपरलोकमें गमनागमनादि सिद्ध होते हैं १ । ता प्राणरूप प्रथम कलाकूं उत्पन्न करिके सो आत्मा ही शुभ कर्मोंमें प्रवृत्ति करनेहारी आस्तिक्यबुद्धिरूप श्रद्धाकूं उत्पन्न करता भया २ । तिसते अनंतर सो परमात्मा कर्मोंके करनेका तथा तिन कर्मोंके फलभोगका आधाररूप जे आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी यह

पंचभूतरूप पंच कला हैं तिनकूं उत्पन्न करता भया ७। तिसते अनंतर सो परमात्मा पंच ज्ञानइंद्रिय पंच कर्मइंद्रिय यह दशइंद्रियरूप अष्टमी कलाकूं उत्पन्न करता भया ८। तिसते अनंतर मन और मनकी स्थिति करनेहारा जो अन्न है ताकूं उत्पन्न करता भया १०। ता अनंतर अन्नकारि उत्पन्न भया जो सामर्थ्य है ता सामर्थ्यरूप वीर्यकूं उत्पन्न करता भया ११। ता अनंतर वीर्यसे उत्पन्न होनेहारा तथा चित्तशुद्धिका करनेहारा जो तप है ता तपकूं उत्पन्न करता भया १२। ता अनंतर कर्मके उपयोगी ऋग् यजुः साम अथर्व या च्यारि वेदरूप मंत्रकूं उत्पन्न करता भया १३। तिसते अनंतर वैदिककर्मरूप चतुर्दशी कलाकूं उत्पन्न करता भया १४। तिन कर्मोंसे अनंतर कर्मका फलरूप चतुर्दश लोक उत्पन्न भये सो लोक ही पंचदशी कला हैं १५। तिसके अनंतर तिन लोकोंमें उत्पन्न भये प्राणियोंके देवदत्त यज्ञदत्तादि नाम उत्पन्न भये सो नाम मुक्त पुरुषका भी रहे है यातें प्रलयपर्यंत रहनेवाला जो नाम है सोइ षोडशी कला है ताकूं परमात्मा उत्पन्न करता भया १६। हे सुकेशा ! जा पुरुषकूं कलाके अधिष्ठान आत्माका यथार्थ प्रत्यक्ष भया है ताकी उपाधिरूप कला सर्व लय होइ जावे हैं जैसे गंगा यमुनादि नदियां समुद्रकूं प्राप्त होइकारि भिन्न रूपसे नाम रहित होवे हैं। तैसे या ज्ञाता पुरुषकी षोडश कला निवृत्त होवे हैं। तिन कलावोंका नाम रूप रहे नहीं। ता अनंतर केवल शुद्ध पुरुष ही शेष रहे हैं यह पुरुष अकल है। अर्थ यह कलारहित है। तथा अमृतरूप है। या अर्थकूं यह मंत्र कहे है। जैसे अरा नाभिमें स्थित होवे हैं। तैसे जा आत्मामें यह षोडश कला स्थित हैं। हे ऋषियो ! ता अधिष्ठानरूप अकल पुरुषकूं तुम सर्व निश्चय करो और ता आत्माके ज्ञान विना तौ तुमारेकूं मृत्यु त्याग करेगा नहीं,

यातें ता आत्माके ज्ञानसे मृत्युकी निवृत्ति करो। जैसे स्वप्नकी निद्राकारि उत्पन्न भया जो स्वप्नका सिंह है ताको जाग्रत्से विना निवृत्ति होवे नहीं। तैसे अज्ञानसे उत्पन्न भया जो मृत्युरूप सिंह ताकी ब्रह्मज्ञानरूप जागरण विना निवृत्ति होवे नहीं। यातें मृत्युकी निवृत्तिवास्ते आत्माका निश्चय करो। अब पिप्पलाद मुनि तिनकी कृतकृत्यता अर्थ कहे हैं। हे ऋषियः! ऐसे मैं इतना ही ब्रह्म जानता हूँ अधिक नहीं जानता और यातें भिन्न अधिक किंचित्मात्र तुमारेकूं ज्ञातव्य है भी नहीं। ऐसे उपदेशकूं ग्रहण करि ते षट्ऋषि पिप्पलाद मुनिके पादोंमें दण्डवत् करते हुए तथा पुष्पादिकोंसे अनेक प्रकारकी पूजाकूं करते हुए। ता ऋषि पिप्पलादि गुरुके ताईं या प्रकारके—वचन कहते भये। हे भगवन्! आपने हमारे सर्व संशय निवृत्ति करे हैं। तथा आपने हमारेकूं कृतार्थ करा है। और हे भगवन्! आप हमारे पिता हैं। और यह माता पिता तौ स्थूल शरीर जो बंधनका हेतु है ताकूं उत्पन्न करे हैं। जा शरीरमें राग करनेसे पुरुष अनर्थकूं प्राप्त होवे है। ऐसे शरीरकूं उत्पन्न करनेहारा पिता तौ गौण पिता है. यथार्थ पिता तौ तुम ही हो। अविद्याकारि आच्छादित जो हमारा वास्तव ब्रह्मरूप शरीर है ता ब्रह्ममें अविद्याकी अपने उपदेशसे निवृत्ति करते भये हो। यातें तुम हमारे ब्रह्मरूप वास्तव शरीरके जनक हो। अविद्याकी निवृत्तिपूर्वक निरावरण ब्रह्मकूं निश्चय करना यह ही ब्रह्मशरीरकी उत्पत्ति जाननी। घटादिकोंकी उत्पत्ति जैसी उत्पत्ति इहां नहीं है और अविद्यारूप समुद्रसे ज्ञानरूप दृढ नौका करिके आपने पार करा है। अर्थ यह हमारा अज्ञान निवृत्त करा है। ता तुमारे उपकारकी निवृत्तिवासते कोई पदार्थ भी या संसारमें हम देखते नहीं यातें हमारा आपकूं वारंवार नमस्कार है हमारा

ब्रह्मविद्याके संप्रदायके प्रवर्त्तक परम ऋषियोंके ताईं वारंवार नमस्कार है। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः। इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वाम्यच्युतानंदगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे षट्ऋषिसंवादपूर्वकप्रश्नोपनिषदर्थनिर्णयः ॥ ४ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ ४ ॥

ॐ

अथ मुंडकोपनिषद्भाषांतरम् ।
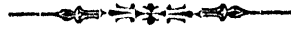
ॐ नमः श्रीगुरुभ्यः । अथ अथर्ववेदीयमुंडकोपनिषत्प्रारंभः । उपनिषत्के आदिमें ब्रह्मविद्याका संप्रदाय कहे है । ब्रह्मा सर्व देवता इंद्रादिकोंमें प्रधान होता भया । कैसा है सो ब्रह्मा जो सर्व विश्वकर्त्ता है तथा सर्व प्रपंचका रक्षक है सो ब्रह्मा अपने वृद्ध पुत्र अथर्वा नामाके ताई ब्रह्मविद्याकूं कथन करता भया । कैसी है सो ब्रह्मविद्या जो मूल अज्ञानका नाश करनेहारी है यातें सर्वविद्याका आधाररूप है । ब्रह्मविद्यासे भिन्न और सर्वविद्या तौ किंचित् किंचित अर्थका प्रकाश करे हैं । यह ब्रह्मविद्या सर्व अर्थका प्रकाश करे है यातें और सर्वविद्या ब्रह्मविद्याके अंतर्भूत हैं । जैसे तृप्तिरूप फलविषे सर्व ग्रासोंका रस अंतर्भूत है तैसे या ब्रह्मविद्यामें सर्वविद्या अंतर्गत हैं । ब्रह्मा जा ब्रह्मविद्याकूं अथर्वा नामा स्वपुत्रकूं कथन करता भया ता ब्रह्मविद्याकूं ही अथर्वानामा ऋषि अपने शिष्य अंगीनाम ऋषिकूं कथन करता भया । ता अंगीनामा ऋषिका सत्यवह नामवाला जो भारद्वाजऋषि है सो शिष्य होता भया । ता शिष्य भारद्वाजके प्रति अंगीनामगुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया । सो भारद्वाज अपने शिष्य अंगिरा नाम ऋषिकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया । ता अंगिरा ऋषिके शरणकूं शौनक ऋषि प्राप्त होता भया सो शौनकऋषि बहुत अन्नदानादिकोंकरिके महान् गृहस्थभावकूं प्राप्त होता भया । सो शौनक ऋषि शिष्य होइकरि अंगिरानामा स्वगुरुसे ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त भया । ता शौनकऋषिके सर्व द्विज शिष्य होते भये । जैसे शौनकऋषि अंगिरानामा गुरुसे ब्रह्मविद्याकूं ग्रहण करता भया सो प्रकार

कहे हैं। एक कालमें अंगिरानामा ऋषि प्रातःकालविषे स्नानादि-कोंकूं करिके किसी एकांत स्वच्छ देशमें स्थित होता भया। सो अंगिरानामा ऋषि सर्व वेदोंका वेत्ता तथा तिन वेदोंकरि प्रतिपादित ब्रह्ममें निष्ठावाला था और सर्व इच्छासे रहित निष्काम था। ऐसे ब्रह्मश्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु अंगिरानामा ऋषिकूं देखके सो शौनकऋषि समिद्रूप जो दंतधावनकाष्ठादिक हैं तिनकूं हस्तमें ग्रहण करि विधिपूर्वक शरणकूं प्राप्त हुआ या प्रकारका प्रश्न करता भया। हे भगवन्! किस एकके जाननेसे सर्व जगत् जाना जावे है। जिस एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होवे है ता एक वस्तुकूं आप कृपा करि कहो। ऐसे प्रश्नकूं श्रवण करि अंगिरानामा गुरु उत्तर कहे हैं। हे शौनक! पुरुषकूं शब्दरूप ब्रह्म तथा परब्रह्म यह दो प्रकारका ब्रह्म जानने योग्य है। षट् अंगोंसहित च्यारि वेद यह शब्दब्रह्म है या शब्दब्रह्मका ज्ञान परब्रह्म प्राप्तिमें द्वार है। यातें शब्दब्रह्म भी जानने योग्य है। परब्रह्मके ज्ञान विना मोक्ष होवे नहीं। यातें मोक्षके अर्थ परब्रह्म ज्ञातव्य है। ऐसे दो प्रकारकी पुरुषकी विद्या है। एक तौ अपरा विद्या षट्अंगोंसहित च्यारि वेदरूप है। दूसरी परा विद्या है। ऐसे ब्रह्मवेत्ता दो प्रकारकी विद्याकूं कथन करे हैं। तिन दोनों विद्याके स्वरूपकूं विस्तारसे कहने वास्ते प्रथम अपरा विद्याकूं कहे हैं। हे शौनक! ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद यह च्यारि वेद तथा शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छंद ज्योतिष यह षट् अंग हैं। षट् अंगोंके अर्थकूं किंचित् प्रतिपादन करे हैं। शिक्षाका कर्त्ता पाणिनि ऋषि है। वेदके शब्दोंके कंठ तालु आदि स्थानका ज्ञान तथा शब्दोंके स्वरका ज्ञान शिक्षासे होवे है १। कात्यायनऋषि तथा आश्वलायन आदि ऋषियोंने कल्पनाम सूत्र करे हैं। तिनसे वेद उक्त कर्मके अनुष्ठा-

नकी रीति जानी जावे है २। पाणिनिऋषिने व्याकरण करा है। व्याकरणरूप अंगसे शब्दशुद्धिका ज्ञान होवे है ३। यास्कमुनिने निरुक्त अंग करा है ता निरुक्तमें वेदमें जे अप्रसिद्ध पद हैं तिनके बोधअर्थ नाम निरूपण करे हैं ४। पिंगल मुनिने छंद अंग करा है ता अंगसे वेदमें जे गायत्री जगती आदिक छंद हैं तिनका ज्ञान होवे है ५। आदित्य गर्गादिकोंने ज्योतिष अंग करा है। ता ज्योतिष अंगसे कालका ज्ञान होवे है। वैदिक कर्मके अनुष्ठान अर्थ कालका ज्ञान अपेक्षित है ६। ऐसे यह षट् ही वेदके उपयोगी होनेसे वेदके अंग कहे जावे हैं। यह सर्व मिलके अपरा विद्या कहावे हैं। यद्यपि च्यारि वेद त्रिकांडरूप हैं। यातें ब्रह्मविद्यारूप उपनिषत्कूं अपराविद्यासे भिन्न पराविद्यारूपता बने नहीं। तथापि कर्मउपासनाका वेदमें बाहुल्य है यातें ता कर्म और उपासनाका प्रतिपादक वेद ही यहां अपराविद्यारूपसे विवक्षित है। वैराग्य आदि साधन सहित अधिकारी पुरुषने श्रवण करि जो ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषत है सो उपनिषत् अपराविद्या अंतर्गत नहीं किंतु पराविद्या है। अनात्मसंसारकूं कथन करनेहारी जो विद्या है ता विद्याका नाम ही अपराविद्या है। जा विद्या करके शुद्ध अक्षर वस्तुका निश्चय होवे ता विद्याका नाम परा विद्या है। ता अक्षरब्रह्मका ही निरूपण करे है। कैसा है सो अक्षर पंच ज्ञानइंद्रियोंका अविषय है। तथा कर्मइंद्रियोंका अविषय है। वंशरूप गोत्रसे रहित है। तथा ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्वादि जातिसे रहित है। तथा नेत्र श्रोत्रादि ज्ञानइंद्रिय जा अक्षर आत्माके नहीं हैं। तथा जो अक्षर आत्मा हस्तपादादिक कर्मइंद्रियोंसे रहित है नित्य है तथा व्यापक है तथा आकाशादिक पंच भूतोंका कारण है। सो अक्षर ही साधनहीन पुरुषोंकूं दुर्विज्ञेय है यातें सूक्ष्म है सोई

अक्षर अव्यय नाम नाशरहित है। जा अक्षरकूं विवेकी पुरुष अपने आत्मरूप करिके निश्चय करे हैं । ता अक्षरकी विद्या नाम ब्रह्मज्ञान वा ता ब्रह्मकी प्रतिपादक उपनिषत् ताका नाम परा-विद्या है। अब ता अक्षर आत्माके ज्ञानसे सर्व प्रपंचके ज्ञानकी सिद्धिवास्ते ता अक्षर आत्माकूं सर्व जगत्की कारणता दृष्टांतोंसे प्रतिपादन करे हैं। हे शौनक! जैसे ऊर्णनाभि जंतु आप ही तंतुवोंका उपादानकारण है तथा आप ही निमित्तकारण है। जा कारणमें स्थित हुआ कार्य उत्पन्न होवे ता कारणकूं उपादानकारण कहे हैं। जैसे घटादि मृत्तिकामें उत्पन्न हुए मृत्तिकामें स्थित होवे हैं। यातें तिन घटादिकोंका मृत्तिका उपादान कारण है जो कारण तटस्थ हुआ कार्यकूं उत्पन्न करे ता कारणकूं निमित्तकारण कहे हैं। ऐसे दंड चक्र कुलालादि घटादिकोंके निमित्तकारण कहे जावे हैं और जो आपही निमित्तकारण होवे तथा आप ही उपादानकारण होवे ताकूं अभिन्न निमित्त उपादानकारण कहे हैं । ऐसे तन्तुवोंका ऊर्णनाभि जीव आप ही उपादानकारण है तथा आप ही निमित्त-कारण है यातें सो ऊर्णनाभि कीट तन्तुवोंका अभिन्न निमित्त उपादानकारण है । जैसे ऊर्णनाभि कीट तन्तुवोंकूं अपनेसे उत्पन्न करे है और अपनेमें लय करे है । तैसे यह परमात्मा नामरूप जगत्का आप ही निमित्तकारण है और आप ही उपादानकारण है। यातें यह अक्षर आत्मा या जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है। जैसे एक ही पृथिवीसे बीज भेद करि नानाप्रकारकी व्रीहि यवादि औषधियां उत्पन्न होवे हैं। तैसे एक ही आत्मासे अपने कर्मोंके अनुसार सुखी दुःखी प्रजा उत्पन्न होवे हैं। कोई आत्मामें विषमता तथा निर्दयता दोष नहीं। यदि कर्मोंसे विना परमात्मा सुखी दुःखी रूप संसारकूं उत्पन्न करता तब तौ ईश्वरमें विषमता

निर्दयता यह दोनों दोष प्राप्त होते । काहेतें किसीकूं सुखी उत्पन्न करना तथा किसीकूं दुःखी उत्पन्न करना यह तौ समताका अभावरूप विषमता है । और जाकूं दुःखी उत्पन्न करे है तामें निर्दयता है । याकूं निर्घृणताभी कहे हैं । ईश्वरकूं कर्म सापेक्ष होनेसे दोनों दोष ईश्वरमें प्राप्त होवे नहीं । यातें ईश्वर कर्म सापेक्ष हुआ जगत्कूं उत्पन्न करे है । चेतन आत्मासे यह जड़ जगत् कैसे उत्पन्न होवेगा या शंकाकी निवृत्तिवासते और दृष्टांतकूं श्रुतिभगवती प्रतिपादन करे है । जैसे जीवनअवस्थाविषे चेतनरूपकरिके प्रसिद्ध जो यह पुरुष है ता चेतनपुरुषसे जड नख केश लोमादिक उत्पन्न होवे हैं । तैसे या चेतनरूप अक्षरसे जड जगत् उत्पन्न होवे है । अब जगत् उत्पत्तिके प्रकारकूं कहे हैं । जगत्की उत्पत्तिसे प्रथम आत्मा जगत्कूं विषय करनेवाले ज्ञानकरि स्थूलताकूं प्राप्त होता भया । जैसे पृथ्वीमें स्थित बीज जलके सम्बंधकरिके स्थूलताकूं प्राप्त होवे है । ब्रह्ममें स्थूलता भी जगत्की उत्पत्तिकी अनुकूलतारूप जाननी । ता स्थूलताकूं प्राप्त हुए ब्रह्मसे अव्याकृत जो अज्ञान है सो उत्पन्न होता भया । यद्यपि अज्ञान सिद्धांतमें अनादि है यातें ताकी उत्पत्ति कहनी विरुद्ध है तथापि जगत् उत्पत्तिकालमें जगत् उत्पन्न करनेके सन्मुख अवस्थाकी प्राप्तिरूप जन्मकूं प्राप्त होवे है । ता चिदाभाससहित अज्ञानसे ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्तिविशिष्ट हिरण्यगर्भ उत्पन्न होता भया । ता हिरण्यगर्भसे विराट् उत्पन्न होता भया । ता विराट् उत्पत्तिसे अनन्तर भूरादि सप्त लोक उत्पन्न होते भये । तिसते अनन्तर तिन सप्तलोकमें रहनेवाले प्राणियोंके कर्म उत्पन्न होते भये । तिसते अनन्तर अवश्य प्राप्त होनेवाला जो कर्मका फल है सो स्वर्गादिरूप फल उत्पन्न होता भया । हे शौनक ! या सर्व जगत्का कर्त्ता

परमात्मा सामान्यज्ञानवाला है और विशेषज्ञानवाला है या अर्थकूं यह श्रुति कहे है।"यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः"। या श्रुतिका अर्थ यह है जो परमात्मा सर्वकूं सामान्यरूपसे जाने है तथा जो सर्वकूं विशेषरूपकरि जाने है और जा परमात्माका ज्ञानरूप ही तप है। सामान्यरूपसे ज्ञान तो यह है जैसे एक शत ब्राह्मणमें यह ब्राह्मण है ऐसे ज्ञान होना। तिन ब्राह्मणोंमें ही एक एकके यज्ञदत्त देवदत्तादि नामका ज्ञान तथा तिनके शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञान ऐसे ज्ञानकूं विशेष ज्ञान कहे हैं। ऐसा दोनूं प्रकारका ज्ञान ईश्वरमें है। ता उक्त अर्थकूं ही यह मंत्र कहे है। ता परमात्मासे हिरण्यगर्भकी उत्पत्ति होवे है। ता परमेश्वरसे ही देवदत्तादि नाम उत्पन्न होवे हैं। नीलपीतादिरूप तथा व्रीहि यवादिरूप अन्न ता परमात्मासे उत्पन्न होवे हैं। अब वैराग्यकी प्राप्तिवासते अपराविद्याके विषयकूं दिखावे हैं। हे शौनक ! यह वेद उक्त कर्मका फल अवश्य प्राप्त होवे है, यातें कर्मोंकूं श्रुतिमें सत्यरूप कहा है। तिन कर्मोंकूं वसिष्ठ आदिक ऋषि वेदके मंत्रोंमें देखते भये। ते कर्म पुनः त्रेतायुगमें विस्तारकूं प्राप्त भये। तिन कर्मोंकूं अपने अभिलषित फलकी प्राप्तिवासते करो। यह कर्म ही इष्ट फलकी प्राप्तिवासते मार्ग है। विना कर्मसे किंचित्-मात्र भी फल प्राप्त होवे नहीं। स्वर्गादि फल तौ सकाम कर्म विना प्राप्त होवे नहीं। निष्काम कर्म विना चित्तशुद्धि होवे नहीं। चित्तशुद्धि विना ज्ञान भी प्राप्त होवे नहीं। ज्ञान विना मोक्ष होवे नहीं। ऐसे कर्म विना किंचित् फलकी प्राप्ति होती नहीं यातें फलकी प्राप्तिवासते कर्मकूं करो। प्रथम अग्निहोत्रकर्मकूं दिखावे हैं। जा कालमें काष्ठघृतादिकोंसे अग्नि प्रज्वलित होवे ता कालमें आज्यभागनाम होमकूं करे। ता अनंतर देवतावोंकूं अनेक आहु-

तिसे प्रसन्न करे। श्रद्धापूर्वक कर्मकी सिद्धि तौ अति कठिन है विपत्ति मध्यमें अनंत होवे हैं सोई दिखावे हैं। जा पुरुषका अग्निहोत्र अमावास्यामें जो यज्ञ होवे है ताकूं दर्श कहे हैं। ता दर्शयज्ञसे रहित है तथा जा पुरुषका अग्निहोत्र पौर्णमास्ययज्ञसे रहित है। तथा चातुर्मास्य कर्मसे रहित है। शरदृतुके आदिमें जो नूतन अन्न करिके कर्म करा जावे ताकूं आग्रयण कहे हैं। तथा ता आग्रयणकर्मसे रहित है। तथा जाके अग्निहोत्रमें अतिथिका पूजन नहीं करा। तथा जाका अग्निहोत्र अग्निकालमें नहीं भया। तथा जा अग्निहोत्रमें वैश्वदेवनाम कर्म नहीं भया। तथा जा पुरुषका अग्निहोत्र भया भी विधिपूर्वक नहीं भया ऐसे पुरुषका सो अग्निहोत्र ही सप्त लोकोंका नाश करे है। तात्पर्य यह जो विधिपूर्वक तथा अपने अंगसहित करे कर्मका स्वर्गादि फल होवे है। उक्त पुरुषके विधिसहित कर्मके अभाव होनेसे स्वर्गादिलोकरूप फल प्राप्त होवे नहीं। यातें ता पुरुषके ते सप्त लोक नाश हुए जैसे जानने। हविके भक्षणवासते ता अग्निकी यह सप्त जिह्वा हैं। काली १, कराली २, मनोजवा ३, सुलोहिता ४, सुधूम्रवर्णा ५, स्फुलिंगिनी ६, विश्वरूपी ७, यह देवीरूप जिह्वा हैं तिनसे भक्षण करे है। इन प्रज्वलित सप्त जिह्वामें जो पुरुष यथाकालसे आहुतिका प्रक्षेप करे हैं ता पुरुषकूं ते आहुतियां रश्मिरूप होइकरि स्वर्गमें ले जावे हैं। जा स्वर्गमें देवताओंका पति इंद्र रहे है। जैसे स्वर्गमें या पुरुषकूं आहुतियां ले जावे हैं ता प्रकारकूं कहे हैं। जो अग्निहोत्रादि कर्मकूं करे है तामें जे आहुति हैं ते आहुति प्रकाशकूं प्राप्त हुई तथा आवो आवो ऐसे यजमानकूं बुलाती हुई ता यजमानकूं ब्रह्मलोकमें ले जावे हैं। ब्रह्मलोकपदसे इहां स्वर्गलोक विवक्षित है। केवल कर्मसे तौ स्वर्गही प्राप्त होवे है। और ते

आहुतियां यजमानकी पूजाकूं करेहैं और यह कहे हैं यह तुमारे कर्मका फल स्वर्ग है याकूं भोगो । अब ज्ञानप्राप्तिसे विना अन्य किसी फलवासते करे जे कर्म हैं तिनकी निंदा करे हैं । हे शौनक ! यह यज्ञस्वरूप नौका संसारसमुद्रसे पार करनेवासते समर्थ नहीं है जैसे तृणादिकोंकरि रचित अति अल्प नौकासे समुद्रके पार उतरना होवे नहीं । किंतु मत्स्य आदिक जलचारी जीव ता नौकासे मारे जावे हैं । तैसे तिन कर्मोंसे संसारसमुद्रसे पार उतरना होवे नहीं । स्वर्गादिक फलरूप मत्स्यकी प्राप्ति कर्मसे होवे है । संसाररूप समुद्रसे पार उतरनेवासते तौ ज्ञानरूपी जहाज ही अपेक्षित है । कर्म तौ ज्ञानसे अत्यंत न्यून है । और यह कर्म षोडश ऋत्विज् जे यज्ञ करानेहारे ब्राह्मण हैं तथा यजमान और यजमानकी स्त्री या अष्टादशोंसे सिद्ध होवे है । या कर्मकूं ही जे मूढ मोक्षका साक्षात् साधन मानते हैं ते मूढ वारंवार जन्म जरा मृत्युकूं ही प्राप्त होवे हैं । किंचित्कालपर्यंत स्वर्गमें स्थित होते हैं । परंतु ता स्वर्गसे भी गिरे हुए या संसारमें घटीयंत्रकी न्याईं घूमते हैं । ते कर्मी सदा अविद्यामें ही वर्ते हैं और हैं तौ अत्यंत मूढ, परंतु आपकूं बुद्धिमान् पंडित मानते हैं । जैसे एक अंधेके पीछे चले और अंधे क्लेशकूं ही अनुभव करे हैं । तैसे कर्मी अंध गुरुके पीछे शिष्य भी वारंवार संसारदुःखकूं ही अनुभव करे हैं । और ते मूढ अविद्यामें रहते हुए भी आपकूं कृतार्थ मानते हैं । अपने स्वरूपकूं न जानते हुए ते कर्मी स्वर्गसे भी गिरकरि या संसारमें आवे हैं । और यज्ञ वापी कूप तडागादि कर्मकूंही मोक्षका साधन मूढ माने हैं और कहे हैं जो आत्मज्ञान मोक्षका साधन नहीं है । यह कर्म ही बहुत सुंदर मोक्षका उपाय है । ऐसे माननेवाले कर्मी अपने करे कर्मके फलकूं भोगकरि या मनुष्यलोककूं वा नरककूं वा सर्पादि तिर्य-

न्योनिकूं प्राप्त होवे हैं। हे शौनक ! जे पुरुष तपकूं करे हैं। तपनाम अपने वर्णआश्रमके कर्मका है। तिन कर्मोंकूं तथा सगुण उपासनाकूं करे हैं। ते गृहस्थ वा संन्यासी वनमें रहनेहारे तथा जितइंद्रिय तथा निवृत्तपाप उपासक भिक्षाकरिके शरीरकी रक्षा करनेहारे ते उत्तरायणमार्गकरि ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे हैं। जा ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा रहे है। कैसा है सो ब्रह्मा हिरण्यगर्भ जबी तक संसार है तब पर्यंत जो स्थायी है। हे शौनक ! मुमुक्षुने ब्रह्मलोककी प्राप्तिकी इच्छा करिके श्रवणादिकोंका त्याग नहीं करना। काहेतें ब्रह्मलोक प्राप्तिमें अनन्त विघ्न हैं। यातें मुमुक्षु सर्व लोकोंसे वैराग्यकूं प्राप्त होवे और यह विचार करे जो कर्मकरि प्राप्त होवे है ताकी अवश्य निवृत्ति होवे है। जैसे पुरुष क्षेत्रमें अन्नादिकोंकूं कर्मकरि उत्पन्न करे है और तिनकी भोगकरि निवृत्ति होवे है। तैसे यह लोक तथा परलोक कर्मकरि रचित होनेसे सर्व ही विनाशी हैं ऐसे अनेक दृष्टांतोंकरि सर्वलोककूं अनित्य जानकरि वैराग्यकूं प्राप्त होवे। और यह विचारे जो कर्मोंकरि नित्य मोक्षकी प्राप्ति होवे नहीं जे संसारमें पदार्थ कर्मजन्य हैं ते सर्व अनित्य ही हैं। ऐसे विचारकरि समित्पाणि हुआ ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणकूं प्राप्त होवे। जो वेदके अर्थकूं जाने ताकूं ब्रह्मश्रोत्रिय कहे हैं। जाकी ब्रह्ममें निष्ठा नाम स्थिति होवे। अर्थ यह करमें बिल्ववत् जाकूं ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान है ताकूं ब्रह्मनिष्ठ कहे हैं ऐसे गुरुकी शरणकूं प्राप्त होवे। केवल काषायमात्र करानेवालेसे वा शिरमुण्डन तिलक जटा कंठी धारण आदिक चिह्नोंकूं करानेवालेसे या मुमुक्षुका कल्याण होवे नहीं। यातें मुमुक्षु अपने मोक्षवासते ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणकूं आवे। हे शौनक ! जबी सो मुमुक्षु चित्तशांत हुआ तथा विरक्त हुआ ता गुरुकी शरणकूं प्राप्त

होवे है। तबी जा ब्रह्मविद्याकरि यह मुमुक्षु ब्रह्म अक्षर तथा सत्यरूप पूर्ण आत्माकूं निश्चय करे ता ब्रह्मविद्याकूं ही ते गुरु अधिकारीके ताई कहे हैं। अब पराविद्याके विषयकूं विस्तारसे कथन करे हैं। हे शौनक! कर्मका फल तौ किंचितकाल सत्य है सर्वकालमें सत्य नहीं है। यह अक्षर सर्व कालमें सत्य है। ता सत्य आत्मासे ही यह चराचर जगत् उत्पन्न होवे है। जैसे प्रज्वलित अग्निसे विस्फुलिंग प्रकाशरूप ही अनंत उत्पन्न होवे हैं तैसे या अक्षरसे जड चेतन सर्व जगत् उत्पन्न होवे हैं। तासे उत्पन्न होकारि ता अक्षरमें ही लयभावकूं प्राप्त होवे है। यातें ता अक्षर आत्मासे किंचित् भी भिन्न नहीं। ऐसे एक अक्षर आत्मासे किंचित्मात्र भिन्न सत्य नहीं। यह एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान श्रुतिमें अपेक्षित है। जगतके नामरूपका ज्ञान होवे है या अभिप्रायसे एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान श्रुतिमें अपेक्षित नहीं। जैसे एक मृत्तिकाके ज्ञानसे सर्व देशोंमें स्थित जे घटादि हैं ते सर्व मृत्तिका मात्र हैं ऐसे सर्व घटादिकोंका ज्ञान होवे है। तैसे आत्माके निश्चय करनेसे कार्यप्रपंच आत्मसत्तासे भिन्न सत्तावाला नहीं यह ही ज्ञान होवे है ऐसे शौनकऋषिके प्रश्नके समाधानवासते वारंवार प्रपंचकी उत्पत्ति अंगिरानामा गुरुने कथन करि और एक ज्ञानसे सर्वका ज्ञान कैसे होवे है या प्रश्नका समाधान भी अनेक वार दृढता अर्थ जानना। हे शौनक! या जगत्का जनक अक्षर आत्मा स्वप्रकाश है। तथा अमूर्त्त है। अर्थ यह जो स्थूलतादिरहित हुआ सर्वत्र व्यापक है। और या आत्मासे भिन्न कार्य कारण नहीं है और अजन्मा है। तथा प्राणसे और मनसे रहित है। तथा शुद्ध है। कार्यकी दृष्टिसे पर जो अज्ञानतासे भी यह आत्मा अज्ञानका अधिष्ठान पर है

और यह प्राणादिक सर्व आत्मासे ही उत्पन्न होवे हैं यातें ब्रह्म अद्वितीय है। स्वाभाविक भेद तौ ब्रह्ममें है नहीं। भेदके सिद्धि करनेहारे उपाधिरूप मन और प्राणादिक ही हैं और ते मन प्राणादिक उपाधिरूप या ब्रह्मात्मासे उत्पन्न होवे हैं। यातें वास्तवसे ब्रह्ममें औपाधिक भेद भी नहीं है। या अर्थकी सिद्धिवासते ब्रह्मसे प्राणादिकोंकी उत्पत्ति अब कहे हैं। या ब्रह्मात्मासे प्राण उत्पन्न होवे हैं। तथा मनसहित सब इंद्रिय उत्पन्न होवे हैं तथा आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी यह पंच भूत अपने गुणोंसहित उत्पन्न होवे हैं। शब्द या एकगुण सहित आकाश तथा शब्द स्पर्श इन दो गुणोंसहित वायु तथा शब्द स्पर्श रूप इन तीन गुणोंसहित अग्नि तथा शब्द स्पर्श रूप रस इन च्यारि गुणोंसहित जल तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इन पंच गुणोंसहित पृथिवी ता ब्रह्मसे ही उपन्न होवे है। इन भूतोंमें एक एक गुण अपना है और दूसरे कारणके जानने। प्रपंचकी उत्पत्तिमें वेदका तात्पर्य नहीं यातें आकाशादिकोंकी उत्पत्ति प्राणादिकोंसे पश्चात् कहनेसे विरोध नहीं। और ता ब्रह्मात्मासे ही विराट् उत्पन्न होवे है। ता विराट्कूं ही अवयवसहित निरूपण करे हैं। जा विराट्का अग्नि मस्तक है। तथा जाके सूर्य चन्द्रमा नेत्र हैं। तथा जा विराट्के दिशा ही श्रोत्र हैं। और जा विराट् भगवान्का च्यारी वेद वाक् इंद्रिय है। तथा वायु जा विराट्का प्राण है। संपूर्ण जगत् जा विराट्का हृदय है। और जा विराट् भगवान्का पृथिवी पादरूप है। तथा जो समष्टिरूप विराट् व्यष्टि सर्व भूतोंका आत्मा है। और जा विराट्भगवान्से स्वर्गलोकरूप अग्नि उत्पन्न होवे हैं। जा स्वर्गलोकरूप अग्निका सूर्य ही काष्ठ है। ताके अनंत चंद्रनामा सोम उत्पन्न होवे है। द्रवीभूत सोमसे पर्जन्यरूप मेघ उत्पन्न

होता भया । सो पर्जन्य ही दूसरा अग्नि है । मेघरूप पर्जन्यसे वृष्टिद्वारा पृथिवीरूप तीसरे अग्निसे व्रीहियवादिरूप अन्न उत्पन्न होते भये । ते अन्न पुरुषरूपी चतुर्थ अग्निमें प्राप्त हुए वीर्यरूपताकूं प्राप्त होवे हैं । स्त्रीरूप पंचम अग्निमें प्राप्त हुए वीर्यसे गर्भद्वारा पुत्रपौत्रादिक प्रजा उत्पन्न होती भयी । ऐसे परमात्मासे उत्पन्न भया जो विराट् है ता विराट्भगवान्से पञ्च अग्नि उत्पत्ति द्वारा ब्राह्मण क्षत्रियादिक सर्व प्रजा उत्पन्न होती भई । यह निरूपण करा । अब जा परमात्मासे विराट् उत्पन्न होता भया ता परमात्मासे ही और वेदादिकोंकी उत्पत्ति कहे हैं । हे शौनक ! ता अक्षर परमात्मासे ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद उत्पन्न होते भये तथा मुंजबंधनादि कर्मके नियम उत्पन्न होते भये । अग्निहोत्रादि यज्ञ तथा यूपसहित जे अन्य यज्ञ हैं तिनकूं ही ऋतु कहे हैं । यूपरहित यज्ञ तथा यूपसहित ऋतु ता परमेश्वरसे ही उत्पन्न होते भये तथा गौ स्वर्ण आदि रूप दक्षिणा तथा संवत्सरादि काल तथा यज्ञ करानेवाले यजमान तथा तिन कर्मका फलरूप स्वर्गादि लोक ता परमात्मासे उत्पन्न होते भये । जिन सर्व लोकोंमें चंद्रमा तथा सूर्य विचरे हैं तिन सर्वलोकोंकी परमात्मासे उत्पत्ति कही । अब अन्य पदार्थोंकी उत्पत्ति ता परमात्मासे कहे हैं । हे शौनक ! ता अक्षरसे वसु आदि देवता तथा साध्यनामवाले देवता तथा मनुष्य पक्षी उत्पन्न होते भये तथा प्राण अपान समान उदान व्यान यह पंच प्रकारके प्राण तथा व्रीहि यवादि अन्न तथा कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप तप तथा श्रद्धा तथा सत्य संभाषण तथा उपस्थसंयमरूप ब्रह्मचर्य तथा वेदविहितकर्मरूप विधि यह सर्व पदार्थ ब्रह्मात्मासे उत्पन्न होते भये । ता परमात्मासे ही शरीरके मस्तकमें रहनेहारे दो श्रोत्र दो नेत्र दो नासिका एक वाक् यह इन्द्रियरूप सप्त प्राण उत्पन्न होते भये ।

तथा तिन नेत्रादिकोंसे उत्पन्न भयी जे सप्त प्रकारकी वृत्तियां हैं तिनके जे रूपादि सप्त विषय हैं तथा तिन विषयोंका तिन इंद्रियोंमें जो लयचिंतनरूप उपासना है तथा सप्तनेत्रादिकोंके जे सप्त गोलक हैं । जिन विषे नेत्रादिक विचरते हैं । सर्व प्राणियोंके यह सप्त सप्त उत्पन्न होते भये । या अक्षरसे ही सप्त समुद्र तथा हिमाचलादि पर्वत तथा श्रीगंगादि नदियां यह सर्व पदार्थ उत्पन्न होते भये । तथा व्रीहियवादि औषधियां और तिनके रस उत्पन्न भये । जा रसकरि स्थूलशरीरमें लिंगशरीरविशिष्ट आत्मा स्थित होवे है । हे शौनक ! यह सर्व जगत् जिस हेतुसे परमात्मासे उत्पन्न भया है या हेतुसे ही या पुरुष अक्षरसे किंचित् भी भिन्न नहीं । यह पुरुष ही सर्व विश्व है तथा कर्म अग्निहोत्रादि तथा उपासना तथा वेदादि सर्व जगत् परब्रह्मसे भिन्न नहीं ता ब्रह्मकूं विवेक अपनी बुद्धिरूपी गुहामें साक्षीरूपसे स्थित जाने है । ऐसे एक ज्ञानसे सर्वका ज्ञान कैसे होवे है या प्रश्नके अनेक रीतिसे समाधान कथन करिके अब ता ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवास्ते साधनकूं कहे हैं । हे शौनक ! यह अक्षरब्रह्म नित्य स्वयंज्योतिरूप है । तथा बुद्धिरूपी गुहामें स्थित है यातें अत्यंत समीप है तथा व्यापक है और जैसे रथकी नाभिमें अरा स्थित हैं तैसे या अक्षरमें सर्व जगत् स्थित है तथा प्राणापानादिवाले मनुष्य पशु आदि शरीरसे मिलकरि यह आत्माही प्राणापानादि चेष्टाकूं तथा नेत्रादिकोंकी चेष्टाकूं करे है । या अक्षरसे स्थूल सूक्ष्म भिन्न नहीं है । और सर्व अधिकारी जनोंकरिके प्रार्थनीय है । अर्थ यह जो ता अक्षरसे भिन्न कोई पदार्थ नित्य नहीं जा पदार्थकी अधिकारी पुरुष याच्ञा करे यातें यह नित्य आत्मा अक्षर ही अधिकारीकूं वररूप है । श्रुतिभगवती स्वतंत्र भी

अधिकारी मुमुक्षु जनोंकूं उपदेश करे है। भो मुमुक्षवः ! यह जो अक्षर आत्मा सर्व प्राणियोंके इंद्रियादिजन्य ज्ञानोंका अविषय स्वभाव है ता आत्माकूं निश्चय करो। और यह अक्षर ही प्रकाशमान सूर्य आदि रूप है। तथा सूक्ष्म जे श्यामाकादि हैं तिनसे भी यह अक्षर सूक्ष्म और स्थूल पृथिवी आदिकोंसे भी अति स्थूल है। तथा जा अक्षरमें भूरादि सर्व लोक स्थित हैं तथा तिन लोकोंमें रहनेहारे मनुष्य देवता भी जा अक्षरमें स्थित हैं। तथा सो अक्षरही प्राण वाक् मन आदि सर्व कारणरूप हैं। ता अक्षरके कृपाकटाक्षसे ही प्राणादि जड संघात चेष्टा करे है। यह अक्षर ही सत्य है। तथा यह अक्षर ही अमृत है। अर्थ यह जो जन्ममरणरहित हुआ आनंदस्वरूप है। और यह अक्षरही ताडने योग्य है। अर्थ यह जो ता अक्षरमें ही मन समाधान कर्तव्य है। यातें हे शौनक ! ता अक्षरमें मनकूं अर्पण करो। जैसे मन कर ताड़ने योग्य है सो प्रकार दिखावे है। हे शौनक ! जैसे कोई शूर वीर पुरुष अपने धनुषसे बाणकूं चलाइके किसी मृगादि लक्ष्य वस्तुकूं वेधन करे है। तैसे यह मुमुक्षु धैर्यकरि युक्त हुआ तथा अपने वैराग्यके बलसे तथा आत्मविवेकके बलसे कामक्रोधादिकोंकूं जीतनेहारा है ता मुमुक्षुने अक्षररूप लक्ष्यकूं वेधन करना। हे शौनक ! सर्व उपनिषदोंमें प्रसिद्ध जो प्रणव है सोई महाअस्त्र है। और देह इंद्रियादिकोंसे भिन्न शोधित साक्षी बाणरूप है। और मैं ब्रह्मरूप इस रीतिसे जो महावाक्यका चिंतन सो धनुपका आकर्षण है। शुद्ध ब्रह्म अक्षर ही लक्ष्यस्वरूप है। ऐसे प्रणवधनुषमें शोधित त्वंपदार्थ साक्षीरूप बाणके अर्पणसे तथा अभेदचिंतनरूप धनुषके आकर्षणसे लक्ष्यरूप ब्रह्ममें साक्षीरूप बाण प्राप्त होवे है। ता लक्ष्यरूप शुद्ध

ब्रह्ममें साक्षीरूप बाण प्राप्त हुआ तद्रूप ही होवे है तासे किंचित् मात्र भी भेद रहे नहीं। हे शौनक ! या अक्षरमें ही स्वर्गलोक तथा पृथ्वीलोक तथा अंतरिक्षलोक यह तीनों लोक स्थित हैं। तथा मन नेत्रादि सर्व इंद्रियें स्थित हैं। श्रुतिभगवती मुमुक्षुजनोंकूं पुनः आप उपदेश करे हैं। हे मुमुक्षुजनाः ! ता एक आत्मा अक्षरकूं निश्चय करो। और अनात्म पदार्थोंका चिंतन करना नहीं। तथा तिन अनात्मा पदार्थोंके कथन करनेहारे जे अनंत वचन हैं तिनका भी त्याग करो जैसे काकके दंतोंका परिगणन करना निष्फल है तैसे अनात्म शब्दोंका चिंतनसे भी किंचित् फल होवे नहीं। केवल तिन शब्दोंके उच्चारणसे कंठका शोषण होवे है तथा तिन अनात्म शब्दोंक ध्यानने मनकूं विक्षेपरूप फल होवे है। यातें केवल उपनिषदोंकरिके जानने योग्य जो आत्मवस्तु है ता प्रत्यग् अभिन्न ब्रह्मकूं उपनिषदोंकरिके ही निश्चय करो। और वेदांतरूप उपनिषदोंके विचारसे तथा तिन उपनिषदोंका तात्पर्यरूप जो व्यासभगवान्कृत शारीरक है तथा उपनिषद् अर्थके तुल्य अर्थवाली जे गीतादि स्मृतियां हैं तथा तिन उपनिषदोंके उपयोगी जे अन्य प्रकरण हैं तिन वेदांतरूप सर्व ग्रंथोंके विचारनेसे तौ ब्रह्मज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होवे है। यातें जो पुरुष वेदांतविचारकूंभी न्याय काव्यादिकोंके तुल्य माने है सो पुरुष वेदांतशास्त्रके तात्पर्यका अनभिज्ञ बालक है। तथा वेदांतशास्त्रकूं निरर्थक मानकरि तामें प्रवृत्तिके अभावसे तथा निषिद्ध कर्मके अनुष्ठानसे नरककूं ही प्राप्त होवे है। यातें ब्रह्मज्ञानवासते मुमुक्षु सुषुप्तिपर्यंत तथा मरणपर्यंत वेदांतविचारकूं करे। जैसे सेतुरूप मार्ग करिके नदीसे पार तरण होवे है। तैसे या ब्रह्मज्ञान करिके ही संसारसमुद्रसे

पाररूप ब्रह्मकी प्राप्ति होवे है यातें ज्ञात हुआ ब्रह्म ही सेतुरूप है। हे शौनक ! जैसे रथके चक्रकी नाभिमें अरा स्थित होवे हैं तैसे हृदयकमलमें शतसहस्र नाडियां स्थित हैं। ता हृदयकमलमें यह स्वप्रकाशरूप आत्मा सर्वदा वर्त्तता है और यह आत्मा वास्तवसे जन्मरहित हुआ भी शरीरादि उपाधिकारिके जन्मकूं प्राप्त होवे है। जो पुरुष मैं ब्रह्म हूं ऐसे जाननेकूं समर्थ नहीं सो पुरुष प्रणवरूपके ब्रह्मका ध्यान करे। सो ध्याता पुरुष भी ता ध्यानके बलसे प्रतिबंधरूप पापकूं निवृत्त करिके ब्रह्मकूं जान लेवे है। जैसे प्रणवका ध्यान पापका निवर्त्तक है तैसे ब्रह्मवेत्ता गुरुका आशीर्वाद भी पापका निवर्त्तक है। यातें गुरुकूं अधिकारी पुरुषने प्रसन्न करना। प्रसन्न हुए गुरु अपने शिष्यकूं ऐसे आशीर्वाद करे हैं। हे शिष्य ! अज्ञान तथा ताका कार्यरूप समुद्रका पाररूप जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकी प्राप्तिवास्ते तुमारेकूं निर्विघ्न होवे। या आशीर्वादसे भी पापनिवृत्तिद्वारा ज्ञान प्राप्त होवे है। हे शौनक ! यह परमात्मा सर्व पदार्थोंकूं सामान्यरूपसे तथा विशेषरूपसे जाने है। ता आत्माका प्रताप सर्व पृथिवीमें व्याप्त है। सो प्रतापरूप महिमा यह है जा आत्माकारि भयभीत हुए सूर्य चंद्रमा सर्वदा भ्रमण करे हैं। ता आत्माके भयकारि ही समुद्र नदियां अपनी मर्यादाकूं त्याग करे नहीं। जा आत्माकी आज्ञामें स्थावर जंगम स्थित हैं। तथा दिन रात्रि मास ऋतु दक्षिणायन उत्तरायण वरस युग इत्यादि काल जा परमेश्वरकी आज्ञाकूं उल्लंघन करे नहीं ऐसा जा परमेश्वरकी महिमा सर्व लोकमें प्रसिद्ध है। जैसे सर्व देशके अधिपति भी श्रीरामचंद्र अयोध्यामें विशेषकारि प्रतीत होनेसे अयोध्यामें रहे हैं यह कह्या जावे है तैसे सर्व जगत्में व्यापक ब्रह्मकूं हृदयमें साक्षीरूप कारि प्रतीत होनेसे हृदयमें ब्रह्म

है यह कहा जावे है। यातें ही श्रुतिभगवती हृदयकूं ब्रह्मपुर या नामसे कथन करे है। और यह आत्मा ही मनरूप उपाधिकरिके मनोमय या नामकरि कथन करा जावे है। यह मनोमय आत्मा ही प्राणादि रूप सूक्ष्म शरीरकूं एक स्थूल शरीरसे द्वितीय स्थूल शरीरमें प्राप्त करे है। और सर्व संघातकूं प्रकाश करता हुआ या स्थूल शरीरके हृदयदेशमें स्थित है। जा लिंगशरीरउपहित आत्मासे विना यह स्थूल शरीर श्मशानमें भस्म करने योग्य होवे है। ता आत्माकूं प्रथम साक्षीरूपसे प्रत्यक्ष करते हुए विवेकी पुरुष ता साक्षीकूं पुनः पूर्णरूप जाने हैं। जो प्रत्यग् अभिन्न ब्रह्म आनंदरूप स्वमहिमामें स्थित है सो आनंदरूप ब्रह्मात्मा तिन विवेकी पुरुषोंकूं भासता है। आत्मज्ञानके फलकूं यह श्रुति प्रतिपादन करे है। 'भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः। क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥' या श्रुतिका अर्थ यह है परावारनाम कार्यकारणरूप जा आत्मासे भिन्न नहीं ता आत्माके साक्षात्कार करिके अज्ञानरूप कारणकी निवृत्ति होवे है। देहादिकोंमें आत्मत्व अध्यासरूप हृदयग्रंथिकी निवृत्ति होवे है। तथा सर्व संशय निवृत्त होवे हैं। और सर्व कर्म क्षय होवे हैं। ते संशय यह हैं आत्मा देहरूप है, वा देहसे भिन्न है, भिन्न हुए भी इंद्रिय वा प्राण वा मनरूप है वा इन सर्वसे भिन्न है। भिन्न हुए भी कर्त्तारूप है वा अकर्त्तारूप है। अकर्त्ता हुए भी भोक्ता है वा अभोक्ता है। अभोक्ता हुए भी ज्ञान आनंदका आश्रय है वा ज्ञान आनंदरूप है। इत्यादि संशय त्वंपदार्थ जीवमें हैं। तैसे तत्पदार्थमें भी अनेक प्रकारके संशय हैं। परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयववान् तथा वैकुंठ आदि लोकवासी ईश्वर है वा हस्तादिकोंसे रहित विभु है। व्यापक मानें तौ भी परमाणु

आदि सापेक्ष जगत्कर्त्ता है वा तिनसे निरपेक्ष कर्ता है। परमाणु आदि निरपेक्षकर्त्ता कहे तौ भी ईश्वर केवल निमित्तकारण है वा अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है। उभयरूप कारण कहें तौ भी कर्म निरपेक्ष होनेसे विषमता निर्घृणतारूप दोषवान् है वा कर्म सापेक्ष होनेसे सर्व कलंकरहित है। ऐसे तत्पदार्थ ईश्वरमें संशय होवे है। तथा एकतामें संशय होवे है। जीव ईश्वरकी एकता नहीं बने है वा बने है। चेतनमात्रकी एकता होवे तौ भी मोक्षकालमें एकता होवे है वा सर्वदा एकता होवे है। इत्यादि संशय एकतामें है। और यह मोक्षसाधनमें संशय होवे है। कर्म ही मोक्षका साधन है वा उपासना मोक्षका साधन है वा ज्ञान ही मोक्षका साधन है। ज्ञान मोक्षका साधन कहे तौ भी कर्मउपासनासहित ज्ञान मोक्षका साधन है अथवा केवल ज्ञान मोक्षका साधन है। मोक्षके स्वरूपमें यह संशय है। वैकुंठादिलोकप्राप्ति मोक्ष है वा ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष है। ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष कहे तौ भी सविशेष ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष है वा निर्विशेष ब्रह्मप्राप्ति मोक्ष है। निर्विशेषब्रह्मप्राप्तिरूप मोक्ष कहे तौ भी ज्ञानके प्रथम न प्राप्त होनेसे तथा ज्ञानके पश्चात् प्राप्त होनेसे कादाचित्क है वा मोक्ष सदा ही है। ज्ञानकरि भी प्राप्तकी ही प्राप्ति होवे है। ऐसे यह सर्व संशय प्रमेयसंशय कहे जावे हैं तिन सर्व संशयोंकी ब्रह्मज्ञानसे निवृत्ति होवे है। तथा प्रमाणसंशय निवृत्त होवे है। प्रमाण जो वेद तिनमें जो संशय होवे ताकूं प्रमाणसंशय कहे हैं। सो यह है वेद कर्मकूं तथा उपासनाकूं और कर्म उपासनाके अंग देवतादिकोंके स्वरूपकूं कहे हैं। वा अद्वितीय ब्रह्मके स्वरूपकूं कहे हैं। या प्रकारके संशय ज्ञानकरि विवेकीके निवृत्त होवे हैं। कहे संशयोंमें पूर्व पूर्व कोटि पूर्वपक्ष है उत्तर उत्तर कोटि सिद्धांत

जानना । यद्यपि विपर्ययरूप अध्यासकी निवृत्ति निदिध्यासनसे होवे है । मननसे प्रमेयगत अनेक प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति होवे है । तथा श्रवणसे प्रमाणगत संशय निवृत्त होवे है । ऐसे अद्वैतकौस्तुभादि वेदांत ग्रंथोंमें लिखा है । केवल ज्ञानसे सर्व संशयविपर्ययकी निवृत्तिकथन तिन ग्रंथोंसे विरुद्ध है । तथापि श्रवणादिकोंसे संशयादिकोंकी निवृत्ति तिन श्रवणादिकोंसे संशयादिकोंके कारण अज्ञानकी निवृत्ति तिन श्रवणादिकोंसे होवे नहीं । ज्ञानसे तौ तिन संशयादिकोंका कारण अज्ञान निवृत्त होवे है । अज्ञानरूप कारणकी निवृत्ति होनेसे कार्य संशयादिकोंकी निवृत्ति अवश्य होवे है यातें किंचित् विरोध नहीं है । ऐसे संशयकी निवृत्ति कहिकरि अब कर्मकी निवृत्तिका प्रकार कहे हैं । कर्म तीन प्रकारके हैं एक संचित है, द्वितीय क्रियमाण है, तृतीय प्रारब्धरूप है । तिनमें संचित कर्म यह है अनंत कोटि जन्मोंके बीजभूत अदृष्टरूपकरि रहनेहारे जे कर्म हैं तिनकूं संचित कर्म कहे हैं । क्रियमाण कर्म तिन कर्मोंकूं कहे हैं । ब्रह्माहमस्मि या ज्ञानके उत्तरकालमें जे कर्म करे जावे हैं । और जिन कर्मोंने या शरीरकूं उत्पन्न करा है तथा या लोकमें सुखदुःख-रूप फलकूं देनेवाले जे कर्म हैं तिनकूं प्रारब्ध कहे हैं । ऐसे तीन प्रकारके कर्मोंके मध्यमें संचित कर्मोंका तौ ज्ञानरूप अग्निकरिके भस्मीभाव होवे है । और क्रियमाण कर्मका संबंध होवे नहीं । जैसे जलके मध्यमें कमलपत्र असंग होइकरि स्थित होवे है, तैसे ज्ञानी आगामी कर्मकरि लिपायमान होवे नहीं । और प्रारब्धकर्मका भोग करिके नाश होवे है । विना भोगसे प्रारब्धकर्मका नाश होवे नहीं । यद्यपि गीतामें यह लिखा है कि ज्ञानरूप अग्नि सर्व

कर्मोंकूं भस्म करे है यातें ज्ञानसे उत्तरकालमें प्रारब्धका शेष मानना गीतावचनसे विरुद्ध है। प्रारब्ध भी तौ एक कर्म है जबी सर्वकर्मकी निवृत्ति कही तब प्रारब्धरूप कर्मकी स्थिति बने नहीं। तथापि छांदोग्यश्रुतिमें यह लिखा है। ज्ञानीका जबतक प्रारब्ध कर्म है तबपर्यंत विदेहकैवल्यमें विलंब है। भोगकरि प्रारब्धकर्मकूं क्षय करता हुआ विद्वान् विदेहकैवल्यकूं प्राप्त होवे है। यातें गीता-वचनमें श्रुतिकी अनुसारतासे प्रारब्ध कर्मसे भिन्न सर्व कर्मका ग्रहण है। प्रारब्धकर्मका भोगे विना नाश होवे नहीं। तथा जीवन्मुक्ति प्रतिपादक श्रुति स्मृति आदिक वचनोंमें प्रारब्धकी स्थिति अंगी-कार है। यातें प्रारब्धका निराकरण श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है। और किसी आचार्यके वचनमें प्रारब्ध कर्मका निषेध लिखा होवे तौ ताका परमार्थ निषेधमें तात्पर्य है। व्यवहारमें ता प्रारब्धका निषेध बने नहीं। श्रीव्यासके सूत्रोंमें तथा तिन सूत्रोंके मूलभूत श्रुतिमें तथा स्मृतिमें तथा भाष्यमें और अनेक ग्रंथोंमें प्रारब्ध शेष माना है। यातें तिन सर्वसे विरुद्ध प्रारब्धकर्मका निषेध करना है। और वेदांतके तात्पर्यकूं न जानकरि किसी एक वचनसे प्रारब्धका सर्वथा निषेध करना यह वेदांततात्पर्यके अनभिज्ञताका द्योतक है। ऐसे आत्मज्ञानसे अध्यासकी निवृत्ति तथा सर्व संशयोंकी निवृत्ति तथा प्रारब्धभिन्न सर्व कर्मोंकी निवृत्ति संक्षेपसे प्रतिपादन करी। अब जा आत्माके ज्ञानसे पूर्व उक्त फल होवे है ता आत्माके स्वरू-पकूं कहे हैं। हे शौनक! यह आत्मा निरवयव है, तथा मायासे रहित है। देहादिकोंकी अपेक्षासे पर तथा प्रकाशस्वरूप जो बुद्धि है ता बुद्धिमें आत्मा साक्षीरूपसे स्थित है। ऐसे शुद्ध आत्माकूं तथा सूर्यादिकोंके प्रकाशक स्वयंज्योतिरूपकूं विवेकी अपना स्व-रूप निश्चय करे हैं। आत्माकी स्वप्रकाशताकूं ही निरूपण करे

हैं। यह सूर्य सर्व घटादिकोंके प्रकाश करनेमें समर्थ हुआ भी ता आत्माकूं प्रकाश कर सके नहीं। तथा चंद्रमा तारे विद्युत आत्मा-कारि प्रकाशकूं प्राप्त हुए आत्माकूं कैसे प्रकाश करेंगे। जबी सूर्या-दिकोंने या स्वयंज्योति आत्माकूं प्रकाश न करा तब यह अग्नि आत्माकूं प्रकाश न करेगा यामें क्या कहना है। ता आत्माके प्रकाश कारि ही प्रकाशित हुए सूर्यादि घटादिकोंकूं प्रकाशे हैं। जैसे प्रका-शरहित काष्ठादि अग्निके प्रकाशकारि प्रकाशित हुए पटादिकोंकूं प्रकाशे हैं। तथा दाह करे हैं। तैसे या आत्माकारिके ही सूर्या-दिक घटादिकोंकूं प्रकाश करे हैं। और स्वतंत्र तिनमें अपना प्रकाश नहीं ऐसे या आत्माके प्रकाशकारि ही सर्व नामरूप प्रतीत होवे है।अब ब्रह्मात्माकी सर्वस्वरूपताकूं निरूपण करे हैं। पूर्व-दिशामें भी ब्रह्म व्यापक है। तथा यह ब्रह्मात्मा पश्चिमदिशामें भी स्थित है। दक्षिणदिशामें तथा उत्तरदिशामें तथा नीचे तथा उपरि तथा च्यारि कोणोंमें ब्रह्मात्मा व्यापक है। और जा प्रपं-चमें ब्रह्म व्यापक है सो प्रपंच ब्रह्मात्मासे भिन्न नहीं। ब्रह्म ही सर्व श्रेष्ठ है और सर्वका अधिष्ठान है। कल्पित वस्तु ता अधिष्ठानसे पृथक् होवे नहीं। जैसे स्वप्नका प्रपंच स्वप्नद्रष्टासे भिन्न नहीं। रज्जुमें कल्पित सर्प रज्जुसे भिन्न नहीं। तैसे ब्रह्ममें कल्पित जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं। अब प्रकारांतरसे ता आत्माका निरूपण करे हैं तथा सत्यादि साधनोंकूं निरूपण करे हैं। शरीररूपी वृक्षमें जीव ईश्वररूप दो पक्षी रहे हैं दोनों एकट्ठे रहे हैं तथा सत्‌चित् आनंदरूपसे समानस्वभाववाले हैं। जैसे किसी एक वृक्षमें दो पक्षी रहे हैं। एक फलकूं भोगे दूसरा उदासीन होइकारि स्थित होवे। तैसे यह जीव शरीररूप वृक्षमें स्थित हुआ कर्मके फल सुख दुःखकूं भोगे है। और ईश्वर तो उदासीन होइकारि प्रकाश करता हुआ स्थित

होवे किंचित् भी सुख दुःखकूं प्राप्त होवे नहीं । ऐसे यह जीव शरीररूप वृक्षमें कर्मोंके फल सुख दुःखका अपनेकूं भोक्ता मानता हुआ शोककूं प्राप्त होवे है । कर्मके अनुसार प्राप्त भये जे दुःख तिनके दूर करनेमें असमर्थ हुआ अनंत संतापकूं प्राप्त होवे है। संतापका स्वरूप किंचित् दिखावे है । बड़ा कष्ट है । मैं किसी कार्यके करनेमें समर्थ नहीं । मैं बहुत दुःखी हूं । मेरे संबंधी मृत भये हैं । अब मेरा रक्षक या संसारमें कौन है । और मेरा पुत्र मृत भया है । मेरी भार्याने परलोकमें गमन करा है । अब मेरे जीवनकूं धिक्कार है । ऐसे अपने शुद्ध सच्चिदानंद अखंड स्वरूपकूं न जानकरि महान् क्लेशकूं यह जीव अनुभव करे है । और जबी निष्काम कर्मसे चित्तशुद्धिकूं प्राप्त हुआ यह जीव शुद्ध ब्रह्मकूं अपना रूप जानिकरि ध्यान करे है और ता ध्यान करनेसे यह जाने है जो मैं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमानंद अद्वितीय हूं । और सर्व भूतोंमें साक्षीरूपसे मैं ही स्थित हूं । ब्रह्मारूपसे जगत्की उत्पत्ति करता हूं । विष्णुरूप करि पालन करता हूं । रुद्ररूपसे जगत्का संहार करता हूं । ऐसे आपकूं सर्वरूप जानता हुआ अद्वितीयभावकूं ही प्राप्त होवे है । ता अद्वितीयभावकी प्राप्तिकरि ही ता पूर्व उक्त संतापकूं निवृत्त करे है । ब्रह्मबोधसे बिना सर्वसंतापकी निवृत्ति होवे नहीं । यातें मुमुक्षु यत्नकरि ब्रह्मज्ञानकूं ही संपादन करे । हे शौनक ! यह मुमुक्षु जबी स्वप्रकाश आत्माकूं अभेदरूपकरि निश्चय करे है । कैसा है सो आत्मा जा आत्माने ही हिरण्यगर्भकूं उत्पन्न करा है । तथा अन्य सर्व जगत्कूं जा परमात्माने उत्पन्न करा है तथा सर्वजगत्का जो नियंता है । ऐसे आत्माकूं अभेदरूपसे निश्चय करता हुआ विद्वान् अविद्याकूं निवृत्त करे है । अविद्याकूं निवृत्त करि पुण्यपापसे

रहित हुआ ब्रह्मभावकूं ही प्राप्त होवे है। यह आत्मा ही भूतरूपसे प्रतीत होवे है। ऐसे सर्वरूप ब्रह्मात्माकूं जानिकरि विवेकी पुरुष अतिवादी नहीं होवे है। अर्थ यह अन्य पुरुषोंके मतकूं खंडन करि स्वमतकूं स्थापन करनेवालेका नाम अतिवादी है। विवेकी जो जीवन्मुक्त है तिसकूं भेदकी प्रतीति होवे नहीं यातें ही किसीके मतका खंडन करे नहीं यातें अतिवादी होवे नहीं। जैसे बालक क्रीडा करे है तैसे यह विद्वान् अद्वितीय ब्रह्ममें क्रीडा करे है। तथा जैसे युवा पुरुष अपनी युवा स्त्री-विषे ही प्रीति करे है। तैसे यह विद्वान् ब्रह्ममें ही प्रीति करे है। विषयोंमें प्रीति करे नहीं। जैसे यागकर्ता पुरुष नाना प्रकारकी क्रियाकूं करे है। तैसे यह विद्वान् ज्ञान ध्यान वैराग्यादि क्रिया ता अद्वितीय आत्मामें ही करे है। ऐसे सर्वदा आत्मचिंतनपरायण जो विद्वान् है सो सर्व विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। अब ता ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवास्ते साधनोंकूं कहे हैं। हे शौनक ! मिथ्यावचनका त्यागरूप जो सत्य है तथा मनसहित नेत्रादिक इंद्रियोंका निरोध-रूप जो तप है तथा यथार्थब्रह्मबोधरूप जो ज्ञान है तथा उपस्थ इंद्रियका संयमरूप जो ब्रह्मचर्य है इन दृढ साधनोंसे ब्रह्मात्माकी प्राप्ति होवे है। जा आत्माकूं संन्यासी रागद्वेषादिदोषरहित हुए अपने अंतःकरणमें प्रत्यक्ष करे हैं। ता शुद्धस्वप्रकाश आत्माकी प्राप्ति सत्यादि साधनोंसे होवे है। अन्य साधनोंसे सत्यसंभाषण-की श्रेष्ठताकूं कहे हैं। हे शौनक ! जो पुरुष सत्यवक्ता है ता पुरुषका ही जय होवे है। मिथ्यावादीका जय कदाचित् होवे नहीं। और देवयानमार्गकी प्राप्ति भी या सत्यसे ही होवे है। मिथ्या-वादी पुरुषकूं देवयानकी प्राप्ति होवे नहीं। जा देवयानमार्गकरि निष्काम ऋषि ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे हैं। ता ब्रह्मलोकमें ज्ञानकूं

प्राप्त होइकरि अधिष्ठानकूं ही प्राप्त होवे हैं । अब ता ब्रह्मकी आश्चर्यरूपताकूं निरूपण करे हैं । यह आत्मा आकाशादिकोंसे भी व्यापक है तथा स्वप्रकाश है । स्वप्रकाश होनेसे ही बुद्धिका विषय नहीं है । तथा सूक्ष्म जे परमाणु आदिक पदार्थ हैं तिनमें भी व्यापक होनेसे सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है । यह ब्रह्म ही सूर्यचंद्रादिरूपसे प्रकाशक करे है । और बहिर्मुख पुरुषोंकूं दूर पदार्थोंसे भी अत्यंत दूर है । और जे साधनसंपन्न हैं तथा अंतर्मुख हैं तिनकूं अपनी बुद्धिरूपी गुहामें अत्यंत समीप प्रतीत होवे है । और या आत्माकूं नेत्रादि ज्ञानइंद्रिय तथा वाक्‌आदि कर्मइंद्रिय ग्रहण करि सके नहीं तथा यह आत्मा केवल अग्निहोत्रादि कर्मोंसे भी प्राप्त होवे नहीं । आत्माकी प्राप्तिमें अन्य साधन कहे हैं । जो अधिकारी या स्वप्रकाश तथा निरवयव आत्माका ध्यान करे है तथा वारंवार आत्माकार वृत्तिके करनेसे चित्तशुद्धिकूं प्राप्त भया है । सो विवेकी ता शुद्ध अंतःकरणमें ता ब्रह्मकूं आत्मरूपसे प्रत्यक्ष करे है । हे शौनक ! यह सूक्ष्म आत्मा केवल शुद्ध चित्तसे ही जाना जावे है । जा आत्मामें पंच प्रकारका प्राण स्थित है । या शरीरके हृदयदेशमें ही आत्मा प्राप्त होवे है । जा आत्माने सर्व प्राणियोंके चित्त तथा प्राण व्याप्त करे हैं जैसे घृतने दूध व्याप्त करा है तथा जैसे अग्निने काष्ठकूं व्याप्त करा है ऐसे सर्व प्राणियोंके प्राण तथा अन्तःकरणकरिके उपलक्षित सर्व जगत्‌कूं व्याप्त करनेहारा जो आत्मा है, सो आत्मा ही रागद्वेषादि कलंकसे रहित शुद्ध अन्तःकरणमें नित्य अजर अमर परिपूर्ण आनंदरूप करि प्रतीत होवे है । अब उपासनाके फलकूं निर्गुण आत्माके ज्ञानकी स्तुतिवासते कहे हैं । हे शौनक ! जो विवेकी सर्वरूप आत्माकूं ही अपना स्वरूप जाने

है सो पुरुष अपने अर्थ वा किसी अन्य पुरुषके अर्थ जा स्वर्गा-
दिक लोकोंका संकल्प करे है तिन सर्व लोकोंकूं प्राप्त होवे है तथा
सो शुद्ध अंतःकरणवाला अधिकारी जिन जिन भोगोंकूं अपने
वासते वा किसी अन्यके वासते संकल्प करे हैं तिन तिन भोगोंकूं
प्राप्त होवे है। ताते जा पुरुषकूं विभूतिकी इच्छा होवे सो पुरुष
सत्यसंकल्प जो ज्ञानी है ताका वारंवार पूजन करे । और जे
मुमुक्षु निष्काम हुए ता ज्ञानीका पूजन करे हैं ते मुमुक्षु माताके
गर्भमें आवें नहीं। कैसा है सो ज्ञानी ? जाका मुमुक्षुकूं पूजन
अवश्य कर्त्तव्य है। जो ज्ञानी संशयविपर्ययसे रहित अपने अखंड
स्वरूपकूं भले प्रकार जानता है या ज्ञानीरूप ब्रह्ममें ही यावत्
चराचर विश्व स्थित है। तथा शुद्ध स्वप्रकाश है। ज्ञानप्राप्तिमें
मुमुक्षुकूं कामनात्याग ही परम मोक्षका साधन है याकूं निरूपण
करे हैं। हे शौनक ! जो पुरुष या लोकके भोगोंकूं वा परलोकके
भोगोंकूं चाहता है सो मूढ भोगोंकी इच्छा करता हुआ तिन
तिन भोगोंमें स्ववासना कर्मके अनुसार जन्मकूं प्राप्त होवे है।
जो विवेकी अपने यथार्थ रूपकूं जानता है सो आप्तकाम है।
अर्थ यह–सो ज्ञानी हिरण्यगर्भादिरूपसे आपकूं सर्व पदा-
र्थोंका भोक्ता मानता हुआ तुच्छ विषयसुखकी इच्छा करता
नहीं। यातें आत्मकाम तथा आप्तकाम जो ज्ञानी है ता ज्ञानीकी
विषयसुखोंकी सर्व कामना निवृत्त होवे हैं। अब ता आत्मप्राप्तिमें
साधन निरूपण करे हैं। जैसे रोगी पुरुषकूं पथ्य वारंवार निरूपण
करना यामें पुनरुक्ति दोष नहीं। तैसे श्रुतिभगवती मुमुक्षु जनों-
पर कृपा करती हुई वारंवार आत्माके स्वरूपकूं तथा ज्ञानके
स्वरूपकूं तथा ज्ञानके साधनोंकूं कथन करे है यामें भी पुनरुक्ति
दोप नहीं। हे शौनक ! यह आत्मा केवल वेदके अध्ययनकारि

प्राप्त होवे नहीं। तथा तीक्ष्ण बुद्धिकरिके भी प्राप्त होवे नहीं। और अनंत अनात्मप्रतिपादक शास्त्रके श्रवणसे भी प्राप्त होवे नहीं। जा आत्माकूं अभेदरूपसे अधिकारी चिंतन करे है सो मुमुक्षु ध्याता ही ता आत्माकूं प्राप्त होवे है। ता मुमुक्षु ध्याताकूं ही आत्मा अपने शुद्ध सच्चिदानंद अद्वितीय रूपकूं प्रगट करे है। जैसे शुद्ध अचल जलमें सूर्यका प्रतिबिंब स्पष्ट प्रतीत होवे है तैसे निष्काम कर्मसे शुद्ध तथा ध्यान करनेसे एकाग्र अंतःकरणमें ता शुद्ध आत्माकी अभिव्यक्ति होवे है और कामक्रोधादिक शत्रुवों-करिके नहीं वश भये जे मन इंद्रियादिक हैं तिन मन इंद्रियादि-कोंका स्ववश करनारूप जो धैर्य है ता धैर्यसे रहित पुरुष या आत्माकूं प्राप्त होवे नहीं। तथा विषयोंमें आसक्ति होनेसे जो कर्त्तव्यका विस्मरणरूप प्रमाद है ता प्रमादकरि आत्माकी प्राप्ति होवे नहीं। तथा संन्यासरहित शुष्क ज्ञानसे भी आत्मप्राप्ति होवे नहीं। यद्यपि इंद्र अजातशत्रु जनक गार्गी इत्यादिकोंने संन्यास नहीं करा और आत्माके वास्तव रूपकूं प्राप्त भये हैं। यातें संन्यासरहित केवल ज्ञानसे ता आत्माकी प्राप्ति होवे नहीं यह कथन विरुद्ध है। तथापि संन्यास विना तौ आत्माकी प्राप्ति होवे नहीं। जनक आदिकोंके भी जन्मांतरका संन्यास था और इस जन्ममें भी अंतरसे संन्यास था और केवल बाह्यसंन्यासका भी मोक्षमें अति उपयोग नहीं किंतु अंतरसंन्यासका ही उपयोग है। और यदि अंतर संन्यास भी है और दृष्टविक्षेपनिवृत्ति अर्थ बाह्यसंन्यास भी है तौ ताका महिमा क्या कहें। ता अंतरसंन्या-सपूर्वक बाह्यसंन्यासकूं श्रुति भगवतीने और सर्व वर्ण आश्रम धर्मोंसे श्रेष्ठ कहा है। यातें शुष्क ज्ञानसे ता आत्माकी प्राप्ति होवे नहीं। और जो विवेकी धैर्यसहित है तथा प्रमादसे रहित है तथा

संन्यासकूं प्राप्त भया है और आत्माकी प्राप्तिवासते वेदांत श्रवणादिकोंमें यत्नकूं करता है सो विवेकी ब्रह्मरूपधामकूं प्राप्त होवे है। अब जीवन्मुक्तिफलकूं कहे हैं। हे शौनक ! जे विवेकी ज्ञानकरि या आत्माकूं प्राप्त भये हैं ते विद्वान् अपने स्वरूप ज्ञानकरि ही सर्वदा तृप्त होवे हैं। और शरीरकूं स्थूल करनेहारे जे पदार्थ हैं तिन पदार्थोंकरि तृप्त नहीं होवे हैं तथा वीतराग हैं तथा चित्तशांतिकूं प्राप्त भये हैं। ऐसे जीवन्मुक्त परिपूर्ण अद्वितीय आनंदस्वरूप आत्माकूं प्राप्त हुए तथा सर्वदा समाहित हुए शरीरस्थितिकालमें भी ब्रह्ममें ही स्थित हैं। ऐसे जीवन्मुक्तोंने वेदान्तके श्रवणसे ब्रह्मैक्य निश्चय करा है तथा संन्यासके करनेसे जे संन्यासी अंतःकरणकी शुद्धिकूं प्राप्त भये हैं। ऐसे जीवन्मुक्त प्रारब्धकूं भोग करि नाश करते हुए तथा ब्रह्मभावकूं प्राप्त हुए मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं। अब जैसे प्राणादिकोंका लय होवे है ताकूं निरूपण करे हैं। या ज्ञानीकी प्राणादि पंचदश कलावोंका अपने अपने कारणमें लय होवे है। ते कला प्रश्नउपनिषत्के भारद्वाजऋषिके प्रसंगमें हम कथन करि आये हैं। नेत्रादिकोंमें अध्यात्मरूपसे स्थित जे सूर्यादिक हैं ते अपने अधिदैवरूप देवभावकूं प्राप्त होवे हैं। तथा कर्म या विद्वान्के नाश होवे हैं। और या विद्वान्का बुद्धि उपाधिवाला जो विज्ञानमयनामा जीव है सो जीव स्थूल सूक्ष्म उपाधिके नाश होनेसे ब्रह्ममें एकताकूं प्राप्त होवे है। जैसे घटके नाश होनेसे महाकाशरूपसे घटाकाश स्थित होवे है। तैसे बुद्धि आदि उपाधिके नाश होनेसे जीवात्मा भी ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवे है। यद्यपि बृहदारण्यक उपनिषत्में सर्व प्राणादिकोंका ब्रह्ममें लय कथन करा है और इस उपनिषत्में अपने अपने कारणमें लय कथनसे विरोध प्रतीत होवे है। तथापि जो जाका कार्य होवे है ता

कारणमें ताका लय होवे लोकमें नियम है । या नियमकूं आश्रय करके ही या श्रुतिने अपने अपने कारणमें प्राणादिकोंका लय प्रतिपादन करा है । और बृहदारण्यककी श्रुति तौ ज्ञानीकी दृष्टिकूं आश्रयकरि प्राणादिकोंका ब्रह्ममें लय कथन करे है । श्रुतिद्वयका तात्पर्य यह है । प्राणादिक कालका लय तौ अपने अपने उपादानमें होवे है । और तिन कलावोंके उपादान वायु आदिकोंका लय ब्रह्ममें होवे है । ऐसे सर्व अनात्म पदार्थोंका ब्रह्ममें लय होवे है । यातें किंचित् भी विरोध नहीं । हे शौनक ! जैसे गंगा यमुनादिक नदियां समुद्रकूं गमन करती हुई समुद्रमें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं और नाम रूपकूं त्याग करे हैं तैसे यह विद्वान् नाम रूपसे रहित हुआ अज्ञान तत्कार्यसे रहित जो शुद्ध आत्मदेव है ताकूं ही प्राप्त होवे है । हे शौनक ! जो कोई विवेकी आत्माके यथार्थ रूपकूं जानता है सो ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है । यामें श्रुति पाठ दिखावे हैं । "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" अर्थ यह जो ब्रह्मको जानता है सो ब्रह्मकूंही प्राप्त होवे है । इस ब्रह्मवेत्ताके संतानमें अब्रह्मवित् नहीं होवे है किन्तु ब्रह्मवित ही होवे है । यथा सो ब्रह्मवेत्ता सर्व शोककूं निवृत्त करे है । तथा धर्माधर्मरूपसे तथा अध्यासरूप ग्रंथिसे रहित होवे है । या मुंडकोपनिषतके पठनकी रीति कहे हैं । आगेका मंत्र विद्याके संप्रदायकूं ही निरूपण करे हैं । जे अधिकारी अपने वर्ण आश्रमके कर्मोंकूं करे हैं तथा वेदाध्ययन तथा सगुण ब्रह्मकी उपासनापरायण हैं । और निर्गुण ब्रह्मकी जिज्ञासावाले हैं तथा शिरमें अग्निधारणरूप व्रत जिन अधिकारियोंने धारण करा है । एकर्षिनामकरि प्रसिद्ध जो आथर्वणिकोंका अग्नि है तामें श्रद्धासे हवन करते हैं तिन अधिकारी जनोंकूं ही या मुंडकोपनिषत्का

उपदेश करे । और अंगिरानाम ऋषिने अपने शरणकूं प्राप्त भया जो शौनक है ता शौनकके प्रति सत्यरूप आत्माका उपदेश करा है । जे पुरुष मुमुक्षु हुए वैराग्यादिकोंकरि संपन्न हैं तिनकूं तौ श्रवणकरि उपनिषत् ब्रह्मज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्ष करे है । यातें साधन सहित हुआ ही या उपनिषत्कूं पठन करे । और जाने शिरमें अग्निधारणरूप व्रतकूं तथा वैराग्यादि साधनोंकूं नहीं सम्पादन करा सो पुरुष या उपनिषत्कूं पठन करे नहीं । जिन ब्रह्मादिक ऋषियोंसे यह ब्रह्मविद्या या संसारमें प्राप्त भयी है । तथा हम अधिकारियोंकूं प्राप्त भयी है । तिन सर्व ऋषियोंकूं हम अधिकारी जनोंका वारंवार प्रणाम है ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्रजकाचार्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्ट-परमहंसपरिव्राजकस्वामिअच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे मुंडकोपनिषदर्थनिर्णयः ॥ ५ ॥

इति मुंडकोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ ५ ॥
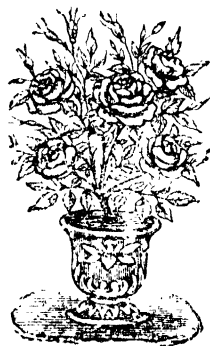
ॐ

अथ मांडूक्योपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐ नमः परमात्मने । अब अथर्वणवेदकी मांडूक्यउपनिषत्के अर्थकूं निरूपण करे हैं । ॐ कारही यह सर्व नाम रूप प्रपंच है । ॐ कारसे भिन्न नहीं । तात्पर्य यह जो ब्रह्म सर्वका अधिष्ठान है । कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होवे नहीं । यातें ब्रह्मसे किंचित् भी भिन्न नहीं और ता अधिष्ठान ब्रह्मका वाचक होनेसे ॐ कार ही ब्रह्म है । और जैसे शालिग्राममें विष्णुमूर्तिका ध्यान करनेसे शालिग्रामकूं विष्णुरूपता है तैसे या ॐ कारमें ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करनेसे ॐ कार भी ब्रह्मरूप है । तथा जैसे भ्रांतिकालमें प्रतीत भया जो चोर है सो स्थाणुके न जाननेसे ही प्रतीत होवे है । जबी स्थाणुका यथार्थ बोध होइ जावे तब चोर बोध होइ जावे है । तब ऐसी प्रतीति होवे है जो यह चोर है सो स्थाणु है याकूं ही बाधसामानाधिकरण्य कहे हैं । तैसे ॐ कारका अधिष्ठान ब्रह्म है यातें ॐ कार ब्रह्म है यामें भी बाधसामानाधिकरण्य है । और नामके अधीन नामीकी सिद्धि होवे है । ॐकार भी ब्रह्मका नाम है नामसे नामी भिन्न होवे नहीं तैसे ॐ कारनामसे नामी ब्रह्म भिन्न नहीं । और जैसे अर्थप्रपंचमें व्यापक ब्रह्म है तैसे शब्दप्रपंचमें व्यापक ॐकार है । यातें व्यापकताकूं ग्रहण करि ॐकार ही ब्रह्म है । और ता ब्रह्मसे कार्य प्रपंच भिन्न नहीं तथा ब्रह्मरूप ॐकारसे भी यह प्रपंच भिन्न नहीं यातें यह सिद्ध भया ॐकार ही सर्व नामरूप प्रपंच है । अब ता ॐकारका स्पष्ट कथन करे हैं । जे तीन कालकरि परिच्छिन्न पदार्थ हैं ते सर्व ॐकाररूप हैं । और जो अनादि अव्यक्त साभास अज्ञान है सो कालका भी कारण होनेसे

कालकरि परिच्छिन्न नहीं है । तथा हिरण्यगर्भसे पूर्व वर्षादिरूप काल न होता भया ऐसे श्रुति भगवती कहे है। यातें त्रिकालातीत अव्यक्त तथा हिरण्यगर्भ यह दोनों हैं। ते दोनों अव्यक्त तथा हिरण्यगर्भ ओंकारसे भिन्न नहीं। ओंकाररूप ही ते दोनों हैं। पूर्व तौ ओंकार ही सर्व नामरूप प्रपंच है ऐसे श्रुतिमें कहा था । अब सर्व जो वाच्य प्रपंच है ता प्रपंचकूं वाचक जो ओंकार है ता वाचक ओंकाररूपसे निरूपण करे हैं। प्रयोजन तौ दोनोंके परस्पर अभेद कथनका यह है । जो वाच्य वाचक दोनोंकूं शुद्ध ब्रह्ममें लय करि अधिष्ठाननिर्विशेष ब्रह्मकूं निश्चय करे। यह सर्व प्रपंच ब्रह्मरूप है। ऐसे परोक्षरूपसे कथन करा जो ब्रह्म है ता ब्रह्मकूं ही श्रुति भगवती अपने हस्तकूं हृदयदेशमें प्राप्त करि प्रत्यक्षरूपसे कथन करे है। अति कृपावती जो महावाक्यरूपा श्रुति है सो श्रुति अपने अतिप्रिय मुमुक्षु जनोंकूं यह उपदेश करे है। भो मुमुक्षवः ! "अयमात्मा ब्रह्म" अर्थ यह नित्य अपरोक्ष जो यह साक्षी आत्मा है। यह साक्षी आत्माही ब्रह्म है यातें ब्रह्म भिन्न नहीं जानना। ऐसे महावाक्यके श्रवणसे भी जा मंदबुद्धि पुरुषकूं ज्ञान भया नहीं ता पुरुषके बोधवासते अब तो आत्माके च्यारि पाद कथन करे हैं।यह आत्मा ही चतुष्पाद है।जैसे एकरूपी या विषे व्यवहारवासते च्यारि भाग कहे जावे हैं। तैसे एक आत्मामें मुमुक्षु जनोंके बोध अर्थ च्यारि पादका वर्णन है। जैसे विश्व तैजस प्राज्ञ तुरीय यह जीवके च्यारि पाद हैं तैसे विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर तथा ईश्वरसाक्षी यह ईश्वरके च्यारि पाद हैं। अब विराट्का विश्वसे अभेदकूं मनमें धारिकरि विश्वरूप प्रथम पादकूं वर्णन करे हैं। विश्वसे अभिन्न जो विराट् है यह आत्माका प्रथम पाद है। कैसा है यह विश्व ? अभिन्न विराट् जागरितअवस्था

तथा स्थूलशरीरका अभिमानी है। बाह्य शब्दादिकोंमें वृत्ति-वाला है। या विश्व अभिन्न विराट्के सप्त अंग हैं। स्वर्गलोक मस्तक है। चंद्र सूर्य नेत्र हैं। वायु प्राण है। आकाश धड है। समुद्रादिरूप जल मूत्रस्थान हैं। पृथिवी पाद है। जा अग्निमें हवन करे हैं ता अग्निकूं आहवनीय कहे हैं सो आहवनीय अग्नि या विश्व अभिन्न विराट्का मुख है और या विश्वके उन्नीस मुख हैं। तथापि पंच कर्मइन्द्रिय पंच ज्ञानइंद्रिय पंच प्राण मन बुद्धि अहं-कार चित्त यह च्यारि अंतःकरण यह उन्नीस ही मुखकी न्याईं भोगके साधन होनेसे मुख कहे जावे हैं। या विश्वकूं स्थूलभुक् भी कहे हैं। स्थूल शब्दादिक विषयोंकूं भोगे है यातें ही स्थूल-भुक् है। और यह ही सर्व नररूप है यातें वैश्वानर है। यह प्रथम पाद निरूपण करा। अब द्वितीय पादकूं कहे हैं। व्यष्टिसूक्ष्म शरीरके अभिमानी तैजसका समष्टिसूक्ष्मशरीरके अभिमानी हिरण्यगर्भके साथ अभेद है। हिरण्यगर्भसे अभिन्न तैजस ही स्वप्नअवस्थाका अभिमानी है। और यह तैजस मनोमात्र जे पदार्थ हैं तिनकूं भोगे है। यातें ही तैजसकूं अंतःप्रज्ञ कहे हैं। अर्थ यह अंतर है सूक्ष्म अविद्यारचित पदार्थोंमें प्रज्ञा जाकी ताका नाम अंतःप्रज्ञ है। जैसे सप्त अंग उन्नीस मुख विश्वके कहे तैसे ही तैजसके हैं। विश्वके तो ईश्वररचित हैं और तैजसके मनोमात्र हैं। अब तृतीय पादके निरूपणवासते सुषुप्ति अवस्थाकूं प्रथम कहे हैं। जा अवस्थामें प्राप्त हुआ यह जीव किसी भोगमें इच्छा करे नहीं। तथा जा अवस्थामें अनेकन प्रकारके विपर्ययरूप स्वप्न-दर्शनकूं करे नहीं। ता अवस्थाकूं सुषुप्ति कहे हैं। ऐसी सुषुप्ति-अवस्थावाला ईश्वर अभिन्न प्राज्ञ ही तृतीय पाद है। ता व्यष्टिकारणशरीर अविद्याके अभिमानी प्राज्ञके ही विशेषण

कहे हैं। यह प्राज्ञ सुषुप्तिमें ईश्वरके साथ एकताकूं प्राप्त होवे है। याकूं ही प्रज्ञानघन कहे हैं। जाग्रत्के तथा स्वप्नके सर्व ज्ञान अविद्यामें एक रूप होइ जावे हैं, इसीसे याकूं प्रज्ञानघन कहा। तथा अधिक आनंदकूं प्राप्त होवे है यातें आनंदमय कहे हैं और यह प्राज्ञ ही अविद्याकी वृत्तियोंसे अज्ञान आवृत आनंदकूं भोगे हैं यातें आनंदभुक् है। और जाग्रत्स्वप्नके ज्ञानमें द्वाररूपसे जो स्थित होवे ताकूं चेतोमुख कहे हैं। प्राज्ञ ही जाग्रत्स्वप्नमें द्वार है यातें ताकूं चेतोमुख कहे हैं। याकूं ही भूत भविष्यत् वर्तमान पदार्थोंका ज्ञान जाग्रत्स्वप्नमें होता भया यातें प्राज्ञ कहे हैं। जाग्रत्स्वप्नके ज्ञानोंसे रहित केवल चेतनप्रधानतारूपकरि स्थित होनेसे भी या तृतीय पादकूं प्राज्ञ कहे हैं। अब प्राज्ञकूं ईश्वररूपताके सूचनअर्थ ईश्वरके धर्मोंका प्राज्ञमें वर्णन करे हैं। यह प्राज्ञ ही सर्वका ईश्वर है। तथा यह प्राज्ञ ही सर्वज्ञ है। यह प्राज्ञ ही सर्व भूतोंके अंतरस्थित हुआ सर्वका नियंता है। तथा सर्व भूत या प्राज्ञसे ही उत्पन्न होवे हैं और या प्राज्ञमें ही लय होवे हैं। अब चतुर्थ पादकूं साक्षातशब्दका अविषय होनेसे निषेधमुखसे ता तुरीय आत्मरूप चतुर्थ पादका निरूपण करे हैं। यह तुरीय आत्मा तैजस नहीं है। तथा विश्व नहीं है। तथा जाग्रत स्वप्नअवस्थाके जो मध्यअवस्था है सो अवस्था भी तुरीयरूप आत्मा नहीं। तथा सुषुप्ति अवस्था आत्मा नहीं है। तथा एक कालमें सर्व विषयोंका ज्ञाता नहीं तथा सर्व पदार्थोंका अज्ञाता भी नहीं और यह तुरीय आत्मा निर्विशेष होनेसे ही ज्ञानइंद्रियोंका अविषय है। यातें ही क्रियासे रहित है तथा कर्म इंद्रियोंका अविषय है। तथा स्वतंत्र अनुमानका अविषय है। तथा बुद्धिका अविषय है। तथा शब्दका अविषय है।

सर्व प्रकारसे आत्माकूं अविषय होनेकरि प्राप्त भयी जो शून्यताकी शंका ता शंकाकूं निवृत्त करते हैं । यह आत्मा त्रितय-अवस्थामें अनुगत होइके प्रकाश करे है ऐसी वृत्ति करि जानने योग्य है यातें शून्यताकी प्राप्ति होवे नहीं । तथा तुरीय आत्मा अपनी सिद्धिमें आपही प्रमाण है यातें भी शून्यताकी प्राप्ति होवे नहीं तथा सर्व प्रपंचका जो तुरीयमें अभाव है तथा निर्विकार है तथा शुद्धपरमानंदबोधरूप है तथा भेदकल्पनासे रहित है तथा तीन पादसे विलक्षण है इसीसे या आत्माकूं चतुर्थ कहे हैं । तिनकी अपेक्षासे तुरीय कह्या जावे हैं और उक्त पादत्रय या आत्मासे भिन्न वास्तव है नहीं यातें या आत्माकूं तुरीय कथन केवल उपदेश अर्थ है । कोई श्रुति भगवती स्वअभिप्रायसे या आत्माकूं तुरीयरूपता नहीं कहे हैं । ऐसे सर्व कल्पनासे रहित तुरिय आत्माकूं ही विवेकी पुरुष आत्मरूपसे मानते हैं । भिन्नरूपसे माने नहीं । ऐसा आत्मा सर्व कल्पनाका अधिष्ठान तुरीय ही मुमुक्षुकूं जानने योग्य है । याके ज्ञानसे मुमुक्षु कृतकृत्यभावकूं प्राप्त होवे हैं । अब विश्व आदिक पादोंका आकारादि मात्राओंसे अभेद वर्णन करे हैं । पूर्व चतुष्पादरूपसे निरूपण करा जो आत्मा सो आत्मा ॐकाररूप है । ॐकारकी तीन मात्रा हैं । प्रथमका नाम अकार है । द्वितीयकूं उकार कहे हैं । तृतीयकूं मकार कहे हैं । अब जा मात्रासे जा आत्माके पादका अभेद है ताकूं कहे हैं । जागरित अवस्थावाला जो विश्वसे अभिन्न वैश्वानर है सो प्रथम आकारमात्रारूप है । अभेदके संपादक तुल्यधर्मकूं वर्णन करे हैं । जैसे सर्व प्रपंचमें व्यापक विराट् है तैसे आकार ही सर्व वाक्रूप है ऐसे श्रुतिमें कहा है यातें आकार भी व्यापक है जैसे आत्माके पादोंमें प्रथम पाद विराट्

है तैसे ॐकारकी मात्रामें प्रथम मात्रा अकार है। ऐसे व्यापकता तथा प्रथमतारूप दो समान धर्मोंसे दोनोंकी एकता है। अब दो समान धर्मोंसे प्रथमपादकी प्रथम मात्रासे जो पुरुष अभेद चिंतन करे है ताकूं फल प्रतिपादन करे हैं। जो पुरुष प्रथम पादका प्रथम मात्रासे उक्त तुल्य धर्मोंकरि अभेद चिंतन करे हैं सो पुरुष सर्व कामनाओंकूं प्राप्त होवे हैं तथा सर्व महात्माओंके मध्यमें अग्रणीय होवे है। स्वप्नमें अवस्थावाला जो तैजस है सो द्वितीय उकारमात्रारूप है। दोनोंमें समान धर्म यह हैं उत्कृष्टता तथा द्वितीयता। तैजसरूप द्वितीय पादमें तथा उकाररूप द्वितीय मात्रामें समान धर्म उत्कृष्टता तथा द्वितीयतारूप जानकरि जो पुरुष दोनोंका अभेद चिंतन करता है ताकूं फलप्राप्ति कहे हैं। उच्चारणकी अपेक्षासे उकारमें उत्कृष्टता गौण जाननी। वास्तवसे तो उत्कृष्टता सर्व वर्णोंमें व्यापक जो अकार है तामें ही है। ऐसे द्वितीय पादमें और द्वितीय मात्रामें उत्कृष्टतारूप समान धर्म करि अभेद चिंतनसे अत्यंत ज्ञानकी वृद्धिकूं पुरुष प्राप्त होवे है। तथा द्वितीयरूप समान धर्म करि अभेद चिंतनसे शत्रुमित्रमें समानतारूप फलकूं प्राप्त होवे। दोनों धर्मोंकरि अभेद चिंतनसे या वक्ष्यमाण फलकूं प्राप्त होवे है। या ध्याता पुरुषकी कुलमें कोई अज्ञानी पुत्रादिक नहीं होवे है किन्तु सर्व ब्रह्मवेत्ता ही होवे हैं। सुषुप्तिअवस्थावाला प्राज्ञ तृतीयमात्रारूप है। विश्वतैजसकूं उत्पत्तिप्रलयमें निर्गमनसे तथा प्रवेशसे प्राज्ञ परिमाणरूप मिनती करे है। तथा ॐकारके वारंवार उच्चारण करनेसे अकार उकारका मकारमें लय तथा मकारसे उत्पत्ति प्रतीत होवे है। यातें उत्पत्ति प्रलयकालमें मकार अकार उकार दोनोंकी मिनती करे। या मिनतीरूप धर्मसे प्राज्ञका तथा मकाररूप तृतीय मात्राका अभेद कह्या। जैसे ॐकारके

उच्चारण करे मकारमें अकार उकारकी समाप्ति होनेसे दोनोंकी मकारमें एकता होवे है। तैसे विश्व तैजस सुषुप्तिमें प्राज्ञविषे एकताकूं प्राप्त होवे हैं। या एकीभावरूप समानधर्मसे प्राज्ञका मकारसे अभेद है। अब प्राज्ञ मकारके अभेद चिंतनका फल वर्णन करे हैं। जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे मिनतीरूप समान धर्मकरि अभेद चिंतन करे है सो पुरुष जगत्के यथार्थ स्वरूपकूं जाने है। और एकीभावरूप समान धर्मसे जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे अभेद चिंतन करे है सो पुरुष सर्व जगत्का कारण होवे है। इहां जो विश्वका अकारमें अभेद तथा तैजसका उकारसे अभेद तथा प्राज्ञका मकारसे अभेद ऐसे अभेदकूं निरूपणकरिके पुनः या त्रितय अभेद चिंतनके जे भिन्न भिन्न फल निरूपण करे ते प्रधान ॐकारके ध्यानवासते कहे हैं। यातें ॐकारके ध्यानकी स्तुतिरूप होनेसे अर्थवादरूप जानने। श्रुति भगवती भिन्न भिन्न फलनिरूपणमें तात्पर्यवाली नहीं किन्तु प्रधान जो ॐकारका ध्यान ताके फल निरूपणमें ही श्रुतिभगवतीका तात्पर्य है। अन्यथा उपासनाकी अनेकता प्राप्त होवेगी और केवल एक ॐकारका ध्यान ही श्रुतिमें विवक्षित है। अब चतुर्थपाद जो तुरीय है ताका अमात्र ॐकारके साथ अभेद निरूपण करे है। जो चेतन अध्यस्त त्रिमात्रावाले ॐकारके साथ अभेद रूपसे प्रतीत होवे है सो इहां ॐकाररूपसे विवक्षित है ता ॐकाररूप चेतनकी परब्रह्मके साथ एकता होवे है। ऐसे मात्राकल्पनासे रहित जो ॐकारका वास्तव अमात्र रूप है ता अमात्ररूपका तुरीयसे अभेद है। अमात्ररूप तुरीय क्रियासे रहित है तथा प्रपंचके संबंधसे शून्य है तथा आनंदरूप है और सर्व भेदकल्पनासे रहित है। ऐसे जाननेवाला अधिकारी अपने पारमार्थिक स्वरूपमें प्रवेश करे है। अज्ञानके निवृत्त होनेसे पुनः जन्ममृत्युकूं प्राप्त होवे नहीं।

ॐकारके ध्यानसे ही कृतार्थता होवे है। या अर्थकूं कारिकासे कहे हैं। "युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्मनिर्भयम्। प्रणवे नित्य-युक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्॥ १॥" अर्थ यह ॐकार निर्भय ब्रह्म रूप है। याते ॐकारमें चित्तकूं पुरुष जोडे और जो पुरुषके ॐकारमें चित्तकूं जोड़ता है ता पुरुषकूं कहीं भी भय प्राप्त होवे नहीं ॥ १ ॥ या स्थानमें यह निष्कर्ष है पूर्व निरूपण करा जो विराट्से अभिन्न विश्व सो अकाररूप कह्या है ता विश्वरूप अकारका तैजसरूप उकारमें लय करे। विश्वरूप अकार तैजसरूप उकारसे भिन्न नहीं ऐसे चिंतनका नाम या उपनिषत्में लय चिंतन इष्ट है। ऐसे और मात्रामें भी जान लेना। तथा तैजसरूप उकारका प्राज्ञरूप मकारमें लय करे। प्राज्ञरूप मकारका ॐकारके परमार्थरूप अमात्रमें लय करे। काहेतें स्थूलकी उत्पत्ति तथा लय सूक्ष्ममें होवे है यातें स्थूल विश्वरूप अकारका सूक्ष्म तैजसरूप उकारमें लय कह्या। सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय कारणमें होवे हैं यातें सूक्ष्म तैजसरूप उकारका कारण प्राज्ञरूप मकारमें लय कह्या। विश्वादिकोंके लय कथनसे समष्टिविराट् तथा हिरण्यगर्भ भी ग्रहण करि लेने। जा प्राज्ञरूप मकारमें तैजस अभिन्न हिरण्यगर्भरूप उकारका लय निरूपण करा ता ईश्वर अभिन्न प्राज्ञरूप मकारका तुरीयरूप जो ॐकारका पारमार्थिक अमात्ररूप है तामें लय करे। काहेतें ॐकारका परमार्थरूप अमात्र है सो अमात्र तुरीय रूप है, ता तुरीयका ब्रह्मसे अभेद है। शुद्धब्रह्ममें माया उपाधिविशिष्ट ईश्वर तथा अविद्याविशिष्ट प्राज्ञ दोनूं कल्पित हैं। कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे पृथक् होवे नहीं यातें ईश्वर भिन्न प्राज्ञरूप मकारका लय अमात्रमें निरूपण करा। ऐसे जा ॐकारके वास्तव अमात्रस्वरूपमें सर्वका लय करा है सो मेरा

स्वरूप है। सर्व नामरूप प्रपंचका अधिष्ठान नित्यशुद्धबुद्ध मुक्तस्व-भाव परमानंदरूप अद्वैतस्वरूप जो ॐकारका पारमार्थिक स्वरूप है सोई मैं हूं ऐसे चिंतनसे ज्ञान उदय होवे है। ऐसे ज्ञानद्वारा मोक्षके करनेहारा यह प्रवणरूप ॐकारका चिंतन है। जो पुरुष या प्रकारके ॐकारके ध्यानकूं करता है ताकूं श्रीगौडपादाचार्यवृद्ध मुनिरूपकरि वर्णन करते भये। जो पुरुष अनेक प्रकारके अनात्मप्रतिपादक शास्त्रोंकूं जानता भी है। परन्तु या ॐकारके ध्यानसे रहित है। तो भी सो पुरुष मुनि नहीं है। परमहंस महात्माओंकूं यह अतिप्रिय है। तथा जो बहिर्मुख है तथा रागद्वेषादिदोषकरि दूषित अंतःकरण है ताका या ॐकारके ध्यानमें अधिकार नहीं। जो पुरुष रागद्वेषादिदोषरहित है तथा अंतर्मुख है ताका या ॐकारध्यानमें अधिकार है। जा पुरुषकी भोगोंमें कामना नहीं ताकूं इस जन्ममें ही या ध्यानसे ज्ञान प्राप्त होवे है। जा पुरुषकी परलोकके भोगोंमें कामना तौ है परंतु ता कामनाकूं रोककरि गुरुमुखसे ॐकारके उपदेशकूं श्रवण करि ॐकारका ध्यान करे है ता प्रतिबंधके वशसे ज्ञान तौ होवे नहीं किंतु देवयानमार्गकरि ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है। ता ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुआ सो उपासक ईश्वरके समान सत्यसंकल्प होवे है। परंतु जगत्की उत्पत्ति आदिकोंके करनेमें ईश्वरमें ही सामर्थ्य है। उपासकमें जगत्के उत्पत्ति आदिक करनेका सामर्थ्य होवे नहीं। और उपासकता लोकमें ही ज्ञानकूं प्राप्त होवे है। और प्रलयकालमें जबी ब्रह्मलोकका नाश होवे है तब हिरण्यगर्भके साथ ही यह उपासक विदेहकैवल्यकूं प्राप्त होवे है। और यदि ॐकारके ध्याता पुरुषकी या लोकके भोगोंमें कामना रही होवे तौ या लोकमें जे शुद्ध कुलवाले धनाढ्य हैं तिनके गृहमें सो योगभ्रष्ट उत्पन्न होवे है।

ता जन्ममें अनेक प्रकारके भोगोंकूं भोगकरि वैराग्यकूं प्राप्त हुआ ॐकारके ध्यानमें वा श्रवणादिकोंमें प्रवृत्त होइकरि ज्ञान द्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवे है। और ॐकारके ध्याता पुरुषकी जबी या लोकके वा परलोकके भोगोंमें कामना तौ है नहीं। कोई प्रारब्ध-कर्मरूप भावी प्रतिबंध है तौ ता ध्याता पुरुषका द्वितीय जन्म योगी तथा ज्ञानी पुरुषोंके कुलमें होवे है। ता द्वितीय जन्ममें अभ्यास वैराग्यादि साधनोंकूं संपादन करता हुआ ज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवे है ऐसी योगभ्रष्टकी व्यवस्था भगवद्गीताके अनुसार हमने लिखी है। और मांडूक्यउपनिषत्का तात्पर्यरूप वृद्ध श्रीगौडपादाचार्योंकी ये कारिका हैं। तिन कारिकाओंके च्यारि प्रकरण हैं। तिन च्यारि प्रकरणोंका भाष्य भगवत्पूज्यपाद श्रीशंकर स्वामीने विस्तारसे करा है। च्यारि प्रकरणोंके नाम यह हैं। प्रथमका नाम ॐकारप्रकरण है। द्वितीयका नाम वैतथ्यप्रकरण है। तृतीयका नाम अद्वैत प्रकरण है। चतुर्थका नाम अलातशांतिप्रकरण है। प्रथम ॐकारप्रकरणमें मूल मांडूक्य उपनिषत्की व्याख्या है। तिस मूल मांडूक्य उपनिषत्का अर्थ तौ हमने कह दिया। उपनिषत्का तात्पर्यरूप जे आगेके तीन प्रकरण हैं तिनमें भी केवल सिद्धांतका ही निरूपण है। परंतु ग्रंथविस्तारके भयसे हम तिन सर्वकी भाषा नहीं करे हैं। और अत्यंत संक्षेपसे तिनका भाव अर्थ कहे हैं। द्वितीय वैतथ्यप्रक-रणका संक्षिप्त अर्थ यह है। प्रथम ॐकारप्रकरणमें अद्वैतका श्रुतिके बलसे निरूपण करा है। या द्वितीय प्रकरणमें युक्तिके बलसे प्रपंचमें मिथ्यात्व निरूपण करा है। यह संपूर्ण प्रपंच मिथ्या प्रतीत होवे है। जैसे स्वप्नमें मिथ्या ही पदार्थ सत्यरूपसे प्रतीत होवे हैं। जाग्रत्कालमें तिन सर्वका बाध होइ जावे है।

तैसे यह जगत् अज्ञानकालमें सत्यरूपसे प्रतीत होवे है। ब्रह्मज्ञानरूप जागरण करि या सर्व प्रपंचका बाध होवे है। अब स्वप्न अवस्थामें सर्व पदार्थ जे प्रतीत होवे हैं तिनमें मिथ्यात्व प्रतिपादन करे हैं। काहेतें विना दृष्टांतसे दार्ष्टांतिक सिद्ध होवे नहीं यातें प्रथम दृष्टांतरूप स्वप्नके जगतकूं ही मिथ्या कह्या चाहिये। शंका। स्वप्नके पदार्थ मिथ्या नहीं हैं किंतु सत्य हैं यातें स्वप्नकूं दृष्टांत धरकारि जाग्रत्के पदार्थकूं मिथ्या कैसे कहो हो। समाधान। स्वप्नके पदार्थ अंतर प्रतीत होवे हैं यातें मिथ्या हैं। शंका। अंतर तौ गृहमें घटादिक भी प्रतीत होवे हैं और प्रतीतिमात्र नहीं हैं। यदि शरीरके अंतर प्रतीत होनेसे मिथ्या कहो तौ सुखादि शरीरके अंतर अंतःकरणमें स्थित हैं और मिथ्या नहीं हैं यातें अंतर प्रतीत होनेसे स्वप्न पदार्थोंकूं मिथ्या कहना बने नहीं। उत्तर। स्वप्नके पदार्थ मिथ्या ही हैं। शरीरके अंतर जो अतिसूक्ष्म नाडी देश है तामें पर्वत नदियां समुद्रादि प्रतीत होवे हैं जबी देहमें भी पर्वतादिक नहीं रहि सकते तब अति सूक्ष्म नाडीमें कैसे रहेंगे और प्रतीत होवे हैं ! यह ही तिनमें मिथ्यारूपता है जो युक्तिकूं न सहना और प्रतीत होना। शंका। स्वप्नके पदार्थ नाडीदेशमें अनिर्वचनीय उत्पन्न नहीं होवे हैं किंतु शयनकर्त्ता पुरुष पूर्वदिशामें शयन करता हुआ पश्चिमदेशमें जाइकारि बाह्य पदार्थोंकूं देखे है यातें स्वप्नके पदार्थ मिथ्या नहीं हैं। समाधान। हे वादिन्! यदि बाह्य देशमें जीवका गमन माने तौ हरिद्वारमें शयनकर्त्ता पुरुष रामनाथकूं स्वप्नमें देखे है। एक मुहूर्त्तमात्रमें प्राप्त भया जो स्वप्नदर्शन तामें मासोंकारि प्राप्त होने योग्य रामनाथका अनुभव करना विरुद्ध है। दीर्घकालके अभावसे स्वप्नमें रामनाथका दर्शन गमन करि होवे नहीं। किंतु अंतर

अनिर्वचनीय उत्पन्न भये रामनाथकूं अनुभव करे है। और यदि गमन करि ही स्वप्नमें रामनाथका दर्शन माने तौ जाग्रतकूं प्राप्त भया पुरुष रामनाथमें ही रहेगा। ता रामनाथसे चलकरि दो घटिकामें हरिद्वारकी प्राप्ति होनी कठिन है। और यदि स्वप्नमें प्रतीत भये पदार्थोंकूं सत्य अंगीकार करे तौ भद्रसेन नामवाले किसी पुरुषने स्वप्नमें चित्रसेननामक पुरुषके साथ मिलकरि अनेक तीर्थोंकी यात्रा करी। जबी भद्रसेनका स्वप्न निवृत्त भया और जाग्रत्में चित्रसेन मिला तौ चित्रसेनने भद्रसेनकूं कह्या चाहिये जो हे भद्रसेन! तुमने हमारे साथ मिलकरि आज रात्रिमें अनेक तीर्थोंकी यात्रा करी। चित्रसेन तौ भद्रसेनकूं जाग्रत्में देखे नहीं वार्त्ता आलाप तौ क्या करना था। यातें भद्रसेनने अनिर्वचनीय उत्पन्न करा जो चित्रसेन तासे मिलकरि अनिर्वचनीय ही यात्रा करी है। अनिर्वचनीय ताकूं कहे हैं जो सद्रूपसे तथा असद्रूपसे कह्या न जावे और प्रतीत होवे। ऐसे स्वप्नके पदार्थ हैं। स्वप्नके पदार्थ यदि सत्य होवें तौ जाग्रत्कालमें रहे चाहिये। यदि तुच्छरूप असत् होवें तौ वंध्यापुत्रकी न्यांई कदाचित् प्रतीत न होने चाहिये। स्वप्नमें प्रतीत होवे हैं यातें ही स्वप्न-पदार्थ अनिर्वचनीय हैं और स्वप्नअवस्थामें सत्य पदार्थोंका अभाव श्रुति कहे है। ऐसे ही स्वप्नके तुल्य ही जाग्रत्के पदार्थ हैं ब्रह्मज्ञानरूप जागरण करि सत्यरूपसे प्रतीत होवे नहीं। और अज्ञानरूप स्वप्नअवस्थामें सत्यरूपसे प्रतीत होवे है यातें अनिर्वचनीय हैं। और जैसे स्वप्नअवस्थासे प्रथम स्वप्नके पदार्थ प्रतीत होवे नहीं तथा स्वप्नअवस्थाके निवृत्त भये जाग्रत्में वा सुषुप्तिमें रहें नहीं, केवल स्वप्नमें ही प्रतीत होवे हैं। तैसे भ्रांति विना यह जाग्रत्के पदार्थ भी प्रतीत होवे नहीं, केवल

भ्रांतिकालमें ही प्रतीत होवे हैं यातें मिथ्या हैं या अर्थकूं ही या कारिकासे कहे हैं। "आदावंते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा। वितथैः सदृशाः संतोऽवितथा इव लक्षिताः ॥ २ ॥" अर्थ यह जो वस्तु आदिमें नहीं है जो वस्तु अन्तमें नहीं है सो वस्तु वर्तमानमें कहिये मध्यमें भी नहीं है। वितथ नाम मिथ्याभूत मृगतृष्णा आदिक पदार्थोंके सदृश न हुए भी मूढोंने तौ अवितथ नाम सत्यरूपसे ही लिखे हैं कहिये जाने हैं ॥ २ ॥ और जैसे रज्जु यथार्थरूपसे न जानी हुई सर्पदंडजलधारादि अनेक रूपसे प्रतीत होवे है। जबी रज्जुका यथार्थ बोध होइ जावे तब सर्पादि निवृत्त होइ जावे हैं। तैसे अपने परमार्थरूपकरि न जाना हुआ आत्मा अनेक स्थावर जंगमरूपसे प्रतीत होवे है। आत्माके यथार्थ रूपके जाननेसे सर्व द्वैतभ्रम निवृत्त होइ जावे है। इंद्रजालकी मायारचित पदार्थ तथा गंधर्वनगर मिथ्यारूप हुए भी अज्ञानकरि सत्यरूपसे प्रतीत होवे हैं और बुद्धिमान् तिनकूं मिथ्यारूप ही जाने हैं और तैसे अविवेकी मूढोंकूं यह प्रपंच दृष्ट विनष्टस्वभाव हुआ भी सत्यरूपसे प्रतीत होवे है। परंतु विवेकी तौ जैसा प्रपंचका दृष्टविनष्टस्वभाव तथा स्वतःसत्ताशून्य स्वभाव है ताकूं जाने है। सर्व लौकिक वैदिक व्यवहार आरोपमें ही है वास्तवसे तौ यह सिद्धांत है। न प्रलय है न उत्पत्ति है न संसारी जीव है न मोक्षके साधनवाला है न कोई साधनसंपन्न मुमुक्षु है न कोई मुक्त है। यह तौ परमार्थ निरूपण करा यातें भिन्न प्राण काल आकाश परमाणु प्रधानादिकोंकूं नित्य मानना यह महान् भयका उत्पन्न करनेहारा है। जे महात्मा प्रपंचकूं अनेक श्रुति युक्ति करि मिथ्या जानते हुए अद्वैत ब्रह्मकूं जाने हैं। तथा राग द्वेष भयादिकोंसे शून्य हुए हैं ते महात्मा सदा ब्रह्ममें वर्ते हैं।

ऐसे मुमुक्षु पुरुष भी अद्वैत ब्रह्ममें सजातीय प्रत्यय करता हुआ तथा संसारमें जडकी न्याई विचरता हुआ किसी पुरुषकी स्वव्यवहारवासते स्तुतिकूं करे नहीं । तथा स्वशरीरादिकोंके रक्षावासते किसीके आगे नमस्कारकूं करे नहीं । स्वभावसे ही जे कौपीन आच्छादनादिक प्राप्त होवें तिनसे शरीरकी रक्षा करे । अन्तर बाह्य आत्माकूं ही देखे । आत्मरूप हुआ कदाचित् आत्मासे चलायमान होवे नहीं,सदा ही आत्मपरायण रहे । इति संक्षिप्तवैतथ्यप्रकरणार्थबोधनम् । जैसे द्वैतप्रपंचकूं युक्तियोंसे मिथ्या निरूपण करा तैसे ब्रह्म अद्वैत है यामें युक्ति निरूपण करे हैं । शंका । तुमारा अद्वैत नहीं बनता काहेतें देवदत्त उत्पन्न भया है यज्ञदत्त नष्ट भया है या प्रतीतिसे उत्पत्ति नाशवाले भिन्न भिन्न आत्मा मानने चाहिये । जबी भिन्नभिन्न माने तब अद्वैत कथन मनोराज्यमात्र है । अद्वैत है नहीं । समाधान । जैसे घटादि उपाधियोंकी उत्पत्तिसे घटाकाशादिकोंकी उत्पत्तिव्यवहार होवे है तथा घटादिकोंके नाश होनेसे घटाकाशादिकोंमें नाश व्यवहार होवे है तैसे शरीरोंकी उत्पत्तिसे आत्मामें उत्पत्तिव्यवहार तथा शरीरादिकोंके नाश होनेसे आत्मामें नाशव्यवहार होवे है । वास्तवसे उपाधिदृष्टि विना आत्मामें घटाकाशकी न्याई उत्पत्ति आदि है नहीं । शंका । उत्पत्ति तथा प्रलयश्रुतिसे विरोध नहीं है यह तुमने सत्य कहा, परंतु एक आत्मा माने चैत्रपुरुषके सुखदुःखादि मैत्रकूं हुए चाहिये । मैत्रके सुखादि विष्णुदत्त नामक पुरुषकूं हुए चाहिये होवें तौ नहीं । या संसारकी प्राप्तिसे अद्वैत बने नहीं । समाधान । आत्माके सुखादि धर्म नहीं किन्तु साभास अन्तःकरणके धर्म हैं । आत्मामें तौ तिनकी भ्रांति है । अन्तःकरणकूं भिन्न भिन्न होनेसे परस्पर

सुख दुःखका संकर होवे नहीं। जैसे एक घटाकाशमें धूमका वा धूलिका आरोपित संबंध हुए भी द्वितीय तृतीयादि घटाकाश धूमधूलीसे रहित ही होवे हैं तैसे एक आत्मामें भ्रांतिसिद्धि सुखादि प्रतीत हुए भी शरीरभेदकरि भिन्न जे द्वितीयादि आत्मा हैं तिनमें सुखादि प्रतीत होवें नहीं। जैसे एक आकाशमें घटाकाश मठाकाशादिकोंकी अल्पता वृद्धता भिन्न भिन्न उपाधिकरि प्रतीत होवे हैं और जलआनयन शयनादि कार्य तथा घटाकाश मठाकाश यह नाम भी उपाधिकरि भिन्न भिन्न प्रतीत होवे हैं। तैसे एक ही आत्मा उपाधिकरि देवमनुष्यादिरूपसे भिन्न स्वरूपवाला भिन्न कार्यवाला भिन्न नामवाला प्रतीत होवे है, वास्तवसे भेदका गंधमात्र नहीं। जिन शरीरोंकरि आत्मा भिन्न भिन्न प्रतीत होवे है ते शरीर स्वप्नकी न्याई कल्पित हैं तहां कारिका कहे हैं। "संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः। आधिक्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते ॥३॥" अर्थ यह। सर्वशरीर आत्माकी मायाकरि रचित हैं यातें स्वप्नके शरीरोंकी न्याईं मिथ्या हैं। अविवेकी दृष्टिसे देवादिकोंमें अधिकताके हुए वा विवेकी दृष्टिसे पांचभौतिकतारूपसे सर्वकी समताके हुए भी इन संघातोंकी सत्यताका साधक हेतु नहीं है ॥३॥ जैसे स्वप्नके शरीरोंमें जे देवतादिक श्रेष्ठ प्रतीत होवे हैं मनुष्यादि मध्यम तथा सर्पादि अधम प्रतीत होवे हैं। परंतु ते सर्व ही जागरित अवस्थामें रहें नहीं। तैसे अधिक न्यून सर्वशरीर अविद्यादशामें प्रतीत होवे हैं। ब्रह्मज्ञानरूप जागरण करि तिनका बाध होइ जावे है। जीवोंकी एकतामें ही वेदका तात्पर्य है और भेदके द्रष्टाकूं पशुरूपसे वेदने निंदन करा है तथा भेद द्रष्टाकूं वारंवार जन्ममरणरूप अनर्थकी प्राप्ति वेद वर्णन करे है। यदि अद्वैतमें वेदका तात्पर्य न होता

तौ भेदद्रष्टाकूं पशुवत् कथन और अनर्थप्राप्ति किस वासते वेद कथन करता। यातें अद्वैतमें ही वेदका तात्पर्य है। शंका। यदि सर्वथा अद्वैत है तौ श्रुतिमें प्रपंचकी उत्पत्ति ब्रह्मसे कैसे निरूपण करी है। उत्पत्तिवाला प्रपंच तौ ब्रह्मसे भिन्न ही अंगीकार करना होगा। जीव भिन्न माना तब अद्वैत कैसे। समाधान। प्रपंचकी उत्पत्तिमें वेदका तात्पर्य नहीं है यातें किंचत् भी विरोध नहीं और यावत्कालपर्यंत कार्य स्थित है तावत्कालपर्यंत अपने उपादानसे भिन्न नहीं। जैसे मृत्तिकासे उत्पन्न हुआ घट तथा अग्निसे उत्पन्न भया विस्फुलिंग अपने कारण मृत्तिका तथा अग्निसे भिन्न नहीं। तैसे अद्वैतसे उत्पन्न भया जगत् तासे भिन्न नहीं ऐसे अद्वैतब्रह्मके ज्ञानकी उत्पत्ति वासते ही जगत्की उत्पत्ति आदिकोंका कथन है। कोई जगत्की उत्पत्ति आदिकोंमें वेदका तात्पर्य नहीं। और उपासनाकांड तथा कर्मकांडके साथ भी अद्वैतके विरोधकी शंका बने नहीं। मंद मध्यम उत्तम भेदसे मुमुक्षु तीन प्रकारके हैं। मंदोंके अंतःकरणकी पापनिवृत्तिपूर्वक जो शुद्धि ता शुद्धिवासते कर्मोंका उपदेश वेदने करा है। मध्यम पुरुषोंके अंतःकरणमें मल तौ है नहीं, परंतु एकाग्रता तौ उपासना विना होवे नहीं। यातें मध्यमोंके अंतःकरणकी एकाग्रता वासते उपासना वेदने कही है। और उत्तम अधिकारियोंके वासते तौ वेदांतश्रवण ही निरूपण करा है। ऐसे परंपरासे उपासनाकांड तथा कर्मकांड अद्वैतमें तात्पर्यवाले हैं। शुद्ध एकाग्रमनवाला ही वेदांतकूं श्रवण करि अद्वैत निष्टाकूं संपादन करे है। यातें चित्तके पापरूप दोषकी निवृत्ति वासते कथन करा जो कर्मकांड ताका चित्तशुद्धिद्वारा अद्वैत ब्रह्ममें तात्पर्य है। तथा उपासनाकांड भी चित्तकी एकाग्रताद्वारा अद्वैत ब्रह्ममें ही तात्पर्यवाला है ऐसे अद्वैतवादमें किंचित् विरोध नहीं।

प्रत्युत द्वैतवादी जे नैयायिक सांख्य आचार्य आदिक हैं ते आपसमें राग द्वेष करते हुए विवादकूं करे हैं यातें तिन भेदवादियोंके मत रागद्वेषकरि दूषित होनेसे अप्रमाण हैं। यह अद्वैतवाद तौ अपने अद्वैतकूं सिद्ध करे है। भेदबुद्धिके अभावसे रागद्वेषादि दोषसे रहित है और वेदमें कारण मायाका तथा कार्य हिरण्यगर्भादिकोंका अभाव प्रतिपादन करा है। यातें अद्वैत और कार्य कारणसे ता अद्वैतका बाध होवे नहीं। जीव चेतनकूं ब्रह्मरूपता वेदमें कही है यातें जीवकरि भी अद्वैतका बाध होवे नहीं। जे अविवेकी या घटादि प्रपंचकरि अद्वैतका बाध कहे हैं ते अतिमूढ हैं। काहेतें जा प्रपंचकरि द्वैतादि कहे हैं सो प्रपंच तौ मनोमात्र है। जाग्रत् स्वप्नमें मन रहे है प्रपंच भी प्रतीत होवे है। सुषुप्तिमें तथा निर्विकल्प समाधिमें मन रहे नहीं और प्रपंच भी रहे नहीं ऐसे अन्वयव्यतिरेकसे प्रपंच मनोमात्र है।अन्वय कहिये जिसके हुए जो होवे। जैसे मृत्तिका हुए घट होवे है।व्यतिरेक कहिये जिसके होनेसे जो न होवे। जैसे मृत्तिकाके न होते घट होवे नहीं। ऐसे मन जाग्रत् स्वप्नमें है प्रपंच भी प्रतीत होवे है। समाधि सुषुप्तिमें मन है नहीं प्रपंच भी प्रतीत होवे नहीं। ऐसे अन्वयव्यतिरेकसे प्रपंचकूं मनोमात्रता कही। जबी पुरुष निर्विकल्प समाधिकूं सर्वप्रतिबंधसे रहित होइकरि संपादन करे तबी मन निरोधकू प्राप्त होवे है। अभ्यास वैराग्यसे मनका निरोध होवे है। मनके जीतनेसे ही सर्वका जय है। मनरूपी शत्रु जबतक जीवता है तबतक शत्रु जीवे हैं। जैसे टिट्टिभनाम पक्षीने समुद्रसे अपने अंडे ग्रहण करे तैसे खेद माने बिना मनका निरोध होवे है। टिट्टिभकी कथा संक्षेपसे यह है—किसी कालमें कोई टिट्टिभनामक पक्षी समुद्रके तट उपरि अपने अंडे राखता भया। उसकी स्त्री टिट्टिभीने बहुत

वारण भी करा जो हमारे अंडे समुद्र अपनी लहरोंसे बहाय ले जावेगा।परंतु अभिमानकूं प्राप्त हुआ टिट्टिभ समुद्रकूं तुच्छ मानता भया । और गर्वकूं प्राप्त भया टिट्टिभ अपनी स्त्रीकूं यह कहता भया । अरी भामिनी ! तू किस वास्ते भयकूं प्राप्त होती है । यदि समुद्र हमारे अंडोंकूं ले जावेगा तो इस अभिमानी समुद्रकूं हम जल बिना शुष्क करेंगे । टिट्टिभी तौ यह ही कहती भई जो कहां यह समुद्र कहां हम तुच्छ पक्षी। परंतु पतिकी आज्ञा मानकरि अंडोंकूं ता तट उपरि रखकरि दोनों आहारवासते कहीं जाते भये। समुद्रने भी टिट्टिभी टिट्टिभके सर्व वाक्य श्रवण करे और हँसता हँसता अंडोंकूं उठाइ ले जाता भया और समुद्रने मनमें यह विचार करा जो स्थावर जंगम सर्व परमेश्वरकी विभूतियां हैं इस वासते किसी देशमें किसी कालमें किसी निमित्तसे किसीमें कैसी शक्ति होजाती है यह नहीं कह सकते । क्या जाने इस पक्षीके कितने मित्र सहायक हैं । यातें इस पक्षीके अंडे किसी देशमें धर देने चाहिये। ऐसे अंडोंकूं किसी देशमें धरिकारि पूर्वकी न्याई गर्जन करता हुआ स्थित भया । जबी टिट्टिभ अपनी भार्या सहित गृहमें आया तौ अंडोंकूं न देखकर रक्तनेत्र हुआ महान् क्रोधकूं प्राप्त भया । और समुद्रकूं शुष्क करनेका संकल्प करता भया । ऐसे पतिकूं देखकारि टिट्टिभी बहु सुंदर युक्त वचन कहती भयी । हे पते ! मैं तौ तुमकूं प्रथम भी वारण करा था परंतु तुमने मेरा कह्या न माना इसीसे मेरे अंडे दूर भये । अब भी तुम समझो जो इस महान् समुद्रसे वैरका त्याग करो। मैत्री और वैर तुल्योंसे करना चाहिये । तुम छोटेसे पक्षी ऐसे बडे समुद्रसे वैर करने योग्य नहीं हो । जिस शरीरसे तुम कुछ करा चाहते हो सो शरीर बहुत छोटा निर्बल है । और कालका भी बल तुमारे विषे नहीं

है। काल भी बडे देवादिदेहोंमें ही कार्य करनेहारा है। तुमारे अल्प शरीरमें कुछ करेगा नहीं। और तुमारा मित्र भी सहायता करनेहारा कोई दीखता नहीं। धनसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं सो धनबल भी तुमारेमें मैं देखती नहीं। जन्मसे पक्षीमें जातिबल भी नहीं। और लक्ष योजन विस्तारवाला समुद्र तथा प्रलय-कालमें त्रिलोकीकूं लय करनेवाला तथा अनेक देवता मुनिज-नोंकी सहायतवाला कैसे शुष्क होवेगा। इंद्रसे भयभीत हुए मैनाक आदिक पर्वतोंकी इस समुद्रने रक्षा करी है ऐसे समुद्रसे वैर करना व्यर्थ है। यातें तुमारी मूढतासे मैंने अपने अंडे गँवाय दिये। अब किसवास्ते तुम शांत नहीं होते। ऐसे अनेक प्रकारके टिट्टिभीके वचनोंकूं श्रवण करि क्रोधसे संरक्तनेत्र हुआ टिट्टिभ अपनी स्त्रीकूं यह कहता भया। अरी मूढ! तू मेरे समीपसे अबी चली जा। संपत्कालमें अनंत कोटि मित्र हो जाते हैं। आपत्कालमें जो मित्र रहे सो मित्र कहलाता है। जो विपत्तिमें त्याग करता है सो शत्रु है मित्र नहीं। पुण्य पापमें तथा सुखदुःखमें साथ होवे सोई मित्र है। क्लेशके प्राप्त होनेसे जो पुरुष अभिमानपूर्वक बहुत वचन कहने लग जाता है सो शत्रु है मित्र नहीं। जो अपना कल्याण चाहता है सो प्रथम मित्रकी न्याईं प्रतीत होनेहारे शत्रुका नाश करे पश्चात् दूसरे शत्रुकूं मारे। यातें प्रथम तू मित्ररूप भी थी परंतु अब विपत्तिकालमें शत्रुरूप भयी है। तू स्त्री है इसवासते तेरा वध मैं नहीं करता। तू चली जा। मैं एकला ही समुद्रकूं शुष्क करता हूं। ऐसे वचन सुनकरि पतिव्रता टिट्टिभीने पतिका दृढ निश्चय देखा। पतिसे क्षमा कराइके अनुसार हो जाती भयी। अनेक बार ये दोनों अपनी चंचुसे तथा पक्षोंसे जलकूं बाहिर गेरने लगे और अनेक पक्षी इनको

वारण करते भये। जबी दोनों वारण नहीं भये तबी सर्व पक्षी मिल करि समुद्रके शोषण करनेवासते उद्यम करते भये। तबी तीन लोकोंमें विचरनेहारा नारद तहां प्राप्त भया। नारदने बहुत वारण भी करा। जब पक्षी दुःखी होते भी निवृत्त न भये तब नारदमुनि गरुडके आनेका उपाय कहते भये। जबी गरुड आया ताकूं देख-करि समुद्र भयभीत हुआ टिट्टिभके अंडोंकूं दे देता भया। ऐसे जो पुरुष खेदरहित होइकरि मनके जयवासते निश्चय करता है उसकी गरुडकी न्याईं देवता भी सहाय करते हैं। मनके निरोधमें उपाय वैराग्य तथा अभ्यास है। जो पुरुष दुःखरूप संसारकूं जानकरि त्याग करता है। तिस पुरुषका मन संसारमें गमन करे नहीं और आत्माकार वारंवार वृत्ति करनेसे संकल्प विकल्पकूं त्यागकरि निरुद्ध हुआ मन स्थित होवे है। मनके निरोध होनेसे प्रपंचरूप त्रिपुटिका भान होवे नहीं। केवल शुद्ध स्वप्रकाश ब्रह्म-भूमा ही ता समाधिमें प्रतीत होवे है। ता निर्विकल्प समाधिसे मनका निरोध होवे है। ता मनके निरोध होनेसे सर्व भयकी निवृत्ति होवे है। इति अद्वैतप्रकरणसंक्षिप्तार्थबोधनम्। चतुर्थ अलातशांतिनाम प्रकरणके अर्थकूं किंचित् दिखावे हैं। प्रथम ॐकारप्रकरणमें तो ॐकाररूपकरि श्रुतिप्रमाणसे अद्वैत निरूपण करा। द्वितीय प्रकरणमें अद्वैतविरोधी द्वैतकूं स्वप्नादि दृष्टांतोंकरि मिथ्यारूपता वर्णन करी। तृतीय प्रकरणमें अद्वैत ब्रह्मकूं युक्तियोंसे वर्णन करा। चतुर्थ प्रकरणमें भेदवादी जैसे आपसमें विवाद करते हैं ता विवादकूं दिखाइकरि अर्थसे सिद्ध जो अद्वैत है ता अद्वैतकूं निरूपण करे है। यह अद्वैतवाद मुमुक्षुजनोंके मोक्षके करनेहारा है और विवादसे रहित है। और मतोंमें तो विवाद है ताकूं किंचित् दिखावें हैं। नैयायिक सांख्याचार्यकूं कहे हैं हे सांख्याचार्य! तुम

सत्कार्यकी उत्पत्ति मानते हो तथा कार्यकूं कारणसे अभिन्न मानते हो सो असंगत है । काहेतें उत्पत्तिसे प्रथम कार्यकूं सत्य माने तौ ता सत्यकी उत्पत्ति कैसे होवेगी यामें कारण कुलालदंडादिकोंकी निष्फलतारूप दोष है । तथा कार्यकूं कारणसे अभिन्न माने तौ घटका कार्य जलआनयनादि मृत्तिकासे भी हुआ चाहिये । तथा तुम जगत्का कारण प्रधानकूं मानते हो । जबी प्रपंचरूप कार्यकूं प्रधानरूप कारणसे अभिन्न माना तौ प्रधानकी उत्पत्ति भयी यह व्यवहार हुआ चाहिये । प्रधानकूं नित्य मानते हो ताकी उत्पत्ति कहनी विरुद्ध है । अब सांख्याचार्य नैयायिककूं कहे हैं । अरे नैयायिक ! तुम अपने मतमें दूषण नहीं देखता । अपनेमें दूषण न देखना तथा दूसरेके दूषणोंकूं देखना यह ही तेरेमें मूढोंके लक्षण हैं । अब तूं अपने मतमें दूषणकूं श्रवण कर । कारणमें उत्पत्तिसे प्रथम तेरे मतमें कार्य असत् है । ता असत्की कारणसे उत्पत्ति माने तौ वंध्यापुत्रकी भी ता कारणसे उत्पत्ति हुई चाहिये । उत्पत्तिसे प्रथम असत् जैसे प्रपंचरूप कार्य है तैसे असत् वंध्यापुत्र है । असत् प्रपंचकी उत्पत्ति होवे है वंध्यापुत्रकी नहीं होवे है यामें नियामकके न मिलनेसे तेरा मत दुष्ट है । तथा वालुसे तैलकी तन्तुवोंसे घटकी कपालोंसे पटकी उत्पत्ति हुई चाहिये तथा अनेक परमाणुवोंकूं कारण मानना अतिगौरवग्रस्त है । तथा आत्मा जो अपना स्वरूप है ताकूं ज्ञानभिन्न जड जाननेसे तूं भी जड है । जड होनेसे ही तेरेकूं अपने मतमें दूषण नहीं भान होते । चेतन होता तौ जानता । ऐसे आपसमें विवाद करते हुए यह सूचन करे हैं । किंचित् कार्य उत्पन्न भया नहीं । तिन वादियोंने सूचन करि जो अनुत्पत्ति सोई अजातवाद है । इस प्रकार ता अजातवादकूं हम

अंगीकार करे हैं। और जैसे ते वादी द्वेषपूर्वक आपसमें विवाद करे हैं तैसे हम विवादकूं करे नहीं। यातें किंचित कार्य उत्पन्न भया नहीं इसीसे अद्वैत ब्रह्म है। जो वास्तव प्रपंचकी उत्पत्तिमाने ताकूं हम पूछे हैं। जो कारणसे अभिन्न कार्य उत्पन्न होवे है। वा भिन्न उत्पन्न होवे है। वा कारणसे अभिन्न और भिन्न उभयरूप उत्पन्न होवे है। तथा कार्य सद्रूप उत्पन्न होवे है। वा असद्रूप उत्पन्न होवे है। वा सत असत् उभयस्वरूपसे उत्पन्न होवे है। ऐसे पट् विकल्प करि एक एकका खंडन करे हैं। कारणसे अभिन्न कार्य उत्पन्न होवे है यह प्रथम विकल्प बने नहीं। काहेतें जैसे घटसे अभिन्न मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति मानते हो तैसे मृत्तिकासे अभिन्न मृत्तिकाकी तथा घटसे अभिन्न घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये। और होवे तौ नहीं यातें घटकी अभिन्नरूप मृत्तिकासे उत्पत्ति कथन असंगत है। तथा कारणसे भिन्न कार्य उत्पन्न होवे है यह द्वितीय विकल्प बने नहीं। काहेतें घटसे भिन्न मृत्तिकासे जैसे घट उत्पन्न होवे है। तैसे घटसे भिन्न पट भी है ता पटसे भी घट उत्पन्न हुआ चाहिये। यदि वादी कहे केवल भिन्नमात्रसे कार्यकी उत्पत्ति नहीं माने हैं। किंतु कारणतायोग्य जो भिन्न कारण तासे कार्य उत्पन्न होवे है ऐसे मानते हैं। पट घटसे भिन्न तौ है, परंतु कारणताके योग्य नहीं यातें पटसे घट नहीं उत्पन्न होवे है। और मृत्तिका तौ घटकी कारणताके योग्य है यातें मृत्तिकासे घट उत्पन्न होवे है यामें दोष नहीं। ऐसे जबी वादीने कहा तब सिद्धांती ऐसे कहे हैं। हे वादिन्! जबी मृत्तिकासे घट उत्पन्न होवे है ऐसे सिद्ध होइ जावे तब तौ ऐसा कह्या जावे जो घटकी कारणताके योग्य मृत्तिका है पट नहीं। जैसे देवदत्तके पुत्र हुए विना देवदत्तकूं पिता कहना असंगत है। तैसे मृत्तिकासे घट उत्पत्तिका तौ हम विचार ही करते हैं। घट

उत्पत्ति हुए विना मृत्तिकाकूं घटके उत्पन्न करनेके योग्य मानना असंगत है। ऐसे दोनों विकल्पोंकूं निराकरण करिके अब तृतीय विकल्पका खंडन करे हैं। अभिन्न भी घट मृत्तिकासे है तथा भिन्न भी है। ऐसे अभिन्न भिन्नरूप घटकी उत्पत्ति होवे है यह तीसरा विकल्प भी बने नहीं। काहेतें एककालमें अभिन्न भिन्न उभयरूप कहना तमप्रकाशकी न्याईं विरुद्ध है। भिन्न पक्षका दोष तथा अभिन्न पक्षका दोष उभय पक्षके माननेसे प्राप्त होवे हैं ते दोष ऐसे पूर्व कह आये हैं। यदि घट अभिन्न उत्पन्न होवे तौ मृत्तिकासे मृत्तिकाकी तथा घटसे घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये। मृत्तिकासे मृत्तिका अभिन्न है, घटसे घट अभिन्न है यातें मृत्तिकासे मृत्तिकाकी जैसे उत्पत्ति होवे नहीं तथा घटसे घटकी उत्पत्ति होवे नहीं तैसे मृत्तिकासे घट अभिन्न उत्पन्न होवे नहीं और भिन्न पक्षमें यह दोष कहा है जैसे भिन्न पटसे घटकी उत्पत्ति होवे नहीं तैसे भिन्न मृत्तिकासे घट उत्पन्न होवे नहीं। जैसे एक पुरुषकूं ज्वर रोग है द्वितीयकूं कफवृद्धि रोग है। जबी ते दोनों रोग तृतीय पुरुषमें होवें तब तृतीय पुरुष रोगी कैसे न कहावेगा। तैसे अभिन्न पक्षमें तथा भिन्न पक्षमें पृथक् पृथक् दोष कहे अभिन्न भिन्न रूप उभय पक्षमें ते दोष कैसे न होवेंगे। ऐसे तीन विकल्प तौ खंडन भये। सद्रूप कार्य उत्पन्न होवे है या चतुर्थ विकल्पका निराकरण करे हैं। यदि सत्कार्यकी उत्पत्ति माने तौ सद्रूप उत्पत्तिसे प्रथम मृत्तिका है ता मृत्तिकाकी उत्पत्ति कही जावेगी घटकी उत्पत्ति बने नहीं। असद्रूप कार्यकी उत्पत्ति होवे है यह पंचम विकल्प माने तौ असद्रूप वन्ध्यापुत्रकी उत्पत्ति हुई चाहिये। सत असत् उभय स्वरूप कार्य उत्पन्न होवे है यह षष्ठ विकल्प भी बने नहीं। काहेतें उभयस्वरूप तौ कहना विरुद्ध है। तथा उभयस्वरूप

माननेमें मृत्तिकाकी उत्पत्ति सत् माने दोष, वंध्यापुत्र उत्पत्ति असत् माने दोष या दोनूं दोषोंकी प्राप्ति होवे है। यातें किसी रीतिसे भी कार्य प्रपंच सिद्ध होवे नहीं। ऐसे चेतन अद्वैत ही वास्तव है ता अद्वैतसे भिन्न किंचित् भी नहीं। जैसे अलातसे ऋजुवक्रादि भिन्न कहे जावे नहीं। भिन्न हुए सर्वथा असत् हैं। तैसे चेतन अद्वैतसे भिन्न द्वैत सर्वथा असत् है केवल अद्वैत ही सर्वरूपकारि प्रतीत होवे है। विवेकी पुरुषकूं यह च्यारि पदार्थ जानने चाहिये हेय ज्ञेय आप्य और पाक्य। हेय कहिये अनात्मस्वरूप जानकारि त्याग करने योग्य। ऐसे तीन अवस्था तीन शरीर तीन प्रकारके ज्ञानरूप भोग तीन प्रकारके विश्व तैजस प्राज्ञरूप भोक्ता तथा तीन प्रकारके विषय तीन अवस्थामें होनेहारे हैं। यह सर्व त्रिपुटी त्याग करनेवास्ते ही जाननी चाहिये। जिससे जानकारि ही त्याग होवे है। यातें इन सर्वकूं अनात्मरूप जानकारि तिनका त्याग करना। अब द्वितीय ज्ञेयरूप पदार्थकूं कहे हैं। या भारतखंडमें दुर्लभ मानुष्य देहकूं प्राप्त होइकारि तथा मानुष्योंमें भी शूद्रादिकोंसे विना या अधिकारी देहकूं प्राप्त होइकारि तथा बुद्धिमें सामर्थ्यरूप जो धारणशक्ति है ता कारि अद्वैत तत्त्व ही मुमुक्षुकूं ज्ञेय है। ज्ञेयकूं निरूपण कारि तृतीय आप्य पदार्थकूं वर्णन करे हैं। आप्य कहिये प्राप्त होने योग्य। मुमुक्षु निष्कामकूं तो प्राप्त होने योग्य आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासन यह तीन हैं। स्त्री पुत्र धनादि मुमुक्षुकूं प्राप्त होने योग्य नहीं। अब चतुर्थ पाक्य पदार्थकूं कहे हैं। पाक्य कहिये पकाने योग्य अर्थ यह निवृत्त करने योग्य सो ऐसे मुमुक्षु जनोंकूं राग द्वेष मानापमान हर्ष शोकादि दोष हैं। पूर्व कह्या जो परमार्थ तत्त्व ब्रह्म है ताकूं अज्ञानी पुरुष जान सके नहीं ज्ञानी ही प्राप्त होवे हैं या अर्थकूं

कारिकासे कहे हैं ।"अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यंति सुनिश्चिताः । ते हि लोके महाज्ञानास्तच्च लोको न गाहते ॥ ४ ॥" अर्थ यह अजन्म तथा समरूप परमार्थतत्त्वविषे जे कोई यथार्थ निश्चयवाले होवेंगे ते पुरुष ही या संसारमें महाज्ञानी हैं । ता ज्ञानीके मार्गकूं सामान्य बुद्धिवाले लोक विषय कर सके नहीं ॥ ४ ॥ अब अंतमें अपने स्वरूपकूं नमस्कार करे हैं । जा आत्माकूं अविवेकी जाने नहीं ऐसा शुद्ध सच्चिदानंद पद तथा भेदरहित पद तथा निर्विशेष पद है ताकूं अपना स्वरूप जानकरि हम वारंवार नमस्कार करते हैं । इत्यलातशांतिनामकं चतुर्थप्रकरणम् ॥ ॐशांतिः शांतिः शांतिः । इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वामिअच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे मांडूक्योपनिषदर्थनिर्णयः ॥ ६ ॥

इति मांडूक्योपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ ६ ॥

ॐ

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐनमः श्रीशंकराय । अब यजुर्वेदकी तैत्तिरीय उपनिषत्का अर्थ दिखावे हैं । तित्तिरिनामवाले ऋषिने स्वशिष्योंकूं कही है याते या उपनिषत्का नाम तैत्तिरीय ऐसे कहे हैं । उपनिषत्के आरंभमें शांतिमंत्रके पठन करा है । ता शांतिमंत्रके अर्थकूं दिखावे हैं । प्राणवृत्तिका तथा दिनका अभिमानी जो मित्रनामा देवता है सो मित्रदेवता हमारेकूं कल्याण करे । तैसेही रात्रिका तथा अपान-वृत्तिका अभिमानी जो वरुण है सो वरुण हमारेकूं सुखके करने-वाला होवे । चक्षुमें तथा आदि मंडलमें स्थित अर्यमानामा देवता हमारेकूं सुख करे । तथा हस्तका अभिमानी इंद्रदेवता हमारेकूं कल्याण करे । वाणीमें तथा बुद्धिमें स्थित बृहस्पति देवता हमारे सुखकूं करे । पादोंका अभिमानी अधिक बलवान् जो विष्णु है सो विष्णुदेव हमारे कल्याणकूं करे । ऐसे अध्यात्मकरणोंके अभिमानी सर्व देवता हमारे कल्याणकूं करे । ब्रह्मविद्याका अर्थी मुमुक्षु समष्टिवायुरूप ब्रह्मकूं नमस्कार करे हैं । हे ब्रह्मन् ! तेरेताई मेरा नमस्कार है । हे वायो ! तेरे ताई मेरा नमस्कार है । हे वायो ! तुम ब्रह्मरूप हुए ही प्राणरूपसे चक्षुआदिकोंसे भी अव्यवहित हो । नेत्रादिक तो रूपादिकोंके ज्ञानद्वार अनुमेया है । नेत्रादिकोंसे यह प्राण भोक्ताके अत्यंत समीप है । यातें नेत्रादिकोंकी अपेक्षासे श्रुतिमें प्राणकूं प्रत्यक्षरूपता कही है । हे वायो ! प्रत्यक्ष ब्रह्मरूप तेरे ताई मेरा नमस्कार है । जैसे राजाके द्वारपालकूं राजाके दर्शनकी इच्छावाला पुरुष कहे है तुम ही राजा हो । तैसे हृदयमें साक्षीरूपसे स्थित जो ब्रह्म है ता ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु

प्राणकूं कहे हैं। तुमारे प्राणस्वरूपकूं ब्रह्मरूपसे मैं अधिकारी कथन करता हूँ। हे प्राण ! बुद्धिमें जा अर्थका निश्चय होवे है तथा वाक् कायकरिके जो अर्थ सिद्ध होवे है तिन सर्वरूपसे आप ही स्थित हो। सर्वरूपसे आपकूं कथन करनेहारा जो मैं अधिकारी हूं तिस मेरे ताईं विद्याकी प्राप्ति करो। तथा वक्ता जो आचार्य है ता वक्ताकूं वक्तृत्वशक्तिके दानसे रक्षा करो। तथा ब्रह्मविद्याके दानसे मुझ अधिकारीकी रक्षा करो। ऐसे ब्रह्मविद्यामें विघ्ननिवृत्तिवासते अधिकारी वारंवार देवताओंके ताईं नमस्कार करे। और आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक या तीन प्रकारके विद्याप्राप्तिमें जे विघ्न हैं तिन विघ्नोंकी निवृत्तिवासते तीन वार ॐ शांतिः शांतिः शांतिः। यह मंत्र अधिकारी पठन करे। स्वरके तथा अक्षरोंके तथा मात्राओंके इत्यादिकोंके उच्चारणमें पुरुषकूं प्रमाद न प्राप्त होवे; इस प्रयोजनवास्ते शिक्षा अध्याय वर्णन करा है। ता शिक्षाअध्यायमें अनेक प्रकारके कर्मादिकोंका विचार करा है। यातें मुमुक्षुकूं विशेष अनुपयोगी जानकरि ता शिक्षा अध्यायमेंसे किसी किसी स्पष्ट मंत्रका अर्थ दिखावे हैं। अधिकारी ॐकाररूप परमेश्वरके आगे प्रार्थना करे है। हे सर्व वेदोंमें श्रेष्ठ ॐकार ! आप सर्वरूप हो। प्रथम आप प्रजापतिके ताईं स्पष्ट प्रतीत भये हो। हे परमेश्वररूप ॐकार ! मुझ अधिकारीकूं ब्रह्मविद्याका दान करो। हे भगवन् ! आपकी कृपाकरि मैं बहुत अर्थके धारणशक्तिवाला होवों। मेरा शरीर ब्रह्मविद्याके योग्य होवे। मेरी जिह्वा मधुर भाषण करनेवाली होवे। और कर्णोंकरि मैं बहुत अर्थकूं श्रवण करूं। हे ॐकार ! तुम ब्रह्मके कोश हो। जैसे कोशमें खड्ग रहे है। ता खड्गकी प्रतीति कोशमें होवे है। तैसे ब्रह्मकी प्राप्ति ॐ कारके चिंतनसे होवे है। यातें ॐकारकूं ब्रह्मका

कोशरूपसे निरूपण करा । बाह्य घटादिकोंके ज्ञानसे तुम प्रतीत होते नहीं । अर्थ यह कि बाह्य वृत्तिवाले तुमकूं जाने नहीं । हे भगवन् ! जो आत्मज्ञान मैं श्रवण करता हूं तिनकी आप रक्षा करो । अर्थ यह कि मेरेकूं आत्मज्ञानकी विस्मृति न होवे । मुमुक्षुवोंके जपवासते यह मंत्र निरूपण करे हैं । वेदकूं जबी शिष्यने पठन करि लिया तब आचार्य शिष्यकूं उपदेश करे हैं । हे शिष्य ! सर्वकालमें सत्य संभाषण करना, मिथ्या संभाषण कबी नहीं करना । वेदका नित्य पाठ करो, ता वेदके विचारसे कबी प्रमाद मति करो । जैसे वामदेव ऋपिने लोकोंके उद्धारवासते अपना अनुभव वर्णन करा है । तैसे ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशंकु नामक ऋपिने भी लोकोंके ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिवासते अपने अनुभवका निरूपण करा है । वामदेवऋपिका अनुभव तो आगे कहेंगे । अब त्रिशंकु ऋपिका अनुभव कहे हैं । मैं संसाररूप वृक्षका अंतर्यामीरूप प्रेरक हूं । मेरी पर्वतके पृष्ठकी न्यांई कीर्ति उठी है । सर्वसे उपरि पवित्र ब्रह्महीं मेरा आत्मा है । और जैसे सूर्य उपाधिक ब्रह्म अमृतस्वरूप है । तैसे मैं अमृतरूप हूं । और मैं प्रकाशमान ही धनकी न्यांई अत्यंत प्रिय हूँ । और मैं शुद्ध आत्माकार बुद्धिकूं प्राप्त भया हूँ । तथा जरा मरणसे रहित हूं तथा संसारिक सर्व उपद्रवसे रहित हूं । ऐसा त्रिशंकुऋपिका अनुभव ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवासते वारंवार विचारना । वेदकूं आचार्यसे ग्रहण करि सर्व त्यागी होवे नहीं यातें ब्रह्मचर्यसे पश्चात् गृहस्थ आश्रमकूं धारण करनेकी इच्छावाला जो पुरुष है, ताकूं आचार्य अब कहे हैं । हे शिष्य ! जो वेदका उपदेष्टा आचार्य है ताकूं वेदपठन करिके प्रिय धनरूप दक्षिणाका दान करो । ता दक्षिणादानके पीछे अपने गृहस्थाश्रममें स्थित होइकरि

पुत्र उत्पत्तिवासते यत्न करो प्रजारूप तंतुका उच्छेद मति करौ और गृहस्थाश्रममें स्थित होइकारि नित्य वेदका पाठ करो सत्य संभापण करो धर्म करो अपनी रक्षा अर्थ अनेक प्रकारके कर्म करो और मंगल करनेहारे कर्मसे कदाचित् प्रमाद नहीं करना और संध्याकालमें भस्मके त्रिपुंड्रके लगानेसे कभी प्रमाद नहीं करना। वेदके पढने पढानेसे प्रमाद मति करो। देवता पित्रोंके वासते अग्निहोत्र श्राद्धादि कर्मोंकूं करो तिनसे प्रमाद मति करो। माता पिता आचार्य तथा अतिथि इन च्यारिकूं देवता जैसा मानो। संसारमें जे निंदित कर्म हैं तिनकूं कबी मति करो। सर्वकालमें शुभ कर्मकूं करो। जे हमारेसे श्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं तिनकी अनेक प्रकारसे सेवा करो। जो महात्मा कहें तिसकूं धारण करो और तिन महात्मावोंके साथ विवाद करनेसे महान् क्लेश प्राप्त होवे है। यातें तिन महात्मावोंसे कदाचित् विवाद मति करो। जो किंचित् भी किसीके ताई दान करो तौ श्रद्धाकारि दान करो। लज्जा करिके दान करो। भय करिके दान करो। मित्रादिकोंके कार्य कारि दान करो ऐसे अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले तुमकूं किसी कर्ममें यदि संशय उत्पन्न होइ जावे तो ता देशमें जे महात्मा कर्म करनेहारे हैं ते विचारयुक्त तथा कठोरतारहित तथा निष्काम स्वधर्मके अनुष्टान करनेहारे जैसे कर्मकूं करे हैं तिनकूं देखकारि तुम भी तैसे कर्म करो। तथा तिनसे पूछकारि संशयको निवृत्त करो। हे अधिकारिजनाः! यह उपदेश पुत्रादिकोंकूं वारंवार है और वेदका रहस्य भी यह ही है तथा ईश्वरकी यह ही आज्ञा है। अधिकारी पुरुष चित्तशुद्धिवासते अवश्य कर्म करे यह सर्व अध्यायका अर्थ है। अब द्वितीय अध्यायके आरंभमें ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिविषे जे विघ्न हैं तिनकी

निवृत्तिवासते और शांतिमंत्र है । ता शांतिमंत्रके अर्थकूं दिखावे हैं । सो परमात्मा हम गुरु शिष्य दोनोंकी ज्ञान प्रकाश करनेसे रक्षा करे । तथा हम दोनोंकी ज्ञानके फल प्रगट करनेसे रक्षा करे । हम गुरु शिष्यका पढना पढाना सर्व विघ्नोंके नाश करनेमें समर्थ होवे। प्रमादकरि पढने पढानेसे प्राप्त भया जो द्वेष सो द्वेष निवृत्त होवे । आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक या तीन प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्तिवासते ॐशांतिःशांतिःशांतिः यह मंत्र तीन वार पठन करना । तैत्तिरीय उपनिषत्की दो वल्ली हैं । एक तौ आनंदवल्ली है । द्वितीय भृगुवल्ली है । प्रथम आनंदवल्लीके अर्थकूं दिखावे हैं । आनंदवल्लीके प्रथम यह सूत्ररूप वचन कथन करा है । " ब्रह्मविदाप्नोति परम् " अर्थ यह ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मकूं प्राप्त होवे है । या सूत्रमें समग्र ब्रह्मविद्या स्थित है । जाके अल्प अक्षर होवें बहुत अर्थकूं सूचन करे ताकूं सूत्र कहे हैं । सर्व ग्रंथोंके च्यारि अनुबंध होवे हैं । वेदांतके च्यारि अनुबंधोंकूं भी सूचन करनेहारा यह सूत्र है । च्यारि अनुबंधोंकूं जैसे सूचन करे हैं तैसे जानवे हैं । 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' या सूत्रमें ब्रह्म कहनेसे प्रथम अज्ञात हुआ ब्रह्मात्मा विषय कह्या है । अज्ञात ही विषय होवे है । और या वाक्यके श्रवण करनेसे सामान्य रूपसे ब्रह्मका ज्ञान हुए भी विशेष आत्मरूप करि ब्रह्मज्ञानके न होनेसे सूत्रमें स्थित ब्रह्मपद विषयका बोधक है । आगे प्रयोजन दो प्रकारका होवे है । एक तौ गौण प्रयोजन है । दूसरा मुख्य प्रयोजन है । अंतःकरणकी वृत्तिरूप अहं ब्रह्मास्मि या प्रकारका यथार्थ निश्चय तौ गौण प्रयोजन है । अविद्यानिवृत्तिपूर्वक ब्रह्मप्राप्ति यह मुख्य प्रयोजन है । दोनों प्रकारके प्रयोजनकी कामनावाला अधिकारी है । संबंधरूप चतुर्थ अनुबंध यह है । जो ग्रंथका और अधिकारीका

बोधक बोध्य संबंध है। अधिकारी बोध्य है वेदांत बोधक है। ज्ञानका और वेदांतका जन्यजनकभाव संबंध है। ब्रह्मका और वेदांतशास्त्रका अभिव्यंजकभाव संबंध है। जैसे हरीतकी और आमलादिकोंके भक्षणसे पूर्व सिद्ध जलके मधुररसकी अभिव्यक्ति होवे है तैसे वेदांतशास्त्रके श्रवणसे पूर्वसिद्ध ब्रह्मकी प्रगटता होवे है। यातें ब्रह्म अभिव्यंग्य है। ता सिद्ध ब्रह्मकूं ही आमलादिकोंकी न्याईं वेदांतशास्त्र प्रगट करावे है यातें वेदांतशास्त्र अभिव्यंजक है। तथा वेदांतशास्त्र ज्ञानद्वारा अज्ञानका निवर्त्तक है अज्ञान निवर्त्य है। यातें वेदांतशास्त्रका और अज्ञानका निवर्त्तक निवर्त्यभाव संबंध है। इस तैत्तिरीय उपनिषत्‌की समाप्तिपर्यंत पूर्व उक्त सूत्रका ही अर्थ निरूपण करा है केवल अनुबंधकूं सूचन करिके ही सूत्र समाप्त नहीं भया। यातें सूत्रके अर्थकूं ही समग्र उपनिषत् वर्णन करे है। सूत्रमें स्थित जो प्रथम ब्रह्मपद है ता ब्रह्मपदका अर्थ परमात्मा है। अब ता ब्रह्मके लक्षणकूं कहे हैं। ब्रह्मका लक्षण दो प्रकारका है एक स्वरूप लक्षण है दूसरा तटस्थ लक्षण है। जो असाधारण धर्म अपने आश्रयका स्वरूपभूत होइकरि अपने आश्रयकूं इतरोंसे भिन्न करे, ताकूं स्वरूप लक्षण कहे हैं। जैसे पृथिवीमें रहनेहारा पृथिवीत्व धर्म पृथिवीका स्वरूपभूत हुआ पृथिवीरूप आश्रयकूं इतर जलादिकोंसे भिन्न करे है। यातें पृथिवीत्व पृथिवीका स्वरूप लक्षण है। यद्यपि नैयायिक पृथिवीत्वका और पृथिवीका भेद माने हैं यातें स्वरूपलक्षण कैसे वर्णन करा। तथापि वेदांतमतमें जातिव्यक्तिका तादात्म्य है। यातें पृथिवीत्वजातिकूं स्वरूपलक्षणता बने है। तैसे ब्रह्मके स्वरूपलक्षणकूं श्रुतिभगवती निरूपण करे है। 'सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म' अर्थ यह सत्यरूप ज्ञान-

रूप अनंतरूप ब्रह्म है। शास्त्रकी दृष्टिकूं अंगीकार करिके तौ या वाक्यमें तीन लक्षण हैं। लौकिकदृष्टिकूं अंगीकार करिके सत्य ज्ञान अनंत यह एक ही ब्रह्मका लक्षण है। या लक्षणसे असत् जड देश काल वस्तुकरि परिच्छिन्न वस्तुकी निवृत्ति होवे है। ऐसे सत्यचित् अनन्तस्वरूप ब्रह्मकूं जो बुद्धिरूपी गुहामें साक्षी-रूपसे स्थित जानता है। सो पुरुष ब्रह्मरूप हुआ एक कालमें सर्व कामनावोंकूं प्राप्त होवे है। अब ब्रह्मके द्वितीय तटस्थ लक्षणकूं निरूपण करे हैं। जो असाधारण धर्म अपने आश्रयसे भिन्न होवे और आप कदाचित् कहा हुआ अपने आश्रयसे भिन्नोंकी व्या-वृत्ति करे ताकूं तटस्थ लक्षण कहे हैं। जैसे न्यायमतकी रीतिसे गंध पृथिवीकी उत्पत्तिकालमें होवे नहीं, किंतु पृथिवीकी उत्प-त्तिसे पश्चात् उत्पन्न होवे है। और महाप्रलयकालमें पृथिवीमें गंध रहे नहीं और जलादिकोंसे पृथिवीकूं भिन्न करे है। यातें गंध पृथिवीका तटस्थ लक्षण कहावे है। तैसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय करना यह ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है। काहेतें प्रलय-कालमें तथा मोक्षकालमें जगत्की उत्पत्ति आदिक करना ब्रह्ममें है नहीं। और ब्रह्मसे भिन्न हुआ ब्रह्मकूं प्रधान पर-माणु आदिकोंसे भिन्न करे है। यातें जगत् उत्पत्ति आदि कारणता ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है। पूर्व मंत्रमें अनंत ब्रह्म कह्या था ता अनंत पदका अर्थ यह है जा वस्तुका किसी देशमें तथा किसी कालमें अभाव न होवे। और जा वस्तुसे भिन्न किंचित्मात्र न होवे किन्तु सर्वरूप ही होवे ताकूं अनंत कहे हैं। ब्रह्म सर्वव्या-पक है तथा नित्य है और सर्वरूप है। यातें अनंत है। ऐसे श्रुतिभगवती कहे है। आकाशादि सर्व जगत् ब्रह्मसे भिन्न प्रतीत होवे है यातें ब्रह्मकूं सर्वरूपता कहना असंगत है। या

प्रकारकी शंकाकी निवृत्ति वासते ही आकाशादिकोंकी ब्रह्मसे उत्पत्ति वर्णन करी है। जैसे घटादिक कार्य मृत्तिकासे उत्पन्न हुआ मृत्तिकासे भिन्न नहीं है तैसे ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ जगत् ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। या अर्थके बोधन अर्थ ही आकाशादिकोंकी उत्पत्ति ब्रह्मसे कथन करी है। ता उत्पत्तिके प्रकारकूं वर्णन करे हैं। सूत्रभागमें तथा 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' या मंत्रमें कथन करा जो ब्रह्म है ता ब्रह्मसे आकाश उत्पन्न भया। और शुद्धकूं यदि कारण माने तो मोक्ष अवस्थामें भी जगत् उत्पन्न हुआ चाहिये इत्यादि अनंत दोष हैं। यातें मायाविशिष्ट परमात्मासे जगत् उत्पन्न होवे है। ता मायाविशिष्ट परमात्मासे ही आकाश उत्पन्न भया। आकाशरूप उपाधिउपहित परमेश्वरसे वायु उत्पन्न भया। वायुउपहित परमेश्वरसे अग्नि उत्पन्न भया। अग्निउपहित परमेश्वरसे जल उत्पन्न भया। तथा जल उपहित परमात्मासे पृथिवी उत्पन्न भई। सो परमात्मा इन सूक्ष्म पंचभूतोंका पंचीकरण करता भया। पंचीकरणका प्रकार संक्षेपकरि प्रसंगसे कहे हैं। प्रथम पंचभूतोंके दो दो वृद्धि भाग करे। पंच वृद्ध भागोंकूं तो पृथक् राखा द्वितीय पंचभागोंके च्यारि च्यारि भाग करे और अपने अपने भागोंकूं त्यागकरि दूसरे भूतोंके भागोंमें मेलनेसे पंचीकरण होवे है। परंतु पृथिवी आदिक भूतोंके जे तामसभाग हैं तिनका पंचीकरण भया। और तिन भूतोंके मिले हुए राजस भागसे प्राणकी उत्पत्ति होवे है। और भिन्न भिन्न राजस भागोंसे तो पंच कर्मइंद्रियोंकी उत्पत्ति होवे है। आकाशके राजस भागसे वाक् इंद्रियकी उत्पत्ति होवे है। वायुके राजस भागसे हस्त तथा अग्निके राजस अंशसे पाद तथा जलोंके राजस अंशसे गुदा तथा पृथिवीके राजस अंशसे उपस्थ इंद्रिय उत्पन्न होवे है ऐसे अपं-

चीकृत भूतोंके राजस भागका कार्य निरूपण करा। सात्त्विक भागके कार्यकूं कहे हैं। भूतोंके मिले सात्त्विक भागसे अंतःकरण उत्पन्न भया। वृत्तिभेद्से अन्तःकरण च्यारि प्रकारका है। संकल्प विकल्परूप वृत्तिसे मन तथा निश्चयवृत्तिसे बुद्धि तथा स्मरण वृत्तिसे चित्त तथा अहंकारवृत्तिसे अहंकार कहावे है। भूतोंके पृथक् पृथक् सात्त्विक भागोंके कार्य कहे हैं। आकाशके सात्त्विक भागसे श्रोत्र, वायुके सात्त्विक भागसे त्वक्, अग्निके सात्त्विक भागसे चक्षु, जलोंके सात्त्विक भागसे रसना, पृथिवीके सात्त्विक भागसे घ्राणइंद्रिय उत्पन्न होवे है। ऐसे सूक्ष्म भूतोंके सात्त्विक भागोंसे तौ समष्टिव्यष्टिरूप सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति भयी। और सूक्ष्म भूतोंके तामस भागोंका पंचीकरण परमात्माने करा। पंचीकरणसे पंचभूत स्थूल होवे हैं। इन स्थूल भूतोंसे ब्रह्मांड उत्पन्न भया। ब्रह्मांडमें चतुर्दश भुवन उत्पन्न भये। और स्थूल पृथिवीसे फलपाकपर्यंत जे औषधियां हैं ते औषधियां उत्पन्न भयीं। तिन औषधियोंसे व्रीहि यवादि अन्न उत्पन्न भया। माता पिताने भक्षण करा जो अन्न है ता अन्नसे वीर्य उत्पन्न भया। ता वीर्यसे शिर हस्त पादादिकोंवाला शरीर उपन्न भया। ऐसे आकाशादि सर्व जगत् ब्रह्मात्मासे उत्पन्न होनेसे ता ब्रह्मात्मासे भिन्न नहीं। यातें ब्रह्म अनन्त हैं यह निरूपण करा। अब ता ब्रह्मके ज्ञानवासते पंच कोशोंकूं श्रुति भगवती मुमुक्षुजनोंपर कृपालु हुई कथन करे है। पूर्व निरूपण करा जो ब्रह्म है सो ब्रह्म ही साक्षीरूपसे स्थित है। ता अन्तरसाक्षीके बोधवासते प्रथम श्रुति अन्नमय कोशका निरूपण करे है। अन्नके भक्षणसे शुक्रशोणित द्वारा उत्पन्न भया जो पुरुषशरीर है यह शरीर ही अन्नमय कोश है। और या शरीरसे ही पुरुषकूं ब्रह्मज्ञान तथा धर्माधर्मका ज्ञान लोकपरलोकका

ज्ञान होवे है । पशु आदिक शरीरोंमें ब्रह्मज्ञान आदिक होवे नहीं। यातें पशु आदिक शरीरोंकूं त्यागकरि पुरुषशरीरकूं ही अन्नमयकोशरूपसे वर्णन करा है । इन पंचकोशोंकूं जो आत्मरूपताका कथन है सो शाखाके अग्र चंद्रमा है याकी न्याईं आत्मा साक्षीके बोधन वासते है । कोई अन्नमयादिक ही आत्मा है या निरूपणवासते नहीं । अब अन्नमयकोशकूं ध्यानवासते पक्षीरूपसे वर्णन करे हैं जैसे पक्षीके शिर वामपक्ष दक्षिणपक्ष उदर पुच्छ यह पंच अवयव होवे हैं। तैसे या अन्नमयकोशके पंच अवयव कल्पना करि कहे हैं। ते पंच अवयव यह हैं । अन्नमय कोशरूप पक्षीका यह प्रसिद्ध शिर ही शिर है। दक्षिणभुजा दक्षिण पक्ष है। वामभुजा उत्तर पक्ष है। यह प्रसिद्ध उदर ही उदर है । और नाभिके नीचे पादपर्यंत देश पुच्छ है। या पुच्छकूं स्थितिका आधार होनेसे ता पुच्छकूं ही प्रतिष्टा या नाम करिके कथन करा है । यद्यपि प्रसिद्ध पक्षी तौ अपनी पुच्छ उपरि स्थित होवे नहीं। तथापि वानर भल्लूक आदि जीवोंकी स्थिति पुच्छ उपरि भी होवे है। या स्थितिका आधार प्रतिष्टापदका अर्थ कह्या । ता अन्नमयकोशविषे यह मंत्र है। रस बीजरूपसे परिणामकूं प्राप्त भया जो अन्न है ता अन्नसे ही या पृथिवीमें स्थित जे प्रजा हैं ते सर्व प्रजा उत्पन्न होवे है। ता अन्नकरिके ही जीवनकूं प्राप्त होवे हैं। और पृथिवीरूप अन्नमें ही लयकूं प्राप्त होवे हैं। जो जीव जाकूं भक्षण करे है ता भक्षण करने योग्य पदार्थकूं ही अन्न कहे हैं। जलकरि वृक्षादिकोंका जीवन होवे है यातें तिनका जल ही अन्न है। सिंहादिक मांसकूं भक्षण करे हैं यातें तिनका मांस ही अन्न है । मनुष्य शाकादिकोंकूं भक्षण करे हैं तिन मनुष्योंका शाकादिरूप जीव ही भोजन है । यह अर्थ अन्य ग्रंथमें भी

लिखा है। 'जीवो जीवस्य भोजनम्' अर्थ यह जीव ही जीवका भोजन है। सर्व जीवोंके उत्पत्ति स्थिति लय अन्नमें ही होवे है इसीसे यह अन्न ज्येष्ठ है कहिये सर्व भूतोंका बडा है और सर्वरोगरूप क्षुधाका निवर्तक होनेसे सर्वौषध भी अन्नकूं कहे हैं। जे पुरुष अन्नकूं ही भूतोंके उत्पत्ति स्थिति लयका कारणरूप जानकरि उपासना करते हैं और सर्वभूतोंका ज्येष्ठ तथा सर्वौषधरूपसे अन्नकी उपासना करते हैं तथा अन्नकी ही ब्रह्मरूपसे उपासना करते हैं। ऐसे उपासक मनवांछित अन्नकी प्राप्तिरूप फलकूं प्राप्त होवे है। उपनिषत्के आदिमें तथा समाप्तिमें ब्रह्मका प्रतिपादन करा है। यातें अन्न आदिकोंका ब्रह्मरूपसे जो ध्यानका फल कथन करा सो अर्थवाद है। पूर्व पूर्व कोशमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्याग कराइके साक्षी आत्माके बोधनमें वेदका तात्पर्य है। और अन्नमय आदिक पंचकोशोंका पक्षीरूपसे जो वर्णन है सो भी केवल आत्माके बोधनमें प्रकार है। पक्षीरूपसे उपासनामें वेदका तात्पर्य नहीं। जैसे कन्याकूं अरुंधतीका दर्शन कराने वासते अनेक तारावोंकूं अरुंधतीरूप ताका कथन है। तैसे प्रत्यगात्माके बोधवासते अन्नमयादिकोंकूं आत्मरूपताका कथन है। अन्नमयादिकोंके आत्मरूपताके बोधनवासते वा अन्नमयादिकोंकी आत्मरूपसे उपासनाके वासते अन्नमयादिकोंकूं आत्मरूपताका कथन नहीं या अभिप्रायके बोधनवासते ही कोशोंकी परंपराकूं दिखावे हैं। पूर्व कहे अन्नमयकोशसे अंतर तथा भिन्न आत्मा प्राणमय है। जैसे वायुकरि मशक पूर्ण होवे है। तैसे अंतर प्राणमयकोशरूप आत्मा करिके यह अन्नमयकोश पूर्ण है। जैसे मूषाविषे प्राप्त जे द्रवीभूत ताम्रादि धातु हैं तिन ताम्रादिकोंकरिके मूषा पूर्ण होवे है। तैसे प्राणमयकरिके यह अन्नमय कोश पूर्ण है। और प्राणमयकोश पंच अवयववाला होनेसे अन्न-

मय कोशके सदृश है। जैसे पंच अवयववाला होनेसे अन्नमयके सदृश है तैसे निरूपण करे हैं। मुख नासिकाकरि चलनेहारा जो प्राण सो प्राण ही या प्राणमयकोशरूप पक्षीका शिर है। सर्व शरीरमें गमन करनेहारा व्यान दक्षिण पक्ष है। और नीचे गमन करनेहारा अपान वायु उत्तर पक्ष है। आकाश है देवता जाका ऐसा समान सर्व अंतर अन्न जलकूं सम करनेहारा उदर है। पृथिवी है देवता जाका ऐसा ऊर्ध्व गमन करनेहारा उदान पुच्छ है। और उदानवायुके शरीरसे बाह्य निकसनेसे सर्व बाह्य निकसे हैं। यातें सो उदान प्रतिष्ठा है। ता प्राणमय कोशमें मंत्रकूं कहे हैं प्राणरूप देव करिके ही सर्व देवता मनुष्य पशु आदिक चेष्टा करे हैं। प्राण ही सर्व जीवोंका आयुरूप है। यातें ही वेद भगवान् प्राणकूं सर्वायुष या नाम करिके कथन करे है। पूर्व अन्नमयकोशकी न्याईं या प्राणमयकोशके ब्रह्मरूपसे उपासना करनेसे श्रुति फल प्रतिपादन करे है। जे पुरुष प्राणमयकूं ब्रह्मरूपसे उपासना करते हैं ते पुरुष सर्व आयुकूं या लोकमें प्राप्ति होवे हैं तिनका अपमृत्यु कदाचित् होवे नहीं। प्राण ही सर्वभूतोंका आयु है यातें ही प्राणकूं आयुरूप श्रुतिमें कहा है। ऐसे प्राणकूं सर्वायुषरूपसे तथा ब्रह्मरूपसे उपासना करनेवालेकूं आयुप्राप्ति कही। पूर्व अन्नमय कोशका यह प्राणमय आत्मा है। तात्पर्य यह है जो अन्नमयमें आत्मत्वबुद्धि त्यागकरि प्राणमय आत्मा है यह जानना। अब तृतीय मनोमयकोशका निरूपण करे हैं। जैसे अन्नमयकोशसे भिन्न अंतर प्राणमय कह्या तैसे ता प्राणमयकोशसे अंतर तथा प्राणमय कोशसे भिन्न मनोमयकोश है। ता मनोमयकरिके प्राणमय पूर्ण है प्राणमयके सदृश ही मनोमय है। जैसे पंच अवयववाला होनेसे प्राणमयके सदृश मनोमयकोश है तैसे

निरूपण करे हैं। ता मनोमयकोशरूप पक्षीका यजुर्वेद शिर है। ऋग्वेद दक्षिण पक्ष है। सामवेद उत्तर पक्ष है। वेदमें जो व्याख्यानरूप ब्राह्मणभाग है। सो ब्राह्मणभाग मनोमयकोशरूपी पक्षीका उदर है। अथर्व वेद पुच्छ है। शांति पुष्टि आदि गुणोंका कारण होनेसे सो अथर्ववेद स्थितिका हेतु है यातें प्रतिष्ठा है। यद्यपि बाह्य ऋगादि वेदोंकूं शब्दरूप होनेसे मनोमयकोशका अवयवरूप कहना विरुद्ध है। तथापि वेदोंके स्ववर्ण आदि स्वरूप तथा तिन वेदोंकी प्रमाणताकूं सिद्ध करनेहारी जे मनकी वृत्तियां हैं ते मनमें ही रहे हैं। यातें मनोमयकोशका ते वृत्तियां अवयवरूप बने हैं। या मनोमयकोशमें ही यह मंत्र कहे हैं। जैसे ब्रह्मस्वप्रकाशमें मन वाणी प्रवृत्त होवे नहीं तैसे या मनोमयकोशरूप ब्रह्ममें मन वाणी प्रवृत्त होवे नहीं। अपने स्वरूपमें अपनी प्रवृत्ति कहीं देखी नहीं, जैसे अग्नि अपनेसे भिन्न काष्ठादिकोंका दाह करे है अपना दाह करे नहीं तैसे मन वाणी अपनेसे भिन्नमें प्रवृत्त होवे हैं। मनवाणीविशिष्ट आत्मरूप स्वस्वरूपमें मन वाणी प्रवृत्त होवे नहीं। ऐसे आनंदरूप तथा ब्रह्मरूप जानकरि मनोमयकोशका जो ध्यान करता है सो ध्याता पुरुष जन्म मरण आदि संसारसे भयकूं प्राप्त होवे नहीं। तिस पूर्व कहे प्राणमयका यह मनोमय कोश आत्मा है। यातें प्राणमयमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्यागकरि मनोमयकूं अपना स्वरूप जाने। अब चतुर्थ विज्ञानमय कोशका निरूपण करे हैं। ता मनोमयकोशसे भिन्न तथा तासे अंतर विज्ञानमय आत्मा है या विज्ञानमयकरिके ही सो मनोमय पूर्ण है। पंच अवयववाला होनेसे मनोमयके यह विज्ञानमय सदृश है। पंच अवयव निरूपण करे हैं गुरुशास्त्रके वचनोंविषे विश्वासरूप श्रद्धा या विज्ञानमयकोशरूप पक्षीका शिर है।

शास्त्रविषे कहे कर्मोंके मीमांसाशास्त्रके विचारसे उत्पन्न भयी जो मानसी बुद्धि है ताकूं ऋत कहे हैं। सो ऋत दक्षिण पक्ष है। करे हुए शुभ कर्मकूं विषय करनेहारी बुद्धिकूं सत्य कहे हैं। सो सत्य उत्तर पक्ष है। वेदांतशास्त्रका निश्चयरूप योग उदर है। हिरण्यगर्भरूप समष्टिबुद्धिकूं मह कहा है सो मह पुच्छ है। और सर्व स्थूल प्रपंचका कारण होनेसे सो सूक्ष्म समष्टिबुद्धि प्रतिष्ठा है। या विज्ञानमयकोशमें भी यह मंत्र है। जो पुरुष विज्ञानमयका या वक्ष्यमाणरीतिसे उपासना करे हैं ताकूं फल कहे हैं। यह विज्ञान यज्ञादिक वैदिक कर्मोंकूं तथा गमन आगमनादिक लौकिक कर्मोंकूं करनेहारा है। सर्व देवता इन्द्र आदिक भी या विज्ञानमयकूं वडा जानकरि उपासना करे हैं। ऐसे विज्ञानमयकूं जो पुरुष ब्रह्मरूप जानता है तथा देहादिकोंमें आत्मत्वबुद्धिरूप प्रमादकूं नहीं करता, सदा ही विज्ञानमयकूं आत्मरूप जाने है। सो पुरुष देह अभिमानके अभावसे देहकृत सर्वपापोंसे रहित हुआ सर्व कामनावोंकूं प्राप्त होवे है। पूर्व मनोमयका यह विज्ञानमय आत्मा है। अब आनंदमयरूप पंचमकोशका निरूपण करे हैं। ता विज्ञानमयसे भिन्न तथा अंतर आनन्दमयकोश है। ता आनंदमयकरिके यह विज्ञानमय पूर्ण है। जैसे विज्ञानमयके पंच अवयव कहे तैसे या आनंदमयके पंच अवयव हैं। यातें विज्ञानमयके सदृश है। अब पंच अवयव निरूपण करे हैं। अनुकूल पुत्रादि पदार्थके दर्शनजन्य जो सुख है ताकूं प्रिय कहे हैं। सो प्रिय आनंदमयकोशरूप पक्षीका शिर है। तथा इष्ट पदार्थकी प्राप्तिजन्य सुखकूं मोद कहे हैं। सो मोद दक्षिण पक्ष है। इष्टपदार्थके भोगसे उत्पन्न भया आनंद प्रमोद है। सो प्रमोद उत्तर पक्ष है और प्रियमोद प्रमोद इन सर्वमें सामान्यरूपसे व्यापक जो

आनंद है सो आनंद उदर है । सब जगत्का कारणरूप ब्रह्म तथा अधिष्ठानरूप ब्रह्म आनंदमय पक्षीका पुच्छ है । तथा प्रतिष्ठा है । या आनंदमय करिके ही विज्ञानमय पूर्ण है । यातें विज्ञानमयका यह आनंदमय आत्मा है । विवेकी पुरुष या विज्ञानमयकोशमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्याग करिके आनंदमय कोशकूं आत्मरूपसे निश्चय करे । ऐसे श्रुतिमें पंचकोशका निरूपण करा है । सो केवल अधिष्ठान ब्रह्मके बोधवासते है । अन्नमयादिक पंचके निरूपण वासते नहीं । काहेते अधिष्ठान ब्रह्मात्माके ज्ञानसे मोक्षरूप फलकी प्राप्ति होवे है । अन्नमयादिकोंके ज्ञानसे मोक्षरूप फल होवे नहीं, ऐसे विवेकी पुरुष अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय इन च्यारि कोशोंकूं अनात्मा जानकरि आनंदमयकोशका अधि-ष्टानरूप तथा पुच्छकी न्याईं पुच्छ जो ब्रह्म ताकूं निश्चय करे । आनंदमय ही आत्मा है ताका ब्रह्म पुच्छ है ऐसे जाने नहीं । ब्रह्मके ज्ञानवासते पंचकोश कहे हैं । तथा एक एक कोशके पंच पंच अवयव श्रुतिने कहे हैं । पंचम आनन्दमयकोशके च्यारि अवयव निरूपण करिके श्रुतिने विचार करा जो पुच्छरूप अवयव आनं-दमय पक्षीका किस पदार्थकूं कहूं और कोई पदार्थ प्रतीत होवे नहीं ऐसे विचार करि पुच्छरूप ब्रह्म नहीं भी तौ भी अधिष्टान ब्रह्मकूं पुच्छरूप श्रुतिने कहा है । यातें अधिष्ठान ब्रह्मके ज्ञानवासते ही पंच कोश निरूपण करे । ता ब्रह्मके स्वरूपमें यह मंत्र है । जो पुरुष ब्रह्मकूं असत् जाने है सो पुरुष आप ही असत् होवे है । और जो पुरुष ब्रह्मकूं सतरूप जाने है ता पुरुषकूं ब्रह्मवेत्ता सद्रूप जाने हैं । ऐसे आत्माके वास्तव स्वरूपकूं श्रवण रीतिसे कहा अब मननरीतिसे प्रश्नउत्तरद्वारा ता आत्माका निरूपण करे हैं । प्रथम यह प्रश्न है—सत्य ज्ञान अनन्तरूप ब्रह्म जो वेदांती

माने है। सो मानना मिथ्या है। काहेते जो ब्रह्म सत्यादिरूप होता तो पृथिवी जलादिकोंकी न्यांई हम सर्वकूं प्रतीत होता सो प्रतीत होवे नहीं यातें सो ब्रह्म है नहीं १। द्वितीय प्रश्न यह है। ब्रह्म सर्वका आत्मा है और ब्रह्मका किसीविषे पक्षपात तौ है नहीं यातें जैसे ज्ञानी ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है तैसे अज्ञानी ब्रह्मकूं किसवासते नहीं प्राप्त होता २। अब तृतीय प्रश्नकूं निरूपण करे हैं। जैसे व्यापक जो आकाश है सो आकाश ज्ञानी अज्ञानी सर्वकूं प्राप्त है ता आकाशकी ज्ञानीकूं प्राप्ति अज्ञानीकूं अप्राप्ति कहनी विरुद्ध है। तैसे सर्वत्र आत्मरूपकरि व्यापक ब्रह्मकी ज्ञानीकूं प्राप्ति अज्ञानीकूं अप्राप्ति कहनी विरुद्ध है। यदि अज्ञानी ब्रह्मकूं प्राप्त नहीं होता तौ विद्वान् भी ब्रह्मकूं प्राप्त नहीं हुआ चाहिये ३। इन तीन प्रश्नोंका उत्तर विस्तारसे निरूपण करे हैं। प्रथम अन्तके दोनों प्रश्नोंका समाधान यह है। यद्यपि ब्रह्म सर्वका आत्मा है यातें अज्ञानीकूं भी प्राप्त है। तथापि ब्रह्मज्ञानकरि अज्ञान निवृत्तिसे ज्ञानी ब्रह्मकूं निरावरण आत्मरूपसे जानता हुआ ब्रह्मकूं प्राप्त भया ऐसे कह्या जावे है। अज्ञानीका आवरण निवृत्त भया नहीं यातें अज्ञानी ब्रह्मकूं प्राप्त नहीं भया ऐसे कह्या जावे है। जैसे किसी दो पुरुषोंके गृहमें स्वर्णरूप निधि पृथिवीमें दाबी होवे। एक पुरुषकूं तौ किसी दयालुने कह दिया जो तेरे गृहमें अनन्त स्वर्णरूप निधि है तूं दरिद्री किसवासते भया है। ऐसे वाक्यकूं श्रवण करि सो पुरुष प्राप्त हुई निधिकूं प्राप्त होवे है और द्वितीय पुरुषकूं दयालु पुरुषकी प्राप्ति भयी नहीं, यातें सो पुरुष प्राप्त हुई निधिकूं भी प्राप्त होवे नहीं ऐसे अधिकारी पुरुषकूं शुभ कर्मोंसे ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी प्राप्ति होवे है। गुरु कहे है भो मुमुक्षो! तूं शुद्ध सच्चिदानन्द निर्विकार

परिपूर्ण रूप ब्रह्म है। ऐसे अपने शुद्ध रूपकूं त्यागकरि आपकूं सुखी दुःखी जन्ममरणवाला किसवासते मानता है। ऐसे वाक्यकूं श्रवण करि सो शुद्ध अधिकारी प्राप्त ब्रह्मकूं प्राप्त होवे हैं। और द्वितीय पुरुषकूं निष्काम कर्मके अभावसे अन्तःकरणशुद्धि तथा ज्ञानी गुरुकी प्राप्ति होवे नहीं। सामग्रीके अभावसे ज्ञान होवे नहीं यातें सो पुरुष प्राप्त ब्रह्मकूं भी प्राप्त होवे नहीं। अब ब्रह्मकी असत्ता कहनेहारे प्रथम प्रश्नके उत्तरकूं विस्तारसे कहे हैं। सो परमात्मा जगत् उत्पत्तिवासते कामना करता भया। मैं आप ही प्रजारूप करिके बहुत रूप होवों। ऐसे इच्छा करिकै जगत्के विशेष नाम रूपकी उत्पत्तिवासते विचार करता भया। ता विचारकूं करिके या सर्व नाम रूप जगत्कूं सो परमात्मा उत्पन्न करता भया। ता सर्व प्रपंचकूं उत्पन्न करिके आप ही परमात्मा या शरीरमें प्रवेश करता भया। परमात्माका प्रवेश मुख्य तौ बने नहीं। परिछिन्न पदार्थका ही मुख्य प्रवेश होवे है। यातें प्रवेश कथन जीवकूं ब्रह्मरूपता बोधनवासते है। जैसे कोई देवदत्तनामक पुरुष अपने गृहमें प्रकाश करे है सो देवदत्त प्रवेशकर्त्ता बाह्य स्थित अपने स्वरूपसे भिन्न किन्तु जो बाह्य स्थित देवदत्त था सोई देवदत्त अपने गृहमें विराजमान है। तैसे परिपूर्ण ब्रह्मने ही जीवरूपसे या संघातमें प्रवेश करा है। यातें यह जीव परिपूर्णब्रह्मसे भिन्न नहीं, किंतु परिपूर्ण ब्रह्मरूप ही जीव है। या तात्पर्यके बोधन अर्थ ही प्रवेश श्रुति अर्थवादरूप है। ऐसे परमात्मा ही अन्तःकरणमें स्थित हुआ द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता रूपसे प्रतीत होवे है। सो परमात्मा ही पृथिवी जल अग्निरूप मूर्तरूप होता भया और आकाशवायुरूप अमूर्तरूप होता भया। जिनका नाम रूप क्रिया करिके मनुष्यादि कथन

करे हैं ताकूं निरुक्त कहे हैं। जाका नाम रूप क्रियासे व्यवहार नहीं करे हैं ताकूं अनिरुक्त कहे हैं। ऐसे कहे निरुक्त अनिरुक्त मूर्त्त अमूर्त्त रूप ही हैं। गृह आदि आश्रयरूप मूर्तकूं ही निलयन कहे हैं। तासे विपरीत अमूर्त अनिलयन है। और चेतनरूपसे प्रतीत होनेहारे नेत्रादिक तथा अंतःकरण तिनकूं विज्ञान कहे हैं। तिनसे भिन्न पाषाणादि अविज्ञान तथा व्यावहारिक सत्य जे घटादि हैं तथा स्वप्नपदार्थ गंधर्वनगर आदि जे प्रातिभासिक हैं, सत्यरूप परमात्मा इन पूर्व कहे सर्व पदार्थरूपसे आप ही उत्पन्न होवे हैं। ऐसे कामना करनेवाला तथा विचार करनेवाला तथा जगत् उत्पत्ति करनेवाला तथा प्रवेश करनेवाला तथा मूर्त अमूर्तादि रूपताकूं आप धारनेवाला ब्रह्म असद्रूप कैसे होवेगा? किंतु सद्रूप ही है। तामें यह मंत्र है यह संपूर्ण जगत् उत्पत्तिसे प्रथम स्थूलरूपसे रहित ब्रह्मरूप ही होता भया। ता अविकृत ब्रह्मसे ही यह स्थूल जगत् उत्पन्न भया। और ब्रह्म अपने आपकूं जगत्रूपसे उत्पन्न करता भया यातें ब्रह्मकूं श्रुतिमें सुकृत या नामकरि कथन करा है। या नामरूप जगतकूं उत्पन्न करनेहारा ब्रह्म ही सुकृत है। ऐसे सुकृतब्रह्म सत्य है असत्य नहीं। इतने ग्रंथकरि सत्यरूपसे ब्रह्मका निरूपण करा। अब आनंदरूपसे ब्रह्मका निरूपण करे हैं। पूर्व कह्या सत्यरूप ब्रह्मात्मा ही अपने स्वरूपभूत आनंदसे सर्व जगतकूं आनंद करे है। यातें रसरूप है कहिये साररूप है। ब्रह्मकी आनंदरूपताविषे प्रमाण विद्वान्का अनुभव है। स्त्रीपुत्रादिक विषयोंकूं न प्राप्त हुए भी विद्वान् ता आनंदरूप ब्रह्मात्माकूं प्राप्त होइकरि परम आनंदी ही प्रतीत होवे हैं। यह स्थूल शरीर इंद्रियादिकसहित हुआ जीवता है या शरीरका जीवन भी आनंद-रूप आत्मा विना होवे नहीं। यह सद्रूप तथा आनंदरूप आत्मा

या शरीरमें प्राण अपानादिकोंकी चेष्टा करानेवाला यदि न होवे तौ या जडसंघातकी प्रवृत्ति ता चिदानंदरूप आत्मा विना कैसे होवेगी ? किन्तु नहीं होवेगी । यातें यह आत्मा ही सबकूं आनंद करे हैं तथा या ब्रह्मात्माकरिके ही सर्व चेष्टा सिद्ध होवे है । यह आत्मा बाह्य स्थूल प्रपंचसे रहित है तथा स्थूल सूक्ष्म कारण या त्रितय शरीरसे रहित है । अद्वैत है ब्रह्म मैं हूं यह जानता हुआ विद्वान् तथा भयसे रहित निष्ठाकूं प्राप्त हुआ अभय ब्रह्मकूं ही प्राप्त होवे है । भेदद्रष्टाकूं तौ महान् भयकी प्राप्ति होवे यह निरूपण करे हैं । जो पुरुष या द्वैत-ब्रह्ममें किंचित् भी भेद देखता है सो भेद द्रष्टा भयकूं प्राप्त होवे है । जैसे एक चंद्रमामें दो चंद्रमा जाननेवाला विद्वान् भी अज्ञानी कहिये है । तैसे अद्वितीय ब्रह्ममें भेदबुद्धि करनेहारे विद्वान् भी अज्ञानी कहिये है । ईश्वर अन्य है मैं अन्य हूं या भेदबुद्धिकरिके ता विद्वान्कूं भी ब्रह्म भयका हेतु है । ब्रह्मज्ञान विना माया-विशिष्ट परमेश्वरसे सर्वकूं भय प्राप्त होवे है यामें यह मंत्र है । या परमात्माके भयकरिके वायु चलता है । तथा या परमात्माके भय-करिके ही सूर्य उदय होवे है । या परमात्माके भयकरिके अग्नि प्रज्वलित होवे है । या परमात्माके भय करिके ही इंद्र वर्षा करे है । और वायु अग्नि सूर्य इंद्र या च्यारि देवताओंकी अपेक्षासे पंचम मृत्यु यम श्रुतिमें कह्या है सो मृत्यु या परमेश्वरके भयकरि ही धावता हुआ सर्व जीवोंके प्राणोंकूं निकासे है । जबी यह बडे बडे देवता भी ता परमेश्वरसे भयकूं प्राप्त होइ रहे हैं तबी अन्य जीवकी क्या कथा है । सूर्यादिक सर्व देवताओंने पूर्व जन्ममें करे जे कर्म उपासना हैं तिनका फल तिन देवताओंकूं देवभावकी प्राप्ति भयी है और भेदबुद्धिसे कर्म उपासना करे हैं ता भेदबुद्धिका

फल भयकी प्राप्ति भयी है। यातें कदाचित् भी मुमुक्षुमें भेदबुद्धि करनी नहीं। ब्रह्मके आनंदकरिके ही ब्रह्मा आदिक सर्व आनंदी हो रहे हैं या अर्थके निरूपणवासते विषयजन्य आनंदकी न्यूनता अधिकताकूं कहे हैं। तथा ब्रह्मस्वरूप आनंद ही सर्वमें जैसे व्यापक है ता विचारकूं करे हैं। या मानुष्यलोकविषे जो पुरुष युवा होवे तथा सुंदर रूप शीलादि गुणोंकरि सहित होवे तथा वेदपठित होवे तथा माता पिता आचार्य इनोंकरिके शिक्षित होवे वज्रके तुल्य जाके अंग होवें इंद्रके तुल्य बली होवे तथा स्वर्गादि धनकरिके पूर्ण तथा व्रीहि आदि अन्नोंसे पूर्ण जा पृथ्वी है ता संपूर्ण पृथिवीका पति होवे और दीर्घ जाका आयु होवे ऐसे सर्व गुणकरि युक्त चक्रवर्ती राजाकूं संपूर्ण मानुष्य विषयानंद प्राप्त होवे हैं। और इहां या कल्पमें ही जिन मनुष्योंने कर्म उपासना करे हैं तिन कर्म उपासनाके बलसे गंधर्वभावकूं प्राप्त भये हैं। तिन मनुष्य गंधर्वोंकूं ता चक्रवर्ती राजासे शत १०० गुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है। सो सर्व आनंद निष्काम होनेसे ज्ञानीकूं प्राप्त होवे है। तथा चक्रवर्ती राजा गंधर्व आदि रूपसे ज्ञानी आपकूं ही भोक्ता माने है। यातें राजा आदिकोंके सर्व आनंद ज्ञानीकूं प्राप्त होवे हैं। यामें संशय नहीं। पूर्व कल्पमें करे कर्म उपासनाके बलसे या कल्पके आदिमें जे पुरुष गंधर्वभावकूं प्राप्त भये हैं ताकूं देवगंधर्व कहे हैं। तिन गंधर्वोंकूं मनुष्यगंधर्वोंसे शतगुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है। सो सर्व आनंद निष्काम ज्ञानीकूं प्राप्त होवे है। और बहुत कालपर्यंत स्थाई है लोक जिनोंका ऐसे चिरलोकवासी पित्रोंकूं तिन देवगंधर्वोंसे शतगुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है। सो आनंद भी निष्काम ज्ञानीकूं प्राप्त होवे है। या कल्पके आदिमें स्मार्त्तकर्म वापी कूप तडागादिकोंके

करनेसे जे देवभावकूं प्राप्त भये हैं तिनकूं आजानदेवता कहे हैं। तिन आजानदेवतावोंकूं पित्रोंसे शतगुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है। सो आनंद निष्काम ज्ञानीकूं प्राप्त होवे है। जे या कल्पमें श्रौत अग्निहोत्र अश्वमेधादिक कर्मोंकूं करिके देवभावकूं प्राप्त भये हैं तिनकूं कर्मदेवता कहे हैं। तिन कर्मदेवतावोंकूं आजानदेवतावोंसे शतगुण अधिक आनंद प्राप्त हैं। सो आनंद भी निष्काम ज्ञानीकूं प्राप्त है। और अष्टवसु एकादश रुद्र द्वादश आदित्य इंद्र प्रजापति यह ३३ तेंतीस मुख्य देवता हैं। कर्मदेवतावोंसे तिन मुख्य देवतावोंका शतगुण अधिक आनंद है। सो आनन्द निष्काम ज्ञानीका है। देवराज इंद्रकूं तिन मुख्य देवतावोंसे शतगुण अधिक आनंद प्राप्त है सो आनंद भी निष्काम ज्ञानीका है। ता इंद्रसे बृहस्पति देवगुरुकूं शतगुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है सो आनंद भी निष्काम ज्ञानीकूं प्राप्त है। ता देवगुरु बृहस्पतिसे प्रजापति विराट्कूं शतगुण अधिक आनंद प्राप्त है। सो आनंद भी निष्काम ज्ञानीका है। ता प्रजापतिसे ब्रह्मा जो हिरण्यगर्भ है ताकूं शतगुण अधिक आनंद प्राप्त होवे है। सो आनंद भी ज्ञानी निष्कामकूं प्राप्त होवे है। आगे आत्मानंदरूप समुद्रका यह हिरण्यगर्भका आनंद किंचित् लेशमात्र है यातें ही श्रुतिभगवतीने आत्मानंदकूं हिरण्यगर्भके आनंदसे शतगुण वा सहस्रगुण अधिक नहीं कह्या ता आत्मानंदसमुद्रकूं ज्ञानी निष्काम प्राप्त है। यह आनंदरूप ब्रह्म ही आदित्यमंडलमें तथा नेत्रोंमें स्थित है। और या अध्यात्मरूप नेत्रोंमें तथा अधिदेवरूप आदित्यमंडलमें स्थित ब्रह्मात्माका भेद नहीं। ऐसे आत्माकूं अभेदरूपसे जानता हुआ विद्वान् अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय आनंदमय इन पंचकोशोंमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्यागकरि ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवे है।

या अर्थमें यह मंत्र है। शब्दसे रहित ब्रह्ममें वाणी प्रवृत्त होवे नहीं तथा नामरूपसे रहित ब्रह्ममें मन प्रवृत्त होवे नहीं। ऐसे मन वाणीके अविषय आनन्दरूप ब्रह्मकूं जानता हुआ विद्वान् भेदबुद्धिके अभावसे किसीसे भी भयकूं प्राप्त होवे नहीं। और अज्ञानी पुरुषकूं पुण्य कर्म न करे हुए या रीतिसे तपावे हैं। यदि मैं पुण्य कर्म करता तौ मैं भी अन्य सुखी पुरुषोंकी न्याईं सुखकूं प्राप्त होता और पाप कर्म करे हुए या रीतिसे अज्ञानी पुरुषकूं तपावे हैं। धिक्कार है! मैं पापी हूं मैंने पाप कर्म बहुत करे हैं यातें ही सर्वदा दुःखकूं अनुभव करता हूं मैं पापीकूं ऐसा ही दंड योग्य है। ऐसे मूढ अज्ञानीकूं पुण्य कर्म न करे हुए तथा पाप कर्म करे हुए दुःखकूं देवे हैं। विद्वान् पुरुष तौ मैंने पुण्य किसवासते न करे और पाप किसवासते करे ऐसे तपायमान होवे नहीं तामें हेतु यह है। जो ज्ञानी तिन पुण्यपापरूप कर्मोंकूं अपना स्वरूप जाने है। यातें जैसे अग्नि अपने स्वरूपकूं दाह करे नहीं। तैसे सर्व कर्मोंका अपना आत्मा जो विद्वान् ता विद्वानकूं पुण्य कर्म न करे पाप कर्म करे हुए तपायमान करे नहीं। अब आनन्दवल्लीकी समाप्तिमें शांतिमंत्रके अर्थकूं दिखावे हैं। सो परमात्मा हम गुरु शिष्य दोनोंकी ज्ञानके प्रकाश करनेसे रक्षा करे। तथा ब्रह्मविद्याके फल प्रगट करनेसे पालन करे। हम गुरुशिष्यका पढना पढाना सर्व विघ्नोंके नाशकरनेविषे समर्थ होवे। हमारे प्रमादकरि पढने पढानेसे प्राप्त भया जो दोष ता दोषसे उत्पन्न भया जो हम दोनोंमें द्वेष सो द्वेष निवृत्त होवे। हमारेकूं सो द्वेष काचित न प्राप्त होवे। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः। याका पूर्व उक्त अर्थ जान लेना। ऐसे ज्ञानवल्लीकूं समाप्त करिके अब भृगुवल्लीकूं दिखावे हैं। जा शांतिमंत्रका अर्थ पूर्व अबी कह्या है ता शांतिमंत्रके अर्थकूं या भृगुवल्लीके आरंभमें

भी जानलेना। पूर्वकालविषे भृगुनामवाला वरुणऋषिका पुत्र होता भया सो भृगुऋषि पिता वरुणऋषिके पास जाइके या प्रकारका प्रश्न करता भया। हे भगवन्! आप जा ब्रह्मकूं जानतेहैं ता ब्रह्मका ही मेरे ताईं उपदेश करो। या प्रश्नकूं श्रवण करिके सो वरुणपिता यह विचार करता भया। जबी यह भृगु बुद्धिमान् होवेगा तौ आत्माकी प्राप्तिविषे साधन पदार्थ हैं तिन पदार्थोंद्वारा ता वास्तव आत्माकूं निश्चय करि लेवेगा। यातें आत्माकी प्राप्तिमें जे साधन पदार्थ हैं तिनका मैंही निरूपण करूं। यह अन्नमय स्थूलशरीर तथा पंचप्राण पंच ज्ञानइंद्रिय पंचकर्मेन्द्रिय चारि अंतःकरणजीवसाक्षीकी प्राप्तिमें द्वाररूप इन पदार्थोंकूं निरूपण करिके ब्रह्मकी प्राप्तिमें द्वारभूत ब्रह्मके लक्षणकूं निरूपण करेहैं। हे भृगो! जा उपादानकारणसे यह सर्वभूत उत्पन्न होवे हैं। तथा जा कारण करिके प्राणोंकूं धारण करे हैं। तथा जामें मरे हुए प्रवेश करे हैं। अर्थ यह जामें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं ऐसे कारणकूं तुम ब्रह्मरूप जानो सोई कारण ब्रह्म है। ऐसे ब्रह्मका यह जगत् उत्पत्ति आदिकोंकी कारणता तटस्थ लक्षण निरूपण करा। जैसे काकवाला देवदत्तका गृह है इहां काकगृहका तटस्थ लक्षण है। काहेतें गृहमें काक सर्वदा रहे नहीं तथा इतर पुरुषोंके गृहोंसे देवदत्तके गृहकूं भिन्न करे हैं। तैसे जगत् कारणतादि ब्रह्ममें सर्वदा रहे नहीं तथा ब्रह्म भिन्न परमाणु प्रधानादिकोंसे ब्रह्मकूं भिन्न करे हैं। यातें जगत कारणतादिक ब्रह्मका तटस्थ लक्षण है। ऐसे भृगुपुत्र श्रवण करि यह निश्चय करता भया। जो पिताजीने तौ मेरेकूं ब्रह्म उपदेश करा है। परंतु ता ब्रह्मात्माका प्रत्यक्ष विना इंद्रियसंयमरूप तपसे तथा विचाररूप तपसे विना होवेगा नहीं, यातें मैं तपकूं करूं। ऐसे भृगुऋषिने प्रथम इंद्रियसंयमरूप तपकूं करा। ता अनंतर मनन है

नाम जाका ऐसा जो विचाररूप तप है ताकूं सो भृगु करता भया ता विचारसे भृगुने यह निश्चय करा। अन्न ही ब्रह्म है। काहेते समष्टिविराट्रूप अन्नसे तथा या व्यष्टिस्थूलशरीररूप अन्नसे यह प्राणी उत्पन्न होवे हैं। तथा ता समष्टिव्यष्टिस्थूलशरीरसे उत्पन्न हुए तामें ही स्थित होवे हैं। तथा तामें ही लय होवे हैं। इहां पंचभूतरूप विराट्में तथा व्यष्टिस्थूल शरीरमें अन्न शब्दकी प्रवृत्ति भोगसाधन होनेसे जाननी। इन पंचभूतोंमें स्थूल जगत्के कारणतादिक भी बने हैं। ऐसे अन्नमयकूं ब्रह्मरूप जानकरि सो भृगु पुनः विचारकरि ता अन्नमयकोशमें या प्रकारके दोषोंकूं देखता भया। समष्टिस्थूलशरीर विराट्का देह तौ उत्पत्तिनाशवान् है तथा जड और परिच्छिन्न है यातें ब्रह्म नहीं। तथा व्यष्टिस्थूलशरीरमें या प्रकारके दोषोंकूं देखता भया। यह स्थूलदेह भी जड परिच्छिन्न उत्पत्तिनाशवान् प्रत्यक्ष प्रतीत होवे है। और या देहकूं ही आत्मा माने तौ जबी या स्थूलशरीरका नाश होवे है तब सुख दुःखका ज्ञान किसवासते नहीं होता। और मैं बालक नवीन उत्पन्न भयेकी स्तनपानमें प्रवृत्ति देखता हूं ता बालककी प्रवृत्ति क्षुधाकी निवृत्तिवासते या देहकूं आत्मा माने बने नहीं। काहेतें ता बालककूं अनुकूल पदार्थका ज्ञान या जन्ममें तो भया नहीं जा ज्ञानसे संस्कारद्वारा स्मृति होइकरि स्तनपानमें प्रवृत्ति संभवे। यातें या देहसे भिन्न अनुकूल स्मृति आदिकोंका आश्रय आत्मा है। और "जायते अस्ति वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति" यह षड्विकारवान् देह है तथा माताके रक्तसे और पिताके शुक्रसे याकी उत्पत्ति है। तथा त्वचा अस्थि मांस नाडी मज्जादिक अपवित्र पदार्थोंकरि पूर्ण है। अनंत रोगोंका यह स्थूल शरीर आश्रय है तथा प्राणके निकसनेसे अग्निकरिके भस्मकूं प्राप्त

होवे है। यदि सिंहादिक याकूं भक्षण करें तौ यह देह मलभावकूं प्राप्त होवे है। और कोई दिन प्राण विना यह देह पडा रहै तो कीटरूप होइ जावे है। और अन्न विना याकी स्थिति होवे नहीं। ऐसा अनेकदोषग्रस्त परम अशुद्ध यह देह कदाचित् आत्मा बने नहीं यह विचार करि पिताकूं कहे है। हे भगवन्! यह देह तो आत्मा नहीं। मेरेकूं ब्रह्मका उपदश करो। पिता वरुण भृगुकूं कहे हैं हे पुत्र! विचार विना आत्माका प्रत्यक्ष होवेगा नहीं। यातें विचारसे ही ब्रह्मकूं निश्चय करो। ऐसे श्रवण करिके भृगु पुनः विचार करिके प्राणमयविषे ही ब्रह्मके लक्षणकूं जोडता भया। सर्व जीव प्राण विशिष्ट देहसे ही उत्पन्न होवे हैं। या प्राणकरिके ही जीवे हैं। प्राणके निकसनेसे नाशकूं प्राप्त होवे हैं। यातें उत्पत्ति आदिकोंका कारण होनेसे प्राण ही ब्रह्म है। ऐसे प्राणकूं ब्रह्मरूपसे जानता हुआ सो भृगुऋषि विचारकरि या प्रकारके प्राणमयविषे भी दोषोंकूं देखता भया। समष्टिव्यष्टि प्राण तौ जड है स्थूल शरीरकी न्याईं उत्पत्ति नाशवान् है। तथा जल विना या प्राणकी स्थिति होवे नहीं। ऐसे प्राणमयविषे अनंत दोषोंकूं देखकरि ते सर्व दोष प्राणमयविषे पिताकूं कहे और यह कहा मेरेकूं ब्रह्म उपदेश करो। पिता विचार करिके ब्रह्मकूं जानो ऐसे कहते भये। पुनः भृगु मनोमयविषे ब्रह्मके लक्षणकूं जोडता भया। यह मन ही चेतन प्रतीत होवे है। यातें मन ही जगत्की उत्पत्तिआदिकोंका कारण होनेसे ब्रह्म है। मन सावधान होवे तौ ज्ञानादिक होवे हैं। सावधान नहीं होवें तौ ज्ञानादिक होवे नहीं। यातें मनसे भिन्न ब्रह्म नहीं। ऐसे मनकूं ब्रह्मरूप जानकरि तामें भी दोषोंकूं देखता भया। यह मन भी ब्रह्म नहीं है। काहेते यह समष्टिव्यष्टिरूप मन उत्पत्तिवाला है। तथा परिच्छिन्न है तथा अन्नकी

शुद्धिसे शुद्धिकूं प्राप्त होवे है । अन्नकी मलिनतासे यह मन मलिनताकूं प्राप्त होवे है । ऐसा शुद्धि अशुद्धिवाला मन जल वस्त्रकी न्याईं ब्रह्म नहीं तथा सुषुप्तिमें मन इंद्रियोंसहित लयभावकूं प्राप्त होवे है । अन्न विना नाश जैसा होइ जावे है । यातें मन भी ब्रह्म नहीं । ऐसे मनविषे सर्व दोषोंकूं पिताके ताईं श्रवण कराइकरि यह कहे है । हे भगवन् ! मेरेकूं ब्रह्म उपदेश करो । पिता भी पुनः विचारि करि ब्रह्मकूं जानो यह कहते भये भृगु पुनः विचारकरि विज्ञानसे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति आदिकोंकूं जानकरि निश्चयरूप बुद्धि मनका भी कारण होनेसे ब्रह्म है यह जानता भया । पुनः ता ज्ञानमयविषे भी या प्रकारके दोषोंकूं देखता भया । यह समष्टि-व्यष्टिरूप विज्ञान उत्पत्ति नाशवाला है । तथा परिच्छिन्न है । तथा सुषुप्तिमें लयकूं प्राप्त होवे है । ममताकी विषयता तौ यामें स्थूल-शरीरादिकोंके समान है । यातें विज्ञानमय भी ब्रह्म नहीं या प्रकारके दोष विज्ञानमयविषे पिताके आगे भृगुने जबी श्रवण कराये तबी पिता विचार करि ब्रह्मकूं जानो यह ही कहते भये । पुनः भृगु विचारकरि आनंदमयविषे ब्रह्मका लक्षण जानकरि ता आनंदमयकूं ही ब्रह्मरूप जानता भया । द्वेष्य सर्पादिकोंमें तथा उपेक्ष्य तृणादिकोंमें किसी पुरुषकी प्रवृत्ति सुखवासते होवे नहीं किंतु अनुकूल अन्नादिकोंमें सुखवासते पुरुषकी प्रवृत्ति होवे है । स्त्री आदिकोंके आनंदकरि ही जगत्की उत्पत्ति आदिक देखते हैं यातें आनंदमय ही ब्रह्म है । पुनः आनंदमयविषे भी उपाधिरूप अज्ञानकूं जड होनेसे ब्रह्मरूपता बने नहीं । शेष जो पुच्छरूप अधिष्ठान ब्रह्म है तथा उत्पत्ति आदिकोंसे रहित है सर्वमें व्यापक है सर्वका आत्मा है ता आनंदरूप ब्रह्मकूं अपना स्वरूप निश्चय करिके सो भृगु मोक्षकूं प्राप्त भया सो वरुण पिताने उपदेश करी भृगुने

निश्चय करी ब्रह्मविद्या हृदयविषे स्थित ब्रह्मकूं आत्मरूपसे बोधन करे है। यातें जो अधिकारी या विद्याकूं प्राप्त होवेगा सो अधिकारी भृगुकी न्याई मोक्षकूं प्राप्त होवेगा। समष्टि अन्नमयादिक कोशोंकी जो पुरुष उपासना करता है सो पुरुष सर्व अन्नकूं प्राप्त होवे है। तथा या लोकमें महान् होवे है पुत्र पशु ब्राह्मणत्व जाति कीर्ति इत्यादिक फलोंकूं प्राप्त होवे है। ऐसे श्रुतिभगवती भृगुवरुणके संवादद्वारा विचाररूप तपकूं ही ज्ञानप्राप्तिमें साधन कहे है। यातें इदानींतन मुमुक्षुजनोंने भी वारंवार संशयादिकोंकी निवृत्तिवासते विचाररूप तपकूं करना। ऐसे जो पुरुष समष्टि आदित्यमंडलमें तथा स्वशरीरमें स्थित ब्रह्मकूं अभेदरूपसे जानता है सो इन पंचकोशोंमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्यागकरि जीवन्मुक्त हुआ संसारमें या प्रकारका गायन करता हुआ विचरता है। बहुत आश्चर्य है मैं ही अन्नरूप हूं तथा अन्नभोग्यका भोक्ता जो पुरुषादिक हैं सो भी मैं हूं। मैं ही अन्नका तथा पुरुषोंका जनक हूं। मैं ही हिरण्यगर्भरूप हूं तथा विराट्रूप हूं और देवता अतिथि आदिकोंके ताईं अन्नकूं न देकरि जे पुरुष दरिद्री भोजन करे हैं तिन कृपणोंकूं मैं मृत्युरूप होइकरि भक्षण करता हूं। मैं ईश्वर सर्व वेदोंका कर्त्ता हूं। मैं ऋषिरूपसे वेदोंका स्मरण करता हूं। मैं ईश्वर ही सर्व पुरुषोंकरि भजन करने योग्य हूं। मैं संसाररूपी चक्रमें नाभीकी न्याईं स्थित हूं। और मैं ही धर्म अर्थ काम मोक्षरूप हूं। मैं ही अन्नादिरूप हूं तथा अन्नादिकोंका दातारूप हूं। जो पुरुष देवता अतिथि आदिकोंके ताईं अन्नादिक पदार्थोंका दान करिके भोजन करे है सो पुरुष अपने आत्माका जो रक्षण करे है सो मुझ आत्माका ही रक्षण करे है। और ब्रह्मा आदि भूत जामें उत्पन्न होवें ताकूं भुवन कहे हैं। ता भुवनका मैं ईश्वररूप ही संहार करनेहारा हूं।

" अहमन्नम् " अर्थ यह मैं अन्नरूप भोग्य हूं " अहमन्नादः " मैं अन्नका भोक्ता अनुभवरूप चेतन हूं । इत्यादि मंत्रोंका उपनिषद्में जो वारंवार कथन है सो आश्चर्यके बोधन अर्थ है । मैं स्वर्णकी न्याईं प्रकाशमान तथा आदित्यमंडलमें स्थित हूं । मैं ही सर्व जगतका प्रकाशक तथा सर्व जगत्से उत्कृष्ट हूं । ऐसे अपने अनुभवके प्रगट करनेहारे गायनकूं करता हुआ विद्वान् या संसारमें विचरता है । जैसे श्रुतिभगवती केवल मुमुक्षुजनोंके बोधवासते नाना प्रकारसे आत्माका उपदेश करे है तैसे विद्वान् भी मुमुक्षुजनोंके बोधवासते अपने अनुभवकूं गायनसे प्रगट करता हुआ या संसारमें विचरे है । शांतिमंत्र पूर्व आरंभकी न्याईं समाप्तिमें भी पठन करि लेना ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राकाचार्य-भगवत्पूज्यपाद-श्रीमच्छङ्कराचार्यशिष्यसंप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वामि-अच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे तैत्तिरीयार्थनिर्णयः ॥ ७ ॥

इति तैत्तिरीयोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ ७ ॥
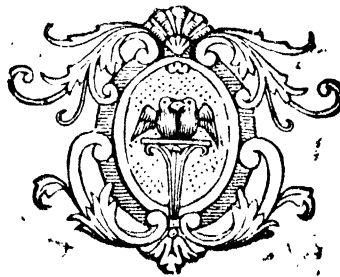
ॐ

अथ ऐतरेयोपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐ नमः श्रीगुरुचरणकमलेभ्यः । अब ऋग्वेदीय ऐतरेयउपनिषद्के अर्थकूं दिखावे हैं। सनकादि ब्रह्माजीके पुत्र सकल मुमुक्षुजनोंके उद्धारवासते ब्रह्मासे प्रगट भये। कैसे सनकादिक हैं। सर्व वेदोंके अर्थकूं जाननेहारे हैं। तथा परम विरक्त निवृत्ति मार्गके पालनेहारे हैं। ऐसे परम विद्वान् सनकादिक वामदेवादिक मुमुक्षुजनोंके ताईं ब्रह्म उपदेशकूं कथन करते भये। सो उपदेश ऐतरेयउपनिषद्रूप है। सनकादय ऊचुः । भो मुमुक्षवः ! यह संपूर्ण नामरूप जगत् उत्पत्तिसे प्रथम त्रिविधपरिच्छेदसे रहित आत्मरूप ही होता भया। आत्मासे भिन्न सजातीय विजातीय कोई पदार्थ न होता भया। स्वगतभेद तौ निरवयव आत्मामें कदाचित् संभव नहीं। आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ व्यापारयुक्त न होता भया। प्राणिकर्मोंके अनुसार सो परमात्मा या प्रकारका विचार करता भया। मायाविशिष्ट मुझ परमात्माविषे ही यह भूतभौतिक प्रपंच सूक्ष्मरूपसे स्थित होइ रहा है। प्राणियोंके भोगवासते अब स्थूलरूपसे मैं प्रगट करूं। ऐसे विचार करि पंच भूतोंसे ब्रह्मांडकूं उत्पन्न करिके लोकोंकूं उत्पन्न करता भया। ते लोक यह हैं। सप्त लोक स्वर्गादि ऊपरके तथा सप्त लोक नीचेके यह चतुर्दश लोक ता परमेश्वरसे उत्पन्न भये। ऐसे लोकोंकूं रचिकरि सो परमेश्वर पुनः विचार करता भया। यह चतुर्दशलोकरूप सर्व विराट्का शरीर है। यह सर्वलोक लोकपालोंसे विना नाशकूं प्राप्त होवेंगे यातें लोकपालोंकी उत्पत्तिकूं करूं। जैसे गृहके स्वामी विना गृह नाशकूं प्राप्त होइ जावे है। तैसे चेतन

लोकपालों विना या अंडकी स्थिति होवेगी नहीं। यातें अवश्य ही लोकपालोंकूं उत्पन्न करना योग्य है। ऐसे विचार करि पंच भूतोंसे उत्पन्न भया जो विराट् ता विराट्के अवयवोंसे लोकपालोंकी उत्पत्ति कहे हैं। यद्यपि भूतोंके सात्विक राजस भागसे इंद्रिय तथा देवताओंकी उत्पत्ति भयी है। तथापि विराट्के अवयवोंसे तिनकी प्रगटता होवे है। विराट्के शरीरमें सो परमेश्वर नाना प्रकारके छिद्रोंकूं करिके तिन छिद्रोंसे इंद्रियोंकी प्रगटता या प्रकारके करता भया। परमेश्वरके संकल्पके वशसे पक्षीके अंडेकीन्याईं मुखच्छिद्र भया। ता मुखच्छिद्रसे वाक्इंद्रिय प्रगट भया। ता वाक्से अग्निदेवता प्रगट भया। नासिकाछिद्र भया ता नासिकासे घ्राणइंद्रिय भया। ता घ्राणसे गंधउपाधिवाला वायु प्रगट भया। या गंधवाले वायु करिके पृथिवी देवता लेना। नेत्रच्छिद्र भया। ता नेत्रच्छिद्रसे चक्षुइंद्रिय भया। ता चक्षुसे सूर्यभगवान् प्रगट भया। कर्णच्छिद्र भया। ता कर्णच्छिद्रसे श्रोत्रइंद्रिय भया। ता श्रोत्रसे दिशारूप देवता प्रगट भया। देहमें जे अनंत छिद्र हैं ते छिद्र प्रगट भये तिन छिद्रोंसे त्वचा इंद्रिय भया। ता त्वचासे विराट्के रोम केशरूप वृक्षादिकोंका अधिष्ठाता वायु प्रगट भया। हृदयच्छिद्र भया। ता हृदयसे मन प्रगट भया। ता मनसे चंद्रमा प्रगट भया। नाभिच्छिद्र भया। ता नाभिच्छिद्रसे अपान-वायुका आश्रय गुदइंद्रिय भया। ता गुदासे सर्वके नाश करनेहारा मृत्यु प्रगट भया। उपस्थ इंद्रियका छिद्र भया। ता छिद्रसे उप-स्थइंद्रिय भया। ता उपस्थइंद्रियसे प्रजापति प्रगट भया। वाक् इंद्रियकी उत्पत्तिसे रसना इंद्रिय तथा ताका वरुणदेवता उपरिसे जान लेना। उपनिषद्में तौ पूर्व कहे छिद्र इंद्रियदेवता ही लिखे हैं। शेष देवताकी तथा इंद्रियोंकी प्रगटता उपरिसे ही

जानने योग्य है। श्रुतिमें केवल मनकी ताके चंद्रमा देवताकी प्रगटता कही है ता करिके बुद्धिकी तथा बुद्धिके देवता ब्रह्माकी और अहंकारकी और अहंकारके देवता रुद्रकी और चित्तकी और चित्तके देवता विष्णुकी प्रगटता जान लेनी। और अपानवायुकरिके प्राण समान उदान व्यान या क्रियाशक्तिवाले सर्व प्राणोंका ग्रहण करना और दो हस्त दो पाद विराट्के शरीरमें प्रगट भये हस्तोंसे इंद्रदेवता और पादोंसे वामन भगवान् प्रगट भये। जबी कर्म उपासनासे प्राप्त भये देवतावोंके शरीरोंमें भी दुःख प्राप्त होवे है तब अन्य मानुष्य आदि शरीरोंमें दुःख कैसे न प्राप्त होवैगा। या तात्पर्यके बोधन अर्थ श्रुतिमें विराट्के शरीरकूं समुद्ररूपसे वर्णन करा है। विराट्के शरीररूप समुद्रमें अविद्याकामकर्मरचित जन्म जरा मरण दुःख ही जल है। ज्ञान विना संसाररूप या विराट्शरीरका नाश होवे नहीं यातें अनंत है। यह विराट्शरीररूप संसारसमुद्र प्रवाहरूपसे अनादि है। संचित आदिकर्म जामें चक्र हैं। काम क्रोधादिक जामें महाग्रह हैं अज्ञानी पुरुषका पार उतरना होवे नहीं यातें अपार है। विषय इंद्रियोंके संबंधके उत्पन्न होनेहारा जो आनंद है ता आनंदमें ही विश्रामकूं प्राप्त होइ रहा है। विषयोंमें तृष्णारूप वायुसे उत्पन्न भयी है अनंत सहस्र क्लेशरूपी लहरी जाविषे। रौरवादिक नरकोंके दुःखोंकरि उत्पन्न भया है हाहा इत्यादि महान् शब्द जामें। तथा बाल्यादि अवस्थामें होनेहारे दुःखोंकरि जा समुद्रमें हाहा मुंच मुंच इत्यादि अनंत शब्द उत्पन्न होवे हैं। ज्ञानरूप जहाजकरि या समुद्रसे पार उतरना होवे है। ज्ञानरूप जहाजमें भी रस्तेके वास्ते ऐसे अन्न आदि चाहिये। सत्यसंभाषण कोमल स्वभाव दान दया उदारता अहिंसा शम दम धैर्य क्षमा इत्यादि ज्ञानरूपी जहाजमें यह

सर्वभोगवासते अन्नादिक हैं सत्संग सर्व स्त्री आदिक विषयोंका त्याग यह जामें मार्ग है। मोक्षरूपी जाका परतीर है। ऐसे समुद्ररूपी विराट्शरीरमें प्राप्त भये देवतावोंकूं क्षुधा तृषाने व्याकुल करा ता विराट्शरीरमें तृप्ति योग्य अन्न जलकूं न देखकरि अपने पिता परमेश्वरकूं या प्रकारका वचन कहते भये हे भगवन्! आपने उत्पन्न करा जो विराट्शरीर है तासे भिन्न तौ किंचित् भी अन्न जलादिक प्रतीत होवे नहीं। यातें अल्प कोई शरीर उत्पन्न करो जा शरीरमें हम स्थित हुए अन्न जलकूं ग्रहण करें। या शरीरकी प्रार्थनाकूं श्रवणकरि देवताओंके अन्न आदिकोंके भोगवासते सो पिता गौके शरीरकूं उत्पन्न करता भया। ता गौके शरीरकूं देखकरि ते देवता प्रसन्न न भये और कहते भये यह शरीर तौ योग्य नहीं। पुनः सो पिता अश्वके शरीरकूं उत्पन्न करता भया ता अश्वके शरीरकूं देखकरिके भी ते देवता प्रसन्नताकूं न प्राप्त भये और कहते भये यह शरीर भी योग्य नहीं। ऐसे ता परमेश्वरने मनुष्यदेह विना चौरासी लक्ष देह तिन देवताओंकी प्रसन्नता वासते ही उत्पन्न करे परंतु किसी देहमें भी देवता प्रसन्न न भये। ता अनन्तर परमेश्वरने मनुष्यदेहकूं उत्पन्न करा ता देहकूं देखकरि प्रसन्न हुए ते देवता या प्रकारके वचनकूं कहते भये। हे भगवन्! यह तौ बहुत सुन्दर है धर्म अधर्मका ज्ञान तथा ब्रह्मका ज्ञान तथा लोकपरलोकका ज्ञान या मनुष्यदेहमें होवे है। जैसे बुद्धिमान् तथा अपने हस्तोंसे जो वस्तु रचे है सो अति सुन्दर होवे है तैसे हे भगवन्! यह मनुष्यदेह तुमने आप रचा है। यातें ही यह शोभनीय है। ऐसे प्रसन्न हुए देवताओंकूं परमेश्वररूप पिता कहे हैं। भो देवाः! या शरीरमें नेत्रादि इन्द्रियरूपसे तुम प्रवेश करो। यद्यपि वाक् आदिक इन्द्रियोंसे भिन्न ही देवता हैं। तथापि

तिन वाक् आदिक इंद्रियोंविषे अग्नि आदिक देवताओंसे विना शब्द उच्चारणादि कार्य प्रतीत होवे नहीं । तथा वाक् आदि विना ता अग्नि आदि देवतावोंकी भी प्रत्यक्ष प्रतीति होवे नहीं । यातें अध्यात्म इन्द्रियोंसे अधिदैवरूप देवताओंका अभेद-रूपसे ही श्रुतिमें प्रवेश कहा है । अग्नि वाक्रूप हुआ मुखगोलकमें प्रवेश करता भया । वरुणदेवता रसनारूपसे जिह्वाके अग्रभागमें स्थित भया । गंधविशिष्ट वायुदेवता घ्राणइन्द्रियरूप हुआ नासिका छिद्रमें प्रवेश करता भया । सूर्य भगवान् चक्षुरूपसे नेत्रगोलकमें प्रवेश करता भया । दिग्देवता श्रोत्ररूप हुआ कर्णगोलकमें स्थित भया । स्थावररूप उपाधिवाला वायुदेवता रोमोंके सहित हुअ त्वगिंद्रियरूपसे त्वचारूप गोलकमें स्थित भया । चंद्रमा मनरूप हुआ हृदयगोलकमें प्रवेश करता भया । मृत्युदेवता पायुइन्द्रिय रूपसे गुदाछिद्ररूप गोलकमें स्थित भया । प्रजापति उपस्थइंद्रिय-रूपसे शिश्नछिद्ररूप गोलकविषे स्थित भया । इतने देवता ओंका प्रवेश उपनिषद्में कह्या है शेष रहै जे देवता ते भी ऐसे ही प्रवेश करते भये । क्षुधा तृषाके अभिमानी देवता अपना कोई स्थान न देखकरि परमेश्वरकूं कहते भये । हे जनक ! हमारेकूं भी कोई स्थान कृपाकरि देवो । परमेश्वर तिनकूं अध्यात्म अधिदैवरूप देवताओंविषे ही स्थान देकरि कहता भया । इन देवताओंकी तृप्ति करिके ही तुम्हारी तृप्ति होवेगी । सो अब भी ऐसा ही दीखता है । सूर्यादिक देवताओंकूं घृतादिरूप हविका दान करे तिनकी क्षुधा तृषा शांत होवे है । रूपादिविषयरूप हविका दान करे नेत्र आदि कोंकी क्षुधा तृषाकी शांति होवे है । यद्यपि व्यष्टिस्थल शरीरवाले भोक्ता जीवमें ही क्षुधा तृषा होवे है । तथापि जीव भी वास्तवसे शुद्ध ब्रह्मरूप है । तामें क्षुधा आदिक भी इन्द्रिय देवतादि उपाधि

कारि ही है। यातें श्रुतिमें तिन इंद्रिय तथा देवतावोंविषे ही क्षुधा तृषा आदिकोंका कथन है। जैसे पिता पुत्र पौत्रादिकोंकरिके न कह्या हुआ भी तिनकी रक्षावासते अन्न आदिकोंकरि तिन पुत्रादिकोंका पालन करे है।तैसे परमेश्वर देवतारूप पुत्रोंके रक्षार्थ अन्नकी उत्पत्तिवासते विचारकूं करता भया। ऐसे विचारकरि सो जनक परमेश्वर पंचभूतोंसे नाना प्रकारके अन्नकूं उत्पन्न करता भया। सिंहादिकोंका मांसभोजन है। मनुष्योंका व्रीहि यवादि भोजन है। सर्पादिकोंका मूषकआदिरूप अन्न है। ऐसे अनंत प्रकारका अन्न उत्पन्न भया। परमेश्वरने देवतावोंकूं कहा हे देवाः! यह अन्न उत्पन्न भया है। तुम या अन्नकूं ग्रहण करो। अब आत्मामें वास्तवसे अन्नादिकोंका भोक्तृत्व नहीं किंतु अपानवृत्तिमान् प्राण उपाधिकरिके है या अभिप्रायसे आत्मामें भोक्तृत्व अभाव बोधन करनेकूं लोकपालोंकी अन्नआदिकोंके ग्रहणमें असामर्थ्य कहे हैं। जबी ता परमात्माने अन्नकूं उत्पन्नकरिके देवताओंकूं भक्षणकरनेकी आज्ञा करी तब देवता भक्षण करने वासते प्रवृत्त भये। जैसे मूषक आदि बिडाल आदिकोंके आगे छोडे हुए भाग जावे हैं। तैसे अन्नकूं जबी लोकपालोंके आगे स्थापन करा तबी सो अन्न भगनेका संकल्प करता भया। यद्यपि व्रीहि आदिरूप अन्नमें तो ऐसी इच्छा बने नहीं। तथापि सो व्रीहि आदिरूप अन्न शरीरमें प्राप्त न भया किंतु बाह्य ही स्थित भया यामें तात्पर्य है। यह इंद्रियों सहित स्थूल शरीर वाणी करिके अन्नके ग्रहणकी इच्छा करता भया। परंतु अपानवायु विना ग्रहण करनेमें समर्थ न भया। और वाणीकारि उच्चारण करिके ही तृप्तिकूं प्राप्त भया। अर्थ यह जो अन्नके ग्रहण करनेकूं समर्थ न भया। ऐसे ही घ्राण चक्षु श्रोत्र त्वक् मन उपस्थ इत्यादि इंद्रियोंकारि अन्नके ग्रहण

करनेकूं सो पिंड न समर्थ भया । पश्चात् अपानवायु करिके मुख-च्छिद्रद्वारा सो पिण्ड अन्नकूं ग्रहण करताभया । यातें अपानवायुकूं अन्नका ग्राहक कहे हैं । ऐसे परमेश्वरने लोकोंकी तथा शरीरोंकी और भोगसाधन वागादिक इंद्रियोंकी उत्पत्ति करी । विराट्के समष्टिशरीरमें देवतावोंकी लोकपालरूपतासे स्थिति करी । और व्यष्टिस्थूलशरीरविषे सूर्यादि देवतावोंकी किरणोंके अधिष्ठातृरूपसे स्थिति करी । तिन देवतावोंविषे ही क्षुधा तृषाकूं स्थानका दान करा । पुनः अन्नकूं उत्पन्न करि अपानवृत्तिमान् प्राणकरिके ही अन्नका ग्रहण बोध करा । पुनः सो जनक प्रवेशवासते विचार करता भया । अपानादिसहित यह संघात मेरे विना किंचित् भी कार्य करनेकूं समर्थ नहीं है । जैसे पुरस्वामि राजासे विना पुरकी शोभा होवे नहीं । तैसे मैं चेतन विना या स्थूल सूक्ष्म संघातकी सिद्धि होवे नहीं । यातें मैं या संघातविषे शब्दादिकोंके भोगवा-सते तथा अपने स्वरूपके ज्ञानवासते अवश्य प्रवेश करूं । ऐसे प्रवे-शका संकल्प करिके प्रवेशके मार्गका विचार करता भया । क्रिया-शक्तिवाले प्राणने तौ पादके अग्रमार्गकरि प्रवेश करा है । ज्ञानश-क्तिके अभावसे जड जो यह प्राण है ता प्राणकूं गुणदोष विवेक नहीं है यातें ही ता प्राणने पादाग्ररूप निकृष्ट मार्ग करिके ही या शरीरमें प्रवेश करा है और चेतनरूप मेरेकूं भी या संघातमें अब अवश्य प्रवेश करना योग्य है । परंतु जिन मार्गोंकरिके मेरे भृत्य प्राणादि-कोंने प्रवेश करा है तिन मार्गोंकरिके मुझ स्वामीकूं प्रवेश करना योग्य नहीं । ऐसे प्रवेशमार्ग चिंतन करता हुआ परमात्मा यह विचारता भया । यह वागादिक जड संघातका प्रकाशक जो मैं चेतन हूं तिस मेरे विना तौ वागादिक कदाचित् अपने कार्य करनेकूं समर्थ होवेंगे नहीं । यातें मेरेकूं अवश्य प्रवेश करना

चाहिये। ऐसे विचार करि सो परमेश्वर पिता अपनी समीपतामात्रसे मूर्द्धसीमाकूं भेदन करता हुआ। ता मूर्द्धसीमा मार्गकरिके ही या शरीरमें प्रवेश करता भया। यद्यपि यह मूर्द्धसीमारूप शिरके कपालत्रयका मध्य भाग द्वाररूपसे लोकमें प्रसिद्ध नहीं है। तथापि जबी शिरमें घृत तैलादिकोंका धारण करे तबी ता द्वारसे सर्व पुरुष ता घृतादिकोंके रसका अनुभव करे है यातें प्रत्यक्ष सिद्ध है। और 'विदृति' या नाम करिके श्रुतिविषे प्रसिद्ध है। परमेश्वरने अपने प्रवेशवासते भेदनकरिके जाकूं उत्पन्न करा हो ताकूं विदृति कहे हैं। और उपासकका बाह्यउत्क्रमण या मार्गसे होवे है। या द्वारका नाम 'नांदन' भी है। जा मार्गद्वारा निकसनेसे पुरुष आनंदकूं प्राप्त होवे ताकूं नांदन कहे हैं। या स्थानकूं अपने प्रवेश करने योग्य जानकरि ता परमात्माने या मार्गद्वारा ही प्रवेश करा। और ता परमात्माका प्रवेश भी मुख्य प्रवेश नहीं है। किंतु श्रोत्र करिके मैं श्रवण करूं नेत्रोंकरिके मैं रूपादिकोंकूं देखूं। ऐसे श्रोत्रनेत्रादिक इंद्रियोंके साथ तादात्म्य अध्यास करना ही प्रवेश है। इस प्रकार परमात्माके जीवरूपसे प्रवेशकूं कहिकरि अब देह इंद्रियादि उपाधिकरिके ता आत्मामें संसारप्राप्तिका वर्णन करे हैं। जीवरूपसे प्रवेश करा है या शरीरमें जा आत्माने ता आत्माके ही तीन स्थान निरूपण करे। जागरितअवस्थामें नेत्रइंद्रियके दक्षिणगोलकविषे आत्मा रहे है। स्वप्नअवस्थाविषे कंठस्थानमें रहे है। सुषुप्तिअवस्थाविषे आत्मा हृदयदेशमें रहे है। यद्यपि आत्मा अद्वितीयरूपसे या उपनिषद्के आदिमें निरूपण करा है। ता असंग अद्वितीय आत्माके स्थान बने नहीं तथापि स्थान सर्व सत्य होवें तब तौ आत्मा असंग अद्वितीय सिद्ध न होवे। स्थानादि सर्व मिथ्या हैं यातें वास्तवसे असंग अद्वितीय आत्मा

है। या अभिप्रायके बोधनवासते तीन स्थानोंकूं तथा तीन स्थानोंमें होनेहारी तीन अवस्थावोंकूं तथा वक्ष्यमाण पितृगर्भ मातृगर्भ और अपना स्थूलशरीररूप तीन देशोंकूं स्वप्नदृष्टांतसे मिथ्यारूपता वर्णन करे हैं। उक्त जागरित आदिक सर्व पदार्थ स्वप्नरूप हैं। यद्यपि स्वप्नभिन्न जागरित आदिकोंकूं स्वप्नरूपता बने नहीं तथापि जैसे निद्राकरिके स्वप्नमें मिथ्या पदार्थोंकूं भी सत्यरूपसे देखे है तैसे अज्ञानरूप निद्रा करिके सर्व मिथ्या पदार्थोंकूं सत्यरूपसे व्यवहार करनारूप स्वप्नकूं अनुभव करे है। और जैसे स्वप्नके पदार्थ जागरित अवस्थामें बाध होवे हैं तैसे ब्रह्मज्ञानरूप जागरणकरिके सर्व पदार्थ बाध होवे हैं। यातें सर्व पदार्थ स्वप्नकी न्याईं मिथ्या भी हैं, परंतु अज्ञानरूप निद्राकरि सत्यरूपसे माने हैं। जैसे गाढ निद्राकरि शयन करते हुए पुरुषकूं ताके श्रोत्रदेशके समीप भेरीके बजानेकरि जगावे हैं तैसे अज्ञानरूपी घोर निद्राकरि शयन करता जो यह जीवात्मा है ताकूं परम कृपालु ब्रह्मज्ञानी गुरु महावाक्यरूप महा भेरीके उपदेशरूपी बजानेसे जगावे है। तबी यह जीव ब्रह्मज्ञानरूपी जागरणकूं प्राप्त हुआ अपने शुद्धसच्चिदानंद ब्रह्मरूपकूं निश्चय करे है। यह आत्मा आप ही अपरोक्षरूपसे अपने स्वरूपकूं निश्चय करता भया इसीसे ता आत्माका नाम इंद्र भया। यद्यपि इंद्रनामसे आत्मा बृहदारण्यक आदिक उपनिषदोंमें प्रसिद्ध है। तथापि ब्रह्मवेत्ता परमात्माका परोक्षरूपसे ही नाम कहे हैं। दकार अक्षरकूं दूर करि इन्द्रके स्थानमें इंद्र कहे हैं। तामें हेतु यह है। जे या संसारमें पूज्य हैं तिनका परोक्षरूपसे ही नाम कहना योग्य है। इसीसे आचार्य आदिक भी गुरुजी दीक्षितजी शास्त्रीजी स्वामीजी इत्यादि परोक्षरूपसे बुलानेकरि ही प्रसन्न होवें हैं। साक्षात

देवदत्त विष्णुदत्तादि स्वनामसे बुलाये हुए प्रसन्न होवे नहीं। और स्त्री आदिक भी स्वपतिआदिकोंके नामकूं साक्षात् नहीं कहे हैं। किंतु हे स्वामिन्! इत्यादि परोक्षरूपसे उच्चारण करे हैं। यातें जे सात्त्विक देवता हैं ते परमेश्वरका परोक्षरूपसे नाम कहेहैं। ऐसे वामदेवादिक मुमुक्षुरूप सात्त्विकी प्रजाकूं सनकादिक ऋषि अध्यारोप और अपवादरीति करिके आत्माका उपदेश करते भये। ऐसे उपदेशकूं करिके कहते भये हे सात्त्विकी प्रजा! हम ता आत्माके साक्षात् उपदेश करनेविषे समर्थ नहीं। इसीसे हमने अध्यारोप अपवादरीति करिके ही ता आत्माका उपदेश तुम अधिकारी जनोंकूं करा है। स्वप्रकाश आत्माके साक्षात् उपदेश करनेविषे तौ कोई समर्थ नहीं है। और आचार्य भी केवल रीतिमात्रसे आत्माका उपदेश करे हैं। ज्ञानकारण तौ अधिकारीकी अपनी युक्ति आदिकोंविषे चातुर्य है। जैसे उपदेष्टा पुरुषने तो कह दिया जो बदरिकाश्रम उत्तर दिशामें है ता बदरिकाश्रमकी प्राप्ति ता पुरुषके उद्यमसे तथा ऊहापोहरूप चातुर्यसे होवे है। तैसे आत्माका उपदेश आचार्य करे हैं ता आत्माकी प्राप्ति तौ शिष्यके मननादिरूप विचारसे होवे है। यातें हे ऋषयः! ज्ञान विना मोक्षप्राप्ति होवे नहीं। ता ज्ञानकी प्राप्ति वैराग्य विना होवे नहीं। वैराग्यकी प्राप्ति संसारमें दोषदृष्टि विना होवे नहीं। ऐसे उपदेशकूं करिके सनकादि ऋषि तौ अन्तर्धान होते भये। सात्त्विकी प्रजारूप ऋषि मिलकरि विचार करते भये। ऋषि आपसमें कहे हैं। हे ऋषयः! हमारे बडे उत्तम भाग्य हैं जिन भाग्यकरी हमारे सनकादिक गुरु भये। परंतु हमारेमें वैराग्यके अभावसे तिन सनकादिकोंका उपदेश अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानकूं न उत्पन्न करता भया किंतु परोक्ष ज्ञानकूं ही

उत्पन्न करता भया। यामें हमारा ही दोष है। कोई महात्माओंके उपदेशविषे दोष नहीं। यातें हे सज्जनो! हम वैराग्यकी उत्पत्तिवासते संसारमें दोषोंकूं विचारें। प्रथम तौ या शरीरमें विचार करने योग्य है। यह जीव जबी अनन्त यत्नोंकरि अग्निहोत्रादिकोंकूं करे है। ता कर्मोंकरि स्वर्गमें प्राप्त हुआ भोगोंकूं भोगकरि वृष्टि आदि द्वारा अन्नमें प्राप्त होवे है। ता अन्नकूं जबी पुरुष भक्षण करे तबी या जीवका पुरुषके शरीरमें वीर्यरूपसे प्रवेश होवे है अन्नादिद्वारा वीर्यरूपसे पिताके उदरमें स्थित होना ही ता जीवका प्रवेश जानना। ता वीर्यरूप जीवकूं पिता अपने स्वरूपसे ही धारण करे है। ऐसे पिताके शरीरमें जीवकी प्राप्तिकूं वर्णन करिके अब माताके उदरमें प्राप्तिकूं कहे हैं। ऐसे पुरुषके उदरमें वीर्यरूपसे प्राप्त भया यह जीव जबी पिता ऋतुमती स्त्रीके साथ रमण करे है तबी माताके उदरमें प्राप्त होवे है। माताके उदरमें प्राप्त होना यह जीवका प्रथम जन्म है। ता माताके उदरमें प्राप्त हुआ यह जीव स्त्रीके अपने अंगरूप होइकरि रहे हैं। यातें ही ता माताका यह जीव नाश करे नहीं। इस पितारूप मनुष्यकूं क्लेश देनेहारा जो यह वीर्यरूप पुत्र है। ताकूं या स्त्रीने धारण करा है। यातें उपकारके करनेहारी स्त्रीका अन्नवस्त्रादिकों करिके पुरुषकूं अवश्य पालन करना उचित है या पुरुषके आत्मारूप पुत्रकूं यह स्त्री अपने उदरमें अनेक अनुकूल भोजनादिकोंके करनेसे रक्षा करे है और पिता भी पुत्रकी उत्पत्तिसे प्रथम नाना प्रकारके मंत्रोच्चारणादिरूप कर्मकूं करे है। जन्म हुएसे पश्चात् जाति कर्मादिकोंकूं करे है। अब जा प्रयोजनवासते पिताने पुत्रकूं उत्पन्न करा है ता प्रयोजनकूं निरूपण करे हैं। पुत्र विना पुरुषकी या लोकमें शोभा होवे नहीं। तथा पौत्रा-

दिरूप संतानवृद्धि भी पुत्र विना होवे नहीं। और श्रेष्ठ धर्मात्मा पुत्रकरिके पिताकूं स्वर्गलोककी प्राप्ति होवे है। यातें या लोककी न्याईं स्वर्गकी प्राप्तिका कारण भी पुत्र है। और मोक्षप्राप्ति तौ ज्ञान विना होवे नहीं। यातें शुभ पुत्र लोकोंका ही कारण है। मोक्षप्राप्तिका कारण नहीं और मनुष्य देहकूं कर्मउपासना ज्ञानद्वारा सर्व फलका हेतु होनेसे देवादिक भी या मनुष्यदेहकी इच्छा करे है। यातें या भारतखण्डविषे द्विजजन्मकूं प्राप्त होइकारि ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवासते यत्न अवश्य करना। ऐसे द्वितीय जन्मकूं प्राप्त भया जो पुत्र है ताकूं पिता शास्त्रीय पुण्य कर्मोंके करने वासते प्रतिनिधिरूपसे अपने स्थानमें स्थापन करे है। पिता तौ देवऋण पितृऋण ऋषिऋण इन तीन ऋणोंसे रहित होइकारि वृद्ध अवस्थाकूं प्राप्त हुआ शरीरकूं त्याग करे है। या जीर्ण देहकूं त्याग कारि तृणजलौकाकी न्याईं द्वितीय नवीन देहकूं प्राप्त होवे है। या जीर्ण देहकूं त्यागकर द्वितीय नवीन देहकूं प्राप्त होना यह ही पुत्रका तृतीय जन्म है। यद्यपि पिताके गर्भसे माताके गर्भमें आना यह एक जन्म और द्वितीय जन्म माताके गर्भसे बाह्य निकसना भी पुत्रका बने है। तृतीय जन्म तौ पिताका होवे है। एक ही पुत्र आत्माका तृतीय जन्म बने नहीं। तथापि पुत्र आत्मा तथा पिता आत्मा वास्तवसे एक ही विवक्षित है यातें किंचित् विरोध नहीं। और जैसे पिता जीर्ण हुआ कर्मकरणादिक पुत्रकूं अर्पण कारिके मृत हुआ स्वकर्मके अनुसार द्वितीय जन्मकूं प्राप्त होवे है तैसे पुत्र भी स्वपुत्रके शिरपर सर्व भार अर्पण करके मृत होवे है। तैसे पौत्र प्रपौत्रादिक भी अपने कर्मके फलकूं भोगकारि नाशकूं प्राप्त होवे हैं। ऐसे पुण्यात्माकी स्वर्गसे गिरकारि या मनुष्य देहमें प्राप्ति होवे है। पुनः मनुष्यदेहसे स्वकर्म अनुसार शुभ

अशुभ योनिकी प्राप्ति होवे है। भो ऋषयः! जे पुरुष पापात्मा हैं तिनका तौ स्वर्गमें गमन होवे नहीं किन्तु नरक प्राप्ति वा स्वपाप-कर्मके अनुसार सर्पादि तिर्यग्योनियोंकी प्राप्ति होवे है। मिश्रित कर्मवाले भी पापकी अधिकतासे म्लेच्छादिक जे जातिसे अधम तथा धनरहित और पापात्मा हैं तिनके गृहमें उत्पन्न होवे हैं। पुण्योंकी अधिकतासे उत्तमजातिवाले सत्संगी धनिकोंके गृहमें उत्पन्न होवे हैं। ऐसे यह जीव ब्रह्मबोध विना स्ववासना कर्मानुसार संसारमें घटी यन्त्रकी न्याईं फिरे हैं। या संसारकी ब्रह्मबोध विना कदाचित् भी निवृत्ति होवे नहीं। हे सज्जनाः! हमने भी दुःखरूप या संसारमें अनित्यता तथा स्वर्ग आदिकोंसे कर्मफलभोगके पश्चात पतन आदिकोंकरि महान् क्लेश ही अनुभव करे हैं। ऐसे दुःखरूप संसारसे हमारा चित्त विरक्त भया है। यातें अब हम ब्रह्मविचारकूं करें। ता विचार करनेके कालमें वामदेवमहात्मा मृत्युकूं प्राप्त भया। भावी प्रतिबन्धके वशसे पूर्वजन्ममें सनका-दिकोंके उपदेशसे भी वामदेव महात्माकूं ज्ञान भया नहीं। माताके गर्भमें नव मासके अनन्तर प्रारब्ध कर्मके भोगसे निवृत्त भये। ता कर्मरूप भावी प्रतिबन्धके अभावसे सो वामदेव ऋषि ज्ञानकूं प्राप्त भया। और जिन ऋषियोंके साथ मिलकर विचार करा था तिन मित्ररूप ऋषियोंकूं या प्रकारके वचनोंकूं माताके गर्भमें स्थित हुआ वामदेव कहता भया। अब वामदेवके अनुभवकूं वर्णन करे हैं। वामदेव उवाच। हे ऋषयः! मैं ही पूर्वादि दश दिशाओंमें व्यापक हूँ। मैं ही सूर्य भगवान् रूप हूँ। इन्द्र यम कुबेर वरुण इत्यादि जे लोकपाल अनंतशक्ति संपन्न हैं ते सर्व मेरे ही स्वरूप हैं। मेरेसे भिन्न नहीं है। ब्रह्मासे आदि जे प्राणी अंडज जरायुज स्वेदज उद्भिज्ज रूप हैं ते सर्वरूप मैं हूँ। महान् आश्चर्य है। मैं सर्व अग्नि वायु आदि

देवताओंके जन्मोंकूं जानता हूं। जन्म अस्तिता वृद्धि परिणाम क्षीणता नाश यह षट्विकार स्थूलदेहके धर्म हैं मैं तो सूक्ष्म तथा कारणशरीरका भी अधिष्ठान हूं। कल्पितके धर्मोंकरि मैं अधिष्ठानकी किंचित् हानि होवे नहीं। जैसे मृगतृष्णाकी नदीके जलकरि पृथिवी गीली होवे नहीं तैसे मैं अधिष्ठानविषे स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंके धर्मोंका संबन्ध नहीं और जैसे श्येनपक्षी बलवाला होवे है ताकूं लोहके पिंजरेकरि निरोध करे हैं। परंतु कोई बलवान् जो श्येन है सो अपने वज्र समान तुंडकरिके पिंजरेके नीचे देशकूं भेदन करि बाहर निकसनेसे आनन्दकूं प्राप्त होवे है तैसे अज्ञानरूप लोहकरि रचित जे चौरासी लक्षयोनिरूप पुरियां हैं यह योनि ही पिंजर हैं रागद्वेषादिरूप जा पिंजरेमें कील हैं। ब्रह्मज्ञानरूपी तुंडकरि पंचकोशोंमें आत्मत्व अध्यासरूप पाशकूं मैंने निवृत्त करा है। ब्रह्मज्ञानकरि अज्ञान निवृत्त होनेसे देहादिकोंमें अध्यासरूप पाशनिवृत्त स्पष्ट ही है। हे ऋषयः! महात्मा सनकादिकोंने जो उपदेश करा था ता उपदेशकरि ही मेरेकूं ब्रह्मबोध भया है। ता बोधके प्रतापकरि मैं मृत्युसे भी भयकूं प्राप्त होता नहीं। काहेतें जो जन्मवाला है ताका मृत्यु अवश्य नाश करे है। मैं अजन्मा हूं यातें मेरे मारनेकूं मृत्यु समर्थ नहीं और मृत्युका भी मैं आत्मा हूं अपने नाश करनेमें मृत्यु कैसे प्रवृत्त होवेगा। जैसे अग्नि स्वभिन्न काष्ठादिकोंका दाह करे है अपने नाश करनेमें समर्थ नहीं तैसे मृत्यु अपनेसे भिन्नके मारनेविषे तौ समर्थ है मृत्युका भी आत्मा जो मैं हूं मेरे मारनेमें मृत्यु समर्थ नहीं। जैसे अन्यके दुःखकरि अन्य द्वितीयपुरुषकूं दुःख होवे नहीं। तैसे जन्म जरा मृत्यु आदि देहके धर्मोंकरिके देहसे भिन्न जो मैं हूं मेरा जन्म जरा मरण आदि कदाचित्

होवे नहीं ! हे ऋषयः ! आत्मबोध शून्यपुरुषोंकूं यह अष्टदोष अचिकित्स्य हैं । अर्थ यह ज्ञान विना जिनकी ओषधि द्वितीय नहीं है । प्रसंगसे तिन दोषोंका अब निरूपण करे हैं । इच्छा द्वेष भय मोह क्षुधा तृषा निद्रा मलमूत्रकी पीडा यह अष्ट दोष हैं। इन अष्टदोषोंकी संसारमें व्यापकता कहे हैं । संसारमें सात्विक राजस तामस भेदसे तीन प्रकारके पुरुष हैं । सात्विक जे मुमुक्षु हैं ते मोक्षकी इच्छा करे हैं । राजसपुरुष मोक्ष और विषय दोनोंकी इच्छा करे हैं । तामस तौ केवल विषयोंकी इच्छा करे हैं । इच्छा विना कोई जीव नहीं है । सात्विकका विषयोंसे द्वेष है । राजसका शत्रुवोंसे द्वेष है । तामस शत्रुवोंसे तथा मित्रोंसे तथा संतजनोंसे द्वेष करे हैं । ऐसे द्वेष भी देहधारी जीवोंमें रहे हैं । सात्त्विककूं प्रमादसे भय है । राजस पुरुषोंकूं यमराजसे भय होवे है। तामसकूं राजासे तथा राजाके भृत्यादिकोंसे भय प्राप्त होवे है । ऐसे सर्व प्राणियोंविषे भय व्याप्त है । सात्विक पुरुषकूं आत्माका अज्ञानरूप मोह है । राजसकूं शास्त्र विद्याका तथा आत्माका अज्ञान है तामस सर्वविषे अज्ञानवाला है । ऐसे सर्व प्राणियोंमें मोह व्याप्त है । क्षुधा तृषा निद्रा यह तीनों सात्विक राजस तामसमें समान हैं । मलमूत्रकी पीडा वृक्षादिकों विना सर्वमें समान है । अथवा वृक्षादिक भी गूंद राल आदिकोंकूं त्याग करे हैं । ऐसे ब्रह्मज्ञान विना यह अष्टदोष कदाचित् निवृत्त होवे नहीं । मैं तौ महात्मा कृपालु सनकादिकोंके उपदेशसे ब्रह्मज्ञानकूं प्राप्त हुआ अष्टदोषोंसे रहित भया हूं। भो ऋषयः ! यह अष्टदोष मन आदिकोंके धर्म हैं । मैं शुद्ध सच्चिदानंद परिपूर्ण आत्माकूं स्पर्श करे नहीं। इच्छा द्वेष भय मोह यह च्यारि तौ मनमें रहे हैं यातें मनका धर्म है । क्षुधातृषा यह दोनों प्राणका धर्म है । निद्रा

इंद्रियोंका तथा मनका धर्म है। मलमूत्रकी पीडा या स्थूलदेहका धर्म है। मैं तौ मन आदिकोंका साक्षी हूं ता साक्षी आत्माविषे मन आदि साक्ष्यका तथा साक्ष्यमन आदिकोंके धर्मोंका संबंध बने नहीं। हे ऋषयः! माताके गर्भरूप अग्निकुण्डविषे मैं वामदेव स्थित हुआ भी ब्रह्मज्ञानरूप पौर्णमासीके चंद्रमाकी शीतलता करिके गर्भके दुःखरूप तापकूं प्राप्त होता नहीं। यातें ज्ञानके फलमोक्ष प्राप्तिमें तुमने कदाचित् संशय करना नहीं। ऐसे आत्मज्ञानका उपदेश करता हुआ वामदेवऋषि माताके गर्भसे बाहर निकसकरि सनकादिकोंके समान या संसारमें अपनी इच्छानुसार विचरता भया। जैसे सनकादिक अपनी इच्छानुसार ब्रह्मलोकपर्यंत विचरे हैं। तैसे परमजीवन्मुक्त वामदेव भी ब्रह्मलोकपर्यंत किसी करिके भी निरोधकूं न प्राप्त हुआ विचरता भया। और या लोकमें होनेहारे विषयानंदकी तथा परलोकमें होनेहारे विषयानंदकी इच्छाकूं जा वामदेवने प्रथम जन्मविषे ही निवृत्त करा है। ऐसे अपने प्रारब्धकूं भोगकरिके क्षय करता हुआ वामदेवऋषि विदेहकैवल्यकूं प्राप्त भया। ऐसे वामदेवके वचनोंकूं श्रवण करिके अधिकारी मुमुक्षु परम आश्चर्यकूं प्राप्त हुए आपसमें यह कहते भये। महान् आश्चर्य है यह वामदेव किसी पुण्यके प्रभावसे परममोक्षकूं प्राप्त भया। हम खाली रह गये जैसे गउवोंका समूह पंकविषे निमग्न होइ जावै तिनमेंसे कोई एक गौ अपनी भुजाके बलसे तथा पुण्यके प्रभावसे निकस जावे। और जैसे जालकरि बांधे पक्षियोंके मध्यसे कोई एक पक्षी पुण्यके प्रतापसे निकस जावे तैसे मोहरूप पंकविषे निमग्न जे हम हैं तथा काम क्रोधादि पाशोंकरि बांधे जे हम हैं तिन सर्वसे वामदेव मुक्त भया है। जैसे दुर्भिक्ष आदि उपद्रवके प्राप्त हुए भी

मोहके वश भये पुरुष गृहविषे ही क्लेशकूं अनुभव करे हैं। कोई पुरुष मोहरहित हुआ ता देशका परित्याग करिके सुखकूं प्राप्त होवे। तैसे हम सर्वसे निकसकरि मोहरहित हुआ वामदेवऋषि आनंदकूं प्राप्त भया है। जैसे मार्गविषे मिलकरि सर्व गमन करे हैं तिनमेंसे कोई पुरुष स्वर्णनिधिकूं प्राप्त होवे। तैसे वामदेव ब्रह्मज्ञानरूप निधिकूं प्राप्त भया है। जैसे बहुत विद्यार्थी गुरुकी सेवाकरि वेदका पठन करे हैं। परंतु कोई पुण्यात्मा निपुणमति समग्रविद्याकूं प्राप्त होइकरि आनंदकूं प्राप्त होवे है। तैसे वामदेव ब्रह्मविद्याकूं प्राप्त भया है। जैसे अणिमादि सिद्धियोंकी प्राप्तिवासते तप मंत्र जपादिकोंकूं अनेक पुरुष करे हैं। तिनमेंसे कोई एक पुरुष अपने पुण्यप्रभावसे महान् सिद्धिकूं प्राप्त होइ जावे तैसे हम सर्वमेंसे एक वामदेव ज्ञानरूप सिद्धिकूं प्राप्त भया हम सर्व खाली रह गये। जैसे बहुत व्याध मिलकरि मृगोंकूं पकड लेवे। तिनमेंसे कोई एक मृग अपने पुण्यके प्रभावसे निकस जावे। तैसे हम सर्वके मध्यसे यह वामदेव निकस करि आनंदकूं प्राप्त हुआ है। या वामदेवकूं गर्भविषे भी ज्ञान उत्पन्न भया है। हमारेकूं पृथिवीमें गुण शास्त्रादि उपाय सहस्रके प्राप्त होते भी ज्ञान भया नहीं। और वामदेव महात्माने माताके गर्भविषे स्थित होइकरि जो हमारेकूं उपदेश करा है सो केवल ता महात्माकी कृपा है कोई स्नेह नहीं।यदि स्नेह कहैं तौ मातापिताकूं ता वामदेवने किसवासते उपदेश न करा।गर्भसे बाहिर निकसता ही वनमें गमन करता भया है। किसी प्राणीविषे ता वामदेवका मोह नहीं है। यातें जैसे सनकादिकोंने केवल कृपासे हमारे ताईं उपदेश करा था तैसे कृपापरवश वामदेव माताके गर्भविषे स्थित हुआ भी हमारे ताईं उपदेश करता भया है। हमारे बड़े मंदभाग्य हैं। जो हम किसी पुण्यके प्रभावसे या भरतखंडविषे अधिकारी

देहकूं प्राप्त भये भी । सनकादिकोंने तथा वामदेव महात्माने हमारे ताईं उपदेश करा भी परंतु हम मंद ब्रह्मबोधकूं न प्राप्त भये । और कालकूं हमने व्यर्थ ही व्यतीत करा ब्रह्मबोधसे रहित हुए हम अब पर्यंत दुःखकूं ही अनुभव करे हैं । या लोकविषे जैसे विषय सुखदुःख मिश्रित हैं । तैसे स्वर्गलोकविषे भी हमने दुःखकूं ही अनुभव करा है । काहेते स्वर्गलोकमें यह तीन दोष तौ स्पष्ट हैं । एक यह जो न्यून पुण्यकर्मसे जे न्यून भोगवाले पुरुष हैं ते अधिक भोगवाले पुरुषोंके साथ ईर्षा करे हैं । याकूं सातिशय दोष कहे हैं । द्वितीय पराधीनता दोष है । इंद्रादिकोंके अधीन ही देवता रहे हैं । तीसरा यह जे स्वर्गमें स्थित देवता हैं तिनकूं यह ज्ञान होवे है जो हमने एते पुण्यका फल भोग लिया है । एता अबी शेष रहता है । या कर्मके फलकूं भोगकरि हम पृथिवीविषे अवश्य गिरेंगे । ता गिरनेका भय देवतावोंकूं सर्वदा तपावे है । यह भयरूप तीसरा दोष है । हे अधिकारिजनाः ! हम स्वकर्मोंके अनुसार या संसारमें कबी स्वर्गकूं कबी नरककूं कबी या पृथिवीलोकविषे मनुष्यदेहकूं कबी तिर्यग्देहकूं प्राप्त भये । ऐसे संसारमें दोषदर्शनसे हमारेकूं वैराग्य तौ भया है । अब हम मिलकरि ब्रह्मबोधवासते आत्माका विचार करें । जा आत्माका हमारेकूं सनकादिकोंने उपदेश करा है । सो आत्मा कौन है । स्थूलदेह तौ प्रत्यक्ष जड भौतिक परिच्छिन्न होनेसे अनात्मा है । यदि इंद्रियोंकूं आत्मा मानें तामें भी यह विचारणीय है । एक एक इंद्रिय आत्मा है वा सर्व मिलकरि तिनका समुदाय ही आत्मा है । एक एकमें भी यदि नेत्रकूं आत्मा मानें तौ अंधका जीवन नहीं होवेगा । यदि श्रोत्रकूं आत्मा माने तौ बधिरका जीवन नहीं होवेगा । अन्य इंद्रिय आत्मा माननेविषे भी यह दोष समान है । यातें एक एक इंद्रिय आत्मा बने

नहीं । यदि तिन इंद्रियोंका समुदाय ही आत्मा माने तौ एक नेत्र इन्द्रियरहित जो अंधपुरुष है तामें नेत्रघटित समुदायका अभाव होनेसे ता अंधका जीवन नहीं हुआ चाहिये । और जबी सर्व इंद्रियोंकूं आत्मा माने तौ सर्वका एक जैसा संकल्प होना दुर्घट है। एक कहेगा मैं बाहिर जाता हूं द्वितीयका अंतर रहनेका संकल्प है । ऐसे जबी विरुद्ध संकल्प करेंगे तौ शीघ्र ही या देहका नाश होवेगा । यातें इंद्रिय आत्मा नहीं और प्राण मन विज्ञान चित्त अहंकार इन सर्वमें दृश्यत्व परिच्छिन्नत्व भौतिकत्व ममता विषयत्वादिकोंके अनुभव होनेसे अनात्मता जाननी योग्य है । ग्रंथविस्तारके भयसे हमने और युक्ति विशेष लिखी नहीं । यह आत्मा ही या शरीरमें साक्षीरूपसे प्रवेश करता भया और या आत्मा साक्षी करिके ही पुरुष नेत्रसे रूपकूं देखे है । तथा या आत्मा करिके श्रोत्रसे शब्दकूं श्रवण करे है। और या आत्माकरिके घ्राणइंद्रियद्वारा पुरुष गंधकूं जाने है । या आत्मा करिके ही यह वाक्इंद्रिय नाना प्रकारके संस्कृत भाषादि शब्दोंकूं उच्चारण करे है। या आत्माकरिके ही रसनाइंद्रियद्वारा नानाप्रकारके मधुरादि स्वादु अस्वादु रसकूं जाने है । ऐसे या साक्षी आत्माकूं त्रिविध परिच्छेदशून्यरूपसे हमने निश्चय करा है। आत्मा नित्य होनेसे कालपरिच्छेदका ता आत्मामें अभाव है । सर्वत्र व्यापक होनेसे ता आत्मामें देशपरिच्छेद नहीं। इसी आत्माकूं ही सर्वरूप होनेसे आत्मामें वस्तुपरिच्छेद भी नहीं । आत्माका हमारे ताईं सनकादिक ऋषियोंने उपदेश करा था । और परम कृपालु वामदेवने भी या अद्वितीय आत्माका उपदेश करा है । तिन पुरुषोंकी कृपासे तथा वारंवार आपसमें मिलकरि विचार करनेसे अबी या आत्माका हमारेकूं निश्चय भया है । हे सज्जनो ! हमने

वृत्तियोंसहित जो साक्षी आत्मा निश्चय करा है, यह आत्मा ही वास्तवसे अन्तःकरण और वृत्तिउपाधिसे शून्य शुद्ध स्वरूप है। यातें आगे होनेहारे अधिकारी जनोंकूं आत्मबोध प्राप्त होवे इसी प्रयोजनवासते आत्माके नामोंकूं हम अर्पण करें। तात्पर्य यह जैसे हमने हृदयादि पदों करिके या शुद्ध आत्माका उपाधिकूं त्यागकरि निश्चय करा है। तैसे अधिकारी भी हृदयादि नामोंकरिके उपाधिकूं त्यागकरि शुद्ध आत्माकूं निश्चय करेंगे। अब आत्माके नामोंकूं कहे हैं। प्रथम आत्माका नाम हृदय है। हृदयविषे ही आत्मा प्रत्यक्ष होवे है। उपासना भी आत्माकी सगुणरूपसे वा निर्गुणरूपसे हृदयविषे होवे। यातें या आत्माकूं हृदयनामसे निरूपण करा है। आत्मा सर्वकूं मनन करे है। तथा मनकरिके ही ता आत्माका निश्चय होवे है। या दो निमित्तोंसे आत्माकूं मन कहे हैं। और आत्मा ही अपनेविषे कल्पित जगत्कूं प्रकाशे है यातें या चेतनकूं संज्ञान कहे हैं। सूर्य इन्द्र चन्द्र वायु अग्नि वरुण यम कुबेरादि सर्व प्राणी या आत्माकी आज्ञाविषे रहे हैं। यातें ता आत्माका अज्ञान यह नाम है। यह आत्मा ही गीत वाद्य आदि चौंसठ कलाके ज्ञानवाला है। यातें या आत्माकूं विज्ञान कहे हैं। वर्तमान पदार्थकूं यह आत्मा जाने है। यातें या आत्माकूं प्रज्ञान कहे हैं। यह आत्मा ही ग्रंथके अर्थकूं धारण करे है। यातें या आत्माकूं मेधा कहे हैं। यह आनन्दरूप आत्मा ही इन्द्रियोंकरिके घटादिकोंकूं प्रकाशे है। यातें दृष्टि कहे हैं। जा अन्तःकरणकी वृत्तिसे दुःखित हुआ भी पुरुष इन्द्रियोंकूं धारण करे है। ता वृत्तिविशिष्ट आत्माका नाम धृति है। यह आत्मा ही सर्व प्राणियोंके हृदयदेशविषे स्थित हुआ शुभ अशुभकूं जाने है। यातें या आत्माकूं मति या नामसे कहे है। संकल्पविकल्परूप मनकूं अधीन करने-

हारी बुद्धिकी जा वृत्ति है ता वृत्तिविशिष्ट हुए या आत्माकूं मनीषा कहे हैं। अध्यात्मादि त्रिविध दुःखकरि उत्पन्न भयी जा अंतःकरणकी वृत्ति ता वृत्तिका प्रकाशक होनेसे या आत्माकूं जूति कहे हैं। भूतपदार्थकूं स्मरण करनेहारी जा वृत्तिके साथ मिलनेसे आत्माकूं स्मृति कहे हैं। शुक्ल पीत रक्तादि अनेक रूपसे ही आत्मा ही सम्यक् कल्पना करे है। यातें आत्माकूं संकल्प कहे हैं। यह आत्मा ही घटादिकोंके निश्चय करनेसे क्रतु कहावे है। यह आत्मा अपनी समीपता करिके प्राणोंकी चेष्टाकूं करावे है। यातें आत्माकूं असु कहे हैं। दूरप्राप्त विषयकी तथा दुःखनिवृत्तिकी इच्छाकूं करे है यातें या आत्माकूं ही काम कहे हैं। स्त्रीसुखकी पुरुषकूं जा अभिलाषा है ता अभिलाषारूप वृत्तिकूं यह आत्मा प्रकाश करे है यातें या आत्माकूं वश कहे हैं। यह १८ अष्टादश नाम आत्माके हमने निरूपण करे। अंतःकरण और अंतःकरण-वृत्तियोंकूं आत्मा प्रकाश करे है यातैं हृदय आदि ता आत्माके नाम हैं। अंतःकरणकी वृत्तियोंके त्याग करनेसे यह प्रकाश-रूप आत्मा ही शुद्धात्मा है। और वास्तवसे तौ आत्मासे भिन्न भूतभौतिकप्रपंच किंचित्मात्र भी नहीं है। यातें देवदत्त यज्ञ-दत्त घट पट कुड्य वृक्षादि यह सर्व नाम आत्माके हैं। हमने जे हृदयादि पूर्व नाम निरूपण करे हैं सो हमने आत्माकूं अंतःकर-णविषे साक्षीरूपसे प्रथम निश्चय करा है। यातें ही अष्टादश नाम निरूपण करे हैं। वास्तवसे सर्व नाम आत्मदेवके हैं। यह आत्मादेव ही सूक्ष्म समष्टिशरीरका अभिमानी ब्रह्मरूप है। तथा स्थूल समष्टिशरीरका अभिमानी विराट्रूप है। तथा यह आत्मा-देव ही अपने स्वरूपकूं प्रत्यक्ष करता भया यातें इन्द्र कहे हैं। अथवा प्रसिद्ध देवराज इन्द्र ही आत्मा हैं। यह आत्मा ही प्रजा-

पति अग्नि वायु वरुण यमादि सर्व देवरूप है। पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश यह पंचभूत आत्मासे भिन्न नहीं। सर्पादिक जे तुच्छ जीव हैं तथा सर्पादिक ही द्वितीय सर्पादिकोंके कारण हैं। ते सर्पादिक तथा अंडज पक्षी आदिक तथा जरायुज मनुष्यादिक स्वेदज यूकादिक उद्भिज्ज वृक्षादिक अश्व गौ पुरुष हस्ती जे प्राणी पादोंकरिके गमन करनेहारे हैं। जे प्राणी आकाशमें गमन करनेहारे हैं तथा जे वृक्षादि स्थावर प्राणी हैं ते सर्व ही आत्मरूप हैं। आत्मासे भिन्न कोई प्राणी नहीं है। ऐसे शरीरोंकूं यह आत्मा ही उत्पन्न करे है। ता आत्मदेवने उत्पन्न करना भी मिथ्या ही है और विना प्रयोजनसे है। जैसे मायावी राक्षसोंका बालक विना प्रयोजनसे नाना प्रकारके पदार्थोंकूं अपनी मायाकरि उत्पन्न करे है और अपनेविषे लय करे है। तैसे यह आत्मा भी अपनी मायाके बलकरि अनंत पदार्थोंकूं विना प्रयोजनसे उत्पन्न करे है। अपने विषे ही लय करे है। जैसे राक्षसोंके बालककी मायाकरि रचित पदार्थ मिथ्या हैं। तैसे आत्माकी मायाकरि रचित पदार्थ मिथ्या हैं। यह आत्मादेव सजातीय विजातीय स्वगतभेदसे रहित है। तथा ज्ञानरूप है यातें प्रज्ञा कह्या जावे है तथा प्रज्ञान कह्याजावे है। जैसे वृक्षके सजातीय द्वितीय वृक्ष हैं पाषाणादि वृक्षसे विजातीय हैं। पत्रपुष्पादिक स्वगत कहिये हैं या ब्रह्मात्माके सदृश द्वितीय ब्रह्मात्मा नहीं यातें सजातीय भेद नहीं अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मात्माविषे कल्पित है यातें या ब्रह्मात्माविषे विजातीय भेद नहीं। निरवयव होनेसे आत्माविषे स्वगतभेद भी नहीं। प्रज्ञानरूप ब्रह्म ही सर्वविषे व्यापक है। यह संपूर्ण नामरूप जगत् प्रज्ञानरूप ब्रह्मविषे स्थित है। या सर्वलोकका प्रज्ञानरूप ब्रह्म ही नेत्र है। अर्थ यह जैसे चर्ममय नेत्र तथा इन नेत्रोंविषे स्थित जो नेत्रइंद्रिय ता करिके

हमारा बाह्य व्यवहार सिद्ध होवे है । तैसे प्रज्ञानरूप ब्रह्मकरिके ही हमारा सर्व व्यवहार सिद्ध होवे है । मांसमय नेत्रगोलक तथा इनके भीतर जो नेत्रइंद्रिय है, सो जगत्का आश्रय नहीं । और यह प्रज्ञानब्रह्मरूप नेत्र तौ सर्वजगत्का आश्रय है । प्रज्ञानरूप नेत्र ही साक्षीरूपसे मनुष्य देव गंधर्व पशु वृक्षादिकोंविषे स्थित है । ऐसे प्रज्ञानरूप आत्माकी साक्षीरूपसे स्थितिकूं कथन करिके महावाक्यकूं कहे हैं । 'प्रज्ञानं ब्रह्म' अर्थ यह जा साक्षी आत्माके अष्टादश नाम प्रतिपादन करे हैं । यह साक्षी चेतनरूपसे सर्वमें स्थित है। यातें यह साक्षी ही ब्रह्म है । या प्रज्ञानकूं जो विद्वान् ब्रह्मरूप जानता है सो विद्वान् वामदेवकी न्याईं देहादिकोंविषे आत्माभिमानकूं त्यागकरि सुखस्वरूप ब्रह्मकूं प्राप्त हुआ सर्व कामनाओंकूं प्राप्त होवे है । तथा अमृतत्वभावकूं प्राप्त होवे है । जैसे सनकादिकोंके उपदेशसे तथा वामदेवके उपदेशसे अधिकारी वैराग्यादिसाधनसंपन्न ऋषि ज्ञानद्वारा मोक्षकूं प्राप्त भये । तैसे जो कोई और अधिकारी भी वैराग्यादि साधनोंकरिके ज्ञानकूं प्राप्त होवे है । सो पुरुष जीवन्मुक्तिकूं तथा विदेहमोक्षकूं प्राप्त होवे है॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्रजकाचार्य--श्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्य-संप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वामि-अच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे ऐतरेयार्थनिर्णयः ॥ ८ ॥

इत्यैतरेयोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम् ॥ ८ ॥

ॐ

अथ छांदोग्योपनिषद्भाषांतरम् ।

ॐ नमस्तस्मै गणेशाय ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥ यस्यागस्त्यायते नाम विघ्नसागरशोषणे ॥ १ ॥ या मंगलश्लोकका अर्थ यह है, तिस गणपतिके तांई हमारा वारंवार नमस्कार है । जो गणपति ध्यान करनेसे ब्रह्मविद्याका प्रदाता है । और जिस गणपतिका नाम विघ्नरूप समुद्रके शोषण करनेमें अगस्त्यऋषिकी न्याई वर्त्ते है । अब सामवेदकी छांदोग्यउपनिषद्के सार अर्थकूं दिखावे हैं । प्रथम ॐकारकी उपासना ऐसे लिखी है । ॐ या अक्षरकूं उद्गीथरूपसे ध्यान करे जैसे पटके एकदेशके दाह होनेसे पटका दाह भया यह कह्या जावे है तैसे सामवेदके भागका नाम उद्गीथ है । ता उद्गीथके अवयवरूप ॐकारकूं उद्गीथरूप जानकरि उपासना करे । ऐसे उद्गीथरूपसे ॐकारकी उपासनाकूं निरूपण करिके ता ॐकारमें पृथिवी जलादिकोंसे अत्यन्त सारतारूप रसतमत्व गुणका विधान करा । पश्चात् सर्वकामोंकी प्राप्तिकी कारणतारूप आप्तिगुणका विधान करा । पश्चात् प्राप्तकामोंकी वृद्धिरूप समृद्धिगुणका विधान करा । ऐसे ॐकारकी उद्गीथरूपसे रसतमत्व आप्तिसमृद्धिरूप गुणोंसे विशिष्ट उपासना निरूपण करी है । पश्चात् ता ॐकारकी प्राणदृष्टिसे उपासना कही है । और इन्द्रियजन्य सात्त्विकी वृत्तिरूप देवता तथा इंद्रियजन्य तामसीवृत्तिरूप असुर ऐसे देवता और असुरोंके युद्धकूं कथन करि प्राणकी ही श्रेष्ठता वर्णन करी है ऐसे श्रेष्ठ अध्यात्मप्राणरूपसे उद्गीथरूप ॐकारकी उपासना निरूपण करिके अधिदैव आदित्यरूपसे ता उद्गीथकी उपासना वर्णन करी । पश्चात् सर्वसे श्रेष्ठतादिगुण-

विशिष्ट परमात्मादृष्टिसे ता उद्गीथकी उपासनाके विधानवासते शिलक दालभ्य जैवलि इन तीनोंका संवाद वर्णन करा । ऐसे उद्गीथकी उपासनाकूं निरूपण करिके सामभागरूप प्रस्तावकी उपासनाके विधान करनेवासते आख्यायिका कथन करे हैं। एक कालमें कुरुदेशविषे सूक्ष्म पाषाणोंकी वृष्टिसे दुर्भिक्ष्य होइ जाता भया। ता कालमें चक्रऋषिका पुत्र होनेसे चाक्रायण नामवाला उषस्तिनामा ऋषि अन्नके न प्राप्त होनेसे अपनी जायासहित देशांतरविषे गमन करता भया । हस्तिपालकके ग्राममें सो उषस्तिऋषि प्राप्त भया । अन्नके वासते अटन करता हुआ सो उषस्ति यह देखता भया । जो हस्तिपालक निंदित माष नाम उडदरूप अन्नकूं हस्तिके ताईं भक्षण कराता है। मरणपर्यंत विपत्तिकूं प्राप्त हुआ सो उषस्ति तिस हस्तिपालकसे तिन माषोंकूं मांगता भया । सो हस्तिपालक यह कहता भया । हे ऋषे ! यह उच्छिष्ट माष ही मेरे समीप हैं तेरे योग्य पवित्र माष मेरे समीप हैं नहीं। उषस्ति तिन उच्छिष्ट माषोंकूं ही मांगता भया । सो हस्तिपालक उषस्तिके ताईं तिन माषोंकूं देता भया। पुनः हस्तिपालक जलकूं ग्रहण करो यह कहता भया। तब उषस्ति यह कहता भया । यह तेरा उच्छिष्ट जल मैं कैसे प्राशन करूं । तब हस्तिपालक यह कहता भया । क्या यह माष उच्छिष्ट नहीं हैं । तब उषस्ति यह कहता भया जबी मैं इन माषोंकूं नहीं भक्षण करता तब मृत्युकूं प्राप्त होइ जाता और जल तो कूप तडागादिकोंसे इच्छापूर्वक प्राप्त होइ जावेगा । ता उच्छिष्ट जलके पानसे मैं नरककूं प्राप्त होऊंगा । ऐसे कथन करिके तिन उच्छिष्ट माषोंकूं भक्षण करिके शेष रहे माषोंकूं अपनी जायाके ताईं देता भया । ता भार्याने पूर्व ही भिक्षा करी थी तिन माषोंकूं

पतिके हाथसे ग्रहण करिके धर देती भयी। सो उषस्ति प्रातः-
कालमें निद्राकूं त्याग करिके खेदकूं प्राप्त हुआ यह कहता भया।
यहांसे समीप ही राजा यज्ञ करता है। जबी किंचित् भी अन्न
प्राप्त होइ जावे तौ ता अन्नकूं भक्षण करके ता राजासे मैं धनकूं
प्राप्त होऊं। तिन उच्छिष्ट माषोंकूं सो जाया देती भयी। तिन
उच्छिष्ट माषोंकूं भक्षण करिके ता राजाके यज्ञविषे प्राप्त हुआ सो
उषस्ति तिन यज्ञ करनेहारे ब्राह्मणोंके समीप स्थित भया। तब
प्रस्तावनाम सामके कथन करनेवाले प्रस्तोतानाम ब्राह्मणके ताईं
सो उषस्ति यह कहता भया। हे प्रस्तोतः! जिस प्रस्तावका तूं
उच्चारण करता है तिस प्रस्तावके देवताकूं न जानकरि यदि मैं
विद्वान्के समीप उच्चारण करेगा तब तेरे मस्तकका अधःपतन
होवेगा। ऐसे उद्गाता आदि नामवाले ब्राह्मणोंके ताईं कह्या।
तब सर्व ही भयभीत हुए उपराम होइ जाते भये। तिन ब्राह्मणोंके
तूष्णींभावके अनन्तर ता उषस्तिकूं राजा यह कहता भया। हे
भगवन्! मैं आपकूं जानना चाहता हूं आप कौन हैं ? उषस्ति-
रुवाच। हे राजन्! मैं चक्रऋषिका पुत्र उषस्तिनामा हूं।
राजोवाच। हे भगवन्! मैंने आपका बहुत अन्वेषण करा, परंतु
आप प्राप्त भये नहीं। आपकूं न प्राप्त होइकरि और ही यज्ञ
करानेवाले ऋत्विक् मैंने ग्रहण करे। अब भी आप कृपा करि
यज्ञ करवावो। उषस्ति अंगीकार करते भये। और यह कहते
भये जो यह ब्राह्मण मेरी आज्ञासे या यज्ञमें अपना अपना कार्य
करें और जितनी दक्षिणा तुम इन ब्राह्मणोंके ताईं देवोगे तितनी
ही दक्षिणा मेरे ताईं देनी। राजाने अंगीकार करा। तब प्रस्तोता
ब्राह्मण ता उषस्तिके समीप आइकरि यह कहता भया। हे
भगवन्! आपने यह कहा था जो प्रस्तावके देवताकूं जाने विना

जबी तूं प्रस्तावभागका उच्चारण करेगा तब तेरा मस्तक गिर जावेगा। हे भगवन्! सो प्रस्तावका देवता कौन है? आप कृपा करि कहो। ऐसे पूछा हुआ उषस्ति यह कहता भया। हे प्रस्तोतः! जा परमात्मामें सर्व भूतोंमें उत्पत्ति आदिक होवे हैं ऐसा प्राणशब्दका अर्थ परमात्मा ही प्रस्तावका देवता है। ऐसे उद्गाता नाम ऋत्विक्कूं उद्गीथका देवता आदित्य कथन करा। और प्रतिहर्तानाम ऋत्विक्कूं प्रतिहारनाम भागका अन्नदेवता कथन करा। अभिप्राय यह जो प्रस्तावभागमें प्राणपदवाच्य परमात्मा दृष्टि करनी। उद्गीथ भागमें आदित्य दृष्टि करनी। प्रतीहारनामक भागमें अन्नदृष्टि करनी। इत्यादि उपासना प्रथमाध्यायमें हैं। इति छांदोग्ये प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॐ नमः परमात्मने। प्रथमाध्यायमें सामके एकदेशरूप ॐकारका ध्यान कह्या। अब द्वितीयाध्यायमें लोकादि अनेक पदार्थरूपसे समस्त सामउपासना कथन करिके पश्चात् यह निरूपण करा है। तीन धर्मके स्कंधनाम विभाग हैं। अग्निहोत्र तथा नियमपूर्वक वेदोंका अध्ययन तथा वेदिसे बाह्य दान यह गृहस्थोंका प्रथम धर्मस्कंध है। वानप्रस्थोंका कृच्छ्रचांद्रायणादिरूप तप ही द्वितीय धर्म स्कंध है। आचार्य गृहमें विधिपूर्वक वेदका अध्ययन करनेहारा तथा जबतक प्राण है तबतक गुरुसेवामें आसक्त तथा भिक्षाटनादिकोंसे शरीरका निर्वाह करनेहारा जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी है सो नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही धर्मका तृतीय स्कन्ध है। यह तीनों आश्रमी पुण्य कर्म करते हुए पुण्यलोकोंकूं ही प्राप्त होवे हैं। 'ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति' अर्थ यह सर्वकर्मोंकूं त्याग करनेसे ब्रह्मविषे व्यभिचाररहित जाकी स्थिति भयी है ऐसा संन्यासी ही कर्मभिन्न अमृतरूप मोक्षफलकूं प्राप्त होवे है। अथवा ॐकारकी

उपासनाप्रकरणसे पूर्व कही श्रुतिका यह अर्थ जानना। प्रणव है प्रतीक जाका ऐसा जो ब्रह्म ता ब्रह्मकी ॐकाररूपसे उपासना करनेवाला संन्यासी क्रमकरिके मोक्षकूं प्राप्त होवे है। ॐकार ही सर्वश्रेष्ठ है या अर्थकूं उपादन करे हैं। प्रजापति सर्वलोकोंसे सारके ग्रहण करनेकी इच्छा वासते ध्यान करता भया। ध्यान करते ता प्रजापतिके मनमें ऋग् यजुष् साम यह तीन ही साररूपसे प्रतीत भये। तिन वेदोंसे भी सारग्रहणकी इच्छा करता हुआ प्रजापति पुनः ध्यान करता भया। ध्यान करते 'भूर्भुवःस्वः' यह व्याहृतिरूप अक्षर ही साररूपसे प्रतीत होते भये। तिन अक्षरोंसे भी सार जाननेकी इच्छावाला प्रजापति पुनः ध्यान करता भया। तब ॐकार ही साररूपसे प्रतीत भया। जैसे पर्णोंके नालरूप शंकुकरिके पत्रोंके अवयव व्याप्त होवे हैं। अर्थ यह सो पर्णरूप नाल ही पत्रोंके अवयवोंमें व्याप्त होइ रहा है तैसे ॐकार ही सर्वशब्दोंविषे व्यापक है। ऐसे ॐकारके ध्यानकूं विधान करिके पुनः सामविज्ञानके निरूपण करते अध्याय समाप्त भया। इति छांदोग्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ॐ नमोऽस्तु सूर्यादिविविधरूपिणे। पूर्व द्वितीयाध्यायमें कर्मोंके अंगभूत सामादिकोंकी उपासना कही या तृतीयाध्यायमें स्वतंत्र उपासनाओंका विचार करा है। प्रथम आदित्यादिकोंविषे मधुदृष्टिका विधान करा है। पश्चात् गायत्रीका ब्रह्मरूपसे ध्यान कथन करा है। 'गायत्री वा इदं सर्वम्' अर्थ यह, यह संपूर्ण स्थावर जंगम प्राणिमात्र गायत्रीस्वरूप है इत्यादिवचनोंसे गायत्रीकूं सर्वरूपताका कथन गायत्री उपाधिक ब्रह्म ही सर्वरूप है या अभिप्रायसे जानना। केवल गायत्रीछंदमात्रकूं तौ चर अचर सर्वरूपता बने नहीं यातें गायत्री उपाधिक ब्रह्मकी गायत्रीविषे उपासना जाननी। ऐसे गायत्रीउपाधिक

ब्रह्मकी उपासनाकूं कथन करिके पश्चात् शांडिल्यनामा ऋषिने कही विद्याकूं कथन करे हैं । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत' अर्थ यह नामरूपक्रियात्मक यह सर्व जगत् खलु नाम निश्चय करिके ब्रह्मस्वरूप है । जिस हेतुसे ता ब्रह्मसे ही यह सर्व जगत् उत्पन्न भया है । ता ब्रह्ममें ही लीन होवे है । और स्थितिकालमें भी ता ब्रह्ममें ही स्थित होइकरि चेष्टा करि रहा है । यातें सर्वकूं ब्रह्मस्वरूप जानकरि रागद्वेषादिविघ्नोंसे रहित हुआ ब्रह्मका ध्यान करे ऐसे रागद्वेषसे राहित्यरूप समगुणका विधान करिके अब उपासनाका विधान करे हैं । शांत होइकरि अधिकारी ऐसा दृढ संकल्प करे जैसा पुरुष संकल्प करता है यह स्थूलशरीरका त्यागकरि अपने संकल्पके अनुसार ता फलकूं प्राप्त होवे है । यातें अधिकारी पुरुषने ऐसा संकल्प करना योग्य है । ता संकल्पके विषयकूं दिखावे हैं । यह आत्मा मनोमय है । अर्थ यह मनके प्रवृत्त होनेसे आत्मा भी प्रवृत्त होता प्रतीत होवे है और मनके निवृत्त होते आत्मा भी निवृत्त होता प्रतीत होवे है । यातें आत्माकूं मनोमयरूपसे ध्यान करे और यह आत्मा प्राण शरीर है ऐसे ध्यान करे । प्राणशब्दकरि प्राणप्रधान लिङ्गशरीर लेना । ता लिङ्गशरीर उपाधिक आत्माकूं प्राणशरीर या नामकरिके कथन करा है । आत्माके 'मनोमयः' और 'प्राणशरीरः' यह दोनों विशेषण जीवका ब्रह्मसे वास्तव अभेद है या तात्पर्यसे कथन करे हैं । पुनः यह आत्मा भारूप है । चैतन्यरूप होनेसे या आत्माकूं भारूप कथन करा है । तथा सफल संकल्प होनेसे सत्यसंकल्प कह्या है । आकाशकी न्याई व्यापक तथा सूक्ष्म और रूपरहित है यातें या आत्माकूं आकाशात्मा ऐसे कह्या है । सर्व जगत्का उत्पन्न करनेहारा है यातें सर्वकर्मा आत्मा है ।

व्यभिचारादि दोषरहित जो काम है सो काम परमेश्वररूप है यातें या आत्माकूं सर्वकामः ऐसे कह्या है। सर्वसुगन्ध आत्मरूप हैं यातें आत्माकूं सर्वगन्धः ऐसे कह्या है। सुख करनेहारे रस आत्मरूप हैं यातें या आत्माकूं सर्वरसः यह कह्या है और सर्व जगत्में व्यापक है और वागादिक सर्व इन्द्रियोंसे रहित है। अप्राप्त पदार्थकी इच्छा करिके पुरुषकूं संभ्रम होवे है नित्य तृप्त आत्मा है ता संभ्रमका अभाव है। यह आत्मा ही अधिकारीका वास्तव अपना स्वरूप है। यह आत्मा व्रीहि यव सर्षप श्यामाकादिकोंकी न्याईं सूक्ष्म हुआ भी परमार्थमें पृथिवी आकाश स्वर्गादिकोंसे महान् व्यापक है। ऐसे आत्माकूं अधिकारी पुरुष सन्देहरहित अपने रूपसे जानता हुआ या शरीरकूं त्यागकरि मोक्षकूं प्राप्त होवे। ऐसे शांडिल्यनामा ऋषि कहता भया। ऐसी शांडिल्यविद्याके पश्चात् विराट्कोश उपासना और आत्मयज्ञ उपासनाका निरूपण करा है। आत्मयज्ञ उपासनामें पुरुषकूं ही यज्ञरूपसे वर्णन करा है ऐसी आत्मयज्ञ उपासनाकूं देवकीपुत्र श्रीकृष्णरूप अपने शिष्यके ताईं आंगिरसनामक ऋषि कथन करता भया। पश्चात् मन और आकाशकी ब्रह्मरूपसे प्रतीक उपासना कथन करी है। मनकूं ब्रह्मरूप जानकरि अधिकारी उपासना करे। तथा सूर्यकूं ब्रह्मसे उपासना करे। मनरूप ब्रह्मके चारि पाद हैं वाक् प्राण चक्षुः श्रोत्र। ऐसे मनरूप ब्रह्मके चारि पादोंकूं कथन करि अब आदित्यरूप ब्रह्मके चारि पादोंकूं दिखावे हैं। अग्नि वायु आदित्य दिशा। ऐसे चारि चारि पादोंकूं निरूपण करि ता उपासनाके फलकूं कथन करा। ऐसी उपासना करनेवाला पुरुष यशकूं तथा वेदोंके पठनसे उत्पन्न होनेहारे ब्रह्मतेजकूं प्राप्त होवे है॥ इति छांदोग्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐनमः शिवाय। पूर्व तृतीयाध्यायमें आदित्यकी उपासना वर्णन करी। या चतुर्थाध्यायमें आदित्यमण्डल उपाधिवाले हिरण्यगर्भ की उपासना कहनेकूं प्रथम दान आदिकोंकी उपासनामें साधनताकूं कथाद्वारा वर्णन करे हैं। जानश्रुति नामक राजा श्रद्धापूर्वक बहुत पदार्थका दान करता भया। तथा अतिथि आदिकोंके ताईं बहुत भोजनका दान करता भया। सर्वदिशाओंमें बहुत स्थानोंकूं बनवाता भया ता राजाके मनमें यह अभिप्राय था जो सर्व लोक इन स्थानोंमें मेरे भोजनकूं करेंगे। देवता तथा ऋषि राजाके दानादि गुणोंकरि प्रसन्न हुए हंसोंके रूपोंकूं धारणकरि रात्रिमें राजाके दृष्टिका विषय हुए गमन करते भये। सर्वके पीछे चलनेवाला जो हंस था सो अग्रभागी हंसकूं यह कहता भया। अरे भद्राक्ष नाम सुंदरनेत्रवाले! या जानश्रुति राजाका तेज स्वर्ग लोक पर्यन्त व्याप्त भया है। ता राजाके साथ संबन्धकूं मति करो। संबंध करनेसे या राजाका तेज तेरा दाह करेगा। अब अग्रगामी हंस पृष्ठगामी हंसकूं कहे है अरे भद्राक्ष! क्या तूं इस प्राणिमात्र जानश्रुति राजाकूं रैक्कके सदृश कहता है। जो महात्मा रैक्क अपने शकटकूं साथ राखता है तिस रैक्कके सदृश यह राजा कैसे होइ सकता है? अग्रगामी हंस उवाच। अरे भद्राक्ष! सो महात्मा रैक्क ऋषि केसे वर्त्तता है। पृष्ठ-गामी हंस उवाच। जैसे चारी अंकोंमें एक दो तीन अंक अंतर्गत होवे हैं। न्यून संख्या अधिक संख्याके अंतर्गत होवे है। यातें चारि अंकके अंतर्गत एक दो तीन अंक हैं। तैसे जे शुभकर्म सर्व पुरुष करते हैं ते सर्व धर्म रैक्कके धर्मके अंतर्भूत हैं। तथा सर्व पुरुषोंके धर्मका फल भी रैक्कऋषिके धर्मके फलविषे अन्तर्भूत है और केवल रैक्कका ही यह माहात्म्य नहीं है किंतु जो पुरुष रैक्ककी

उपासना जैसी उपासनावाला है तिस सर्व उपासक पुरुषका यह माहात्म्य जानना । ऐसे हंसोंके मुखसे अपनी निंदाकूं और रैक्ककी प्रशंसाकूं जानश्रुतिराजा श्रवण करता भया । रात्रिमें निद्रासे विना ही वर्त्तमान हुआ राजा प्रातःकालमें स्तुति करनेवाले अपने सारथीकूं यह कहता भया । हे प्रिय ! अब मेरी तूं क्या स्तुति करता है । स्तुतिके योग्य रैक्क ऋषि है मैं स्तुतिके योग्य नहीं । शकटसहित जो रैक्क ऋषि है सो सर्वसे अधिक धर्मात्मा है। राजाके अभिप्रायानुसार सो सारथी अनेक ग्रामोंमें ता रैक्क ऋषिका अन्वेषण करता भया । परंतु ता ऋषिकूं प्राप्त भया नहीं । ता सारथीकूं राजा कहे है। अरे सूत ! जहां एकांत देशमें ऋषिलोग स्थित होवें ता देशमें जाइकरि अन्वेषण करो । ऐसे वचनकूं श्रवणकरि एकांत देशमें अपने शरीर-विषे कंडू करत रैक्ककूं सो सूत देखता भया । समीप जाइके रैक्व ऋषिके पास स्थित भया। और यह कहता भया । हे भगवन् ! आप ही रैक्वऋषि हैं। रैक्व कहते भये हम ही रैक्व हैं । सो सूत जानश्रुति राजाकूं सर्व निवेदन करता भया । सूतके वचनकूं श्रवण करि जानश्रुति राजा षट्शत ६०० गौ तथा कंठमें पहरने योग्य हार और रथ ऐसे धनकूं ग्रहणकरि रैक्वऋषिकूं प्राप्त भया नमस्कार करता हुआ राजा कहे है । हे भगवन् ! यह षट्शत गौ हार रथ इनकूं ग्रहण करो और जिस देवताकी आप उपासना करते हो ता देवताका मेरे ताईं उपदेश करो । रैक्व उवाच । अरे शूद्र ! गौ हार रथ इनकूं तुम ले जाओ मैं इनकूं क्या करूंगा । क्षत्रिय राजाकूं शूद्र कहनेसे रैक्वऋषि अपनी सर्वज्ञता सूचन करते भये । रात्रिमें तूं शोक करता हुआ मेरे पास प्राप्त भया है । ऐसे शोक करनेसे क्षत्रिय राजाकूं रैक्वऋषिने शूद्र कहा । रैक्वके वचनकूं श्रवणकरि

राजाने सूतके वचनसे यह निश्चय करा। या रैक्वकी गृहस्थ होनेकी इच्छा है और धन भी अल्प है। पुनः राजा एक सहस्र १००० गौ और हार रथ और अपनी कन्याकूं लेकरि रैक्वऋषिके पास प्राप्त हुआ यह कहता भया। हे भगवन्! या सर्व धनकूं ग्रहण करो। और यह मेरी कन्या आपकी जाया होवे। और जिन ग्रामोंमें आप स्थित भये हो यह ग्राम भी आपके होवें। जा देवताकी आप उपासना करते हो ता देवताका मेरे ताईं आप कृपा करि उपदेश करो। रैक्व उवाच। हे शूद्र! शास्त्रउक्त प्रकारसे धनादिकोंके दानपूर्वक तूं पूछता है। ऐसे कथन करिके सर्व धनकूं तथा कन्याकूं सो रैक्व ग्रहण करता भया। और जिन ग्रामोंकूं राजा रैक्वके ताईं देता भया तिन महावृषनामक देशमें होनेहारे ग्रामोंकूं रैक्व पर्ण नामसे कहे हैं। अब रैक्वऋषि राजाकूं उपदेश करे है। वायु ही संवर्ग है। संवर्ग नाम सर्वके ग्रसनेहारा है। जब अग्नि शांत होवे है तब सो अग्नि वायुमें ही लीन होवे है। ऐसे सूर्य अस्त हुआ वायुमें लीन होवे है। चंद्रमा अस्त हुआ वायुमें लीन होवे है। जल शुष्क हुए वायुमें लीन होवे है। वायु ही इन सर्वकूं ग्रसन करे है। यह अधिदैव उपदेश करा। अब अध्यात्म उपदेशकूं श्रवण करो। हे राजन्! यह प्राण ही संवर्ग है। जब पुरुष शयन करे है तब प्राणमें ही वाग् लीन होवे है। तथा प्राणमें ही चक्षु श्रोत्र मन लीन होवे हैं। इन सर्व वागादिकोकूं प्राण अपनेविषे लीन करे है। देवतावोंविषे बाह्य वायु तथा अंतर इंद्रियरूप सर्व प्राणोंविषे मुख्य प्राण यह दोनों संवर्ग हैं। अब इन दोनों संवर्गोंकी स्तुतिवासते आख्यायिका कहे हैं। शौनक पुरोहितसहित अभिप्रतारी नामक राजा भोजनस्थलविषे भोजनवासते दोनों स्थित भये। ता कालमें कोई ब्रह्मचारी भिक्षाकूं मांगता भया। ब्रह्मचारीके

ज्ञानकी परीक्षावसते पुरोहित तथा राजा ता ब्रह्मचारीकूं भिक्षा न देते भये। तब ब्रह्मचारी यह कहता भया। जो देव भूरादि सर्व लोकोंका रक्षक है। तथा चारि अग्नि आदिकोंकूं तथा चारि वागादिकोंकूं अपनेविषे लीन करे है सो देव कौन है ? जा देवकूं अविवेकी पुरुष जाने नहीं। जो देव अध्यातम अधिदेव अधिभूतरूपसे बहुत प्रकारसे स्थित होइ रहा है। अन्नके भोक्ता प्राणकूं एक रूपसे जानता हुआ ब्रह्मचारी कहे है। हे अभिप्रतारिन् ! जा देवके वासते अनेक प्रकारके अन्न हैं ता देवकूं तुमने अन्न नहीं दिया। ब्रह्मचारीके वचनकूं श्रवणकरिके मनमें विचार करता हुआ शौनक ब्रह्मचारीके पास आइकरि यह कहता भया। हे ब्रह्मचारिन् ! ता देवकूं अविवेकी नहीं जानते परंतु हम तौ जानते हैं। अग्नि आदि देवोंका सो देव आत्मा है। स्थावर जंगमका जनक है। सो देव अभग्नदंष्ट्र है तथा मेधावी है। जा देवकी अपरिमित विभूति हैं। ऐसे ध्याननिष्ठ पुरुष कहते हैं। सो देव अग्नि आदिकोंकूं भक्षण करे है। ता देवका भक्षण करनेहारा कोई नहीं। हे ब्रह्मचारिन् ! ऐसे प्रजापतिके रूपका हम ध्यान करते हैं। शौनकपुरोहित ब्रह्मचारीसे ऐसे संवाद करिके अपने सूपकार भृत्योंकूं यह कहता भया। भो भृत्याः ! तुम इस ब्रह्मचारीके ताईं भिक्षा देवो। भृत्य भिक्षाकूं देते भये। जो कोई पुरुष पूर्व कहे प्रकारसे प्राणके स्वरूपकी उपासना करे है सो उपासक सर्व पदार्थोंका ज्ञाता तथा तेजस्वी होवे है। अब श्रद्धा गुरुसेवादि साधन उपासनाके अंग हैं या अर्थके कहनेकूं और आख्यायिका कहे हैं। जबाला माताका पुत्र होनेसे जाबाल नामक सत्यकामनामा बालक अपनी जबालानामा माताकूं यह कहता भया। हे मातः ! गुरुकुलमें मेरा ब्रह्मचर्य करनेका संकल्प

है। हमारा क्या गोत्र है ? यह कृपा करि कहो। मातोवाच। हे पुत्र ! यौवन अवस्थामें अपने पतिकी सेवाविषे मैं तत्पर रही। तथा पतिके गृहमें प्राप्त भये जे अतिथि आदिक हैं तिनकी सेवामें तत्पर रही और ता यौवनावस्थामें पतिसे लज्जाकरि मैंने गोत्र नहीं पूछा। ता यौवनकालमें ही तुम प्राप्त भये। तेरे पिता भी मेरे यौवनकालमें ही मृत भये। यातें मैं गोत्रकूं तौ नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है। हे पुत्र ! तेरा नाम सत्यकाम है। एतावन्मात्र मैं जानती हूं। तुम गुरुके समीप जावो और गुरुजी पूछें तौ तिनकूं यह कह देना। जो मेरी माताका नाम जबाला है तथा मेरा नाम सत्यकाम है। ऐसे माताके वचनकूं श्रवण करि गौतमऋषिके शरणकूं प्राप्त हुआ सत्यकाम यह कहता भया। भो भगवन् ! आपके समीप मैं ब्रह्मचर्य करा चाहता हूं। मुझ शिष्यपर कृपा करो। गौतम उवाच। भो सौम्य ! तेरा कौन गोत्र है ? सत्यकाम उवाच। हे भगवन् ! मैं अपने गोत्रकूं नहीं जानता। मैंने अपनी मातासे पूछा था ता माताने मेरेकूं यह कहा। हे पुत्र ! यौवनावस्थामें लज्जा करि पतिसे अपना गोत्र मैंने पूछा नहीं पश्चात् पति मृत होइ गये। यातें मैं गोत्रकूं जानती नहीं। जब तुमकूं गुरुजी पूछें तब यह कहना जो मेरी माताका नाम जबाला है मेरा नाम सत्यकाम है। ऐसे वचनकूं श्रवण करि गुरु कहे हैं। यदि यह ब्राह्मण न होता तौ सत्य कैसे कहता ब्राह्मण ही स्वभावसे ऋजु सत्यवक्ता होवे हैं। हे सौम्य ! तूं सत्यसे चलायमान नहीं भया यातें प्रसन्न हुआ मैं तेरा उपनयनरूप संस्कार करूंगा तूं समिध ले आ। ऐसे सत्यकामके उपनयनादि करिके अध्ययन करावते भये। ता गौतमऋषिके गृहमें गौ बहुत थीं तिन गौवोंमेंसे चारि शत ४०० गौ कृश बलहीन थीं

तिन चारि शत गौवोंकूं पृथक् करिके सत्यकाम शिष्यकूं देता भया। और गुरु यह कहता भया हे सौम्य! यह गौ बहुत निर्बल हैं इनकूं वनविषे ले जावो। तिन गौवोंकूं वनविषे ले जाता हुआ सत्यकाम यह कहता भया। जबपर्यंत यह चारि शत गौवां एक सहस्र १००० नहीं होवेंगी तबपर्यंत मैंने वनसे आना नहीं। ऐसे कहकारि तिन चारिशत गौवोंकूं वनविषे सत्यकाम ले जाता भया। ता वनमें बहुत वर्ष रहता भया। ते चारि शत गौ जब एक सहस्र पूर्ण होइ गयीं ता गौवोंकूं चरानेवाले सत्यकामकूं वृषभ शरीरविषे प्रविष्ट हुई दिशा अभिमानी वायुदेवता गुरुकी सेवाकरि प्रसन्न हुई कहती भयी। हे सत्यकाम! सत्यकाम कहता भया हे भगवन्! वृषभ उवाच। हे सौम्य! हम सहस्र गौवां पूर्ण हो गयी हैं। तेरी प्रतिज्ञा पूर्ण भयी अब हमारेकूं आचार्यके गृहविषे ले चलो। और ब्रह्मके पादकूं मैं तेरे ताईं कहता हूं। सत्यकाम उवाच। कहो भगवन्! वृषभ उवाच। हे सत्यकाम! पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण यह चारि दिशा ब्रह्मका चारि कलावाला पाद है। या दिशारूप ब्रह्मके पादका नाम प्रकाशवान् है। जो उपासक या प्रकाशवान् नामक ब्रह्मके पादकूं जानता है सो आप प्रकाशवान् हुआ प्रकाशवान् लोकोंकूं प्राप्त होवे है। हे सत्यकाम! ब्रह्मका दूसरा पाद तेरेकूं अग्नि उपदेश करेगा। ऐसे कथन करिके वृषभ तौ उपराम भया। तब सत्यकाम प्रातःकालविषे गौवोंकू आचार्यके गृहमें ले आनेवासते तिन गौवोंकूं चलाता भया। जब सायंकाल भया तब सर्व गौवां एकट्ठी स्थित भयीं। सत्यकाम काष्ठोंसे अग्निकूं प्रज्वलित करिके अग्निके सम्मुख और गौवोंके समीप हो स्थित भया। वृषभने जो कहा था तेरेकूं अग्नि दूसरे पादका उपदेश करेगा ता वृषभके वचनकूं स्मरण करता भया। तब अग्निने संभाषण करा हे सत्यकाम!

सत्यकाम उवाच । हे भगवन् । अग्निरुवाच । हे सत्यकाम ! मैं ब्रह्मके पादका उपदेश करता हूं । सत्यकाम उवाच । कहो भगवन् ! अग्निरुवाच । पृथिवी अंतरिक्ष स्वर्ग समुद्र यह ब्रह्मका पाद है । या पादका नाम अनंतवान् है । जो ध्याता पुरुष या चारि कलावाले ब्रह्मके पादका ध्यान करे है सो ध्याता पुरुष अनंत लोकोंकूं प्राप्त होवे है । और ब्रह्मके पादकूं तेरे ताईं हंसरूप सूर्य उपदेश करेंगे । गौवोंकूं आचार्यगृहमें ले आनेवासते प्रातःकालमें सत्यकाम गौवोंकूं चलाता भया । रात्रिमें अग्निके सम्मुख स्थित भया । ता कालमें हंसरूप सूर्य कहते भये । हे सत्यकाम ! सत्यकाम उवाच । हे भगवन् ! हंस उवाच । ब्रह्मके पादकूं मैं कहता हूं । सत्यकाम उवाच । कहो भगवन् ! हंस उवाच । अग्नि, सूर्य, चंद्र, विद्युत् यह चार कलावाला ब्रह्मका पाद है । या पादका नाम ज्योतिष्मान् है । जो पुरुष या चारि कलावाले ज्योतिष्मान् नामक पादका ध्यान करता है सो ध्याता पुरुष ज्योतिष्मान् लोकोंकूं प्राप्त होवे है । हे सत्यकाम ! मद्गुनामक जलचर पक्षी तेरेकूं ब्रह्मका पाद कहेगा । मद्गुकारिके यहां प्राण लेना सो प्राणरूप मद्गु सायंकालमें कहे हैं । हे सत्यकाम सत्यकाम उवाच । हे भगवन् ! मद्गुरुवाच । हे सत्यकाम ! तेरे ताईं मैं ब्रह्मके पादका उपदेश करता हूं । सत्यकाम उवाच । कहो भगवन् ! मद्गुरुवाच । प्राण चक्षु श्रोत्र मन यह चारि कलावाला ब्रह्मका पाद है । या पादका नाम आयतनवान् है । जो पुरुष या आयतनवान् नामक ब्रह्मके पादका ध्यान करता है सो पुरुष सावकाशलोकोंकूं प्राप्त होवे है । पश्चात् सो सत्यकाम अपने आचार्यके गृहविषे प्राप्त हुआ आचार्यकूं दंडवत करता भया । आचार्य कहे हैं हे सत्यकाम ! जैसे ब्रह्मवेत्ता प्रसन्नवदन

तथा चिंतारहित कृतार्थ होवे है। तैसे तू भी प्रसन्नवदनत्वादि लिंगोंसे ब्रह्मवित्‌की न्याई प्रतीत होता है। तुमकूं किसने उपदेश करा है? सत्यकाम उवाच। हे भगवन्! मनुष्योंसे विना ही देवतावोंने मेरे ताई उपदेश करा है। हे भगवन्! तेरे विना किसका सामर्थ्य है जो आपके मुझ शिष्यकूं उपदेश करि सके। तेरे शापसे सर्व मनुष्य भयभीत हैं। हे भगवन्! मेरे ताईं देवतावोंने उपदेश करा भी है। परंतु मैंने आपसदृश ऋषियोंसे यह श्रवण करा है जो अपने गुरुसे प्राप्त भयी विद्या श्रेष्ठ फलकूं प्राप्त करे है यातें हे भगवन्! मेरी यह इच्छा है जो आप कृपाकरि ब्रह्मविद्याका उपदेश करो। ऐसे वचनकूं श्रवण करि आचार्य उपदेश करते भये। हे सत्यकाम! देवतावोंने जो तुमारे ताईं पृथक् पृथक् ब्रह्मके पाद निरूपण करे तिनके ध्यानसे पुरुष कृतार्थ होवे नहीं। किंतु सो षोडशकल ब्रह्म चतुष्पाद है। ऐसी समस्त उपासनासे ही फल प्राप्त होवे है। अब पुनः श्रद्धा तप आदिकोंकूं उपासनाका अंगरूप कहने वासते और आख्यायिका कहे हैं। कमलनामक किसी ऋषिका पुत्र होनेसे कामलायन नामकूं प्राप्त हुआ उपकोसलनामकऋषि पूर्व कहे सत्यकामऋषिके शरणकूं प्राप्त भया। ता सत्यकामऋषिके समीप ब्रह्मचर्यकूं धारण करता हुआ द्वादश १२ वर्ष गुरुके अग्नियोंकी सेवा करता भया और सत्यकाम ऋषि अन्य बहुत शिष्योंके ताईं वेद पढाइकरि अपने अपने गृहोंमें भेज देता भया। उपकोसलनाम शिष्यके ताईं वेदका उपदेश नहीं करता भया। ता सत्यकाम ऋषिकी जाया सत्यकामकूं यह कहती भयी। हे पते! यह उपकोसलनामक ब्रह्मचारी बहुत कालसे अग्नियोंकी सेवा करता है। या अग्नियोंके भक्त उपकोसलकूं विद्या देकरि अपने गृहविषे आप

नहीं भजते। यह सत्यकाम हमारे भक्त उपकोसलकूं विद्याका उपदेश नहीं करता या अभिप्रायसे यह अग्नि तुमारी निंदा मति करें। यातें या उपकोसलके ताईं विद्याका उपदेश करो। सत्यकाम श्रवण करता भया और विद्याके उपदेश करे विना ही जायाकूं भी कुछ उत्तर न देता हुआ किसी विदेशमें चला जाता भया। ता आचार्यके अभिप्रायकूं न जानकरि उपकोसल मानस दुःखकरि पीडित हुआ अन्नके त्याग करनेका संकल्प करता भया। तूष्णीं होइकरि अग्नियोंके गृहमें स्थित भया। ता उपकोसलकूं दुःखी देखकरि आचार्यकी जाया यह कहती भयी। हे उपकोसल! तू भोजन करि ले। तुमने भोजनका किसवासते त्याग करा है? उपकोसल उवाच। हे मातः! या प्राकृत पुरुषमें अनेक प्रकारकी इच्छा होवे हैं। अनेक मानस दुःखोंकरि मैं परिपूर्ण हूं। यातें मैं भोजन नहीं करता। अग्नियोंने जब उपकोसलका अन्नके त्यागका ही संकल्प देखा तब सेवाकरि प्रसन्न हुए तीनों अग्नि मिलकरि आपसमें यह कहते भये। या उपकोसलनामक ब्रह्मचारीने हमारी बहुत सेवा करी है और आचार्यने इसकी उपेक्षा करी है। यातें ऐसे श्रद्धालुके ताईं हम ही विद्याका उपदेश करें। ऐसे कृपायुक्त अग्नि आपसमें विचार करि तपस्वी ब्रह्मचारीके ताईं यह कहते भये। हे उपकोसल! 'प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्म' उपकोसल उवाच। हे भगवंतः! जीवनके हेतु प्रसिद्ध प्राणकूं तौ मैं ब्रह्मरूप जानता हूं कं खं के अर्थकूं मैं नहीं जानता। अग्नय ऊचुः। हे उपकोसल! जो यह कं नाम सुखरूप ब्रह्म है सोई खं नाम आकाशकी न्याईं व्यापक ब्रह्म है। जो खं है नाम व्यापक ब्रह्म है। सोई कं नाम सुखस्वरूप ब्रह्म है। भिन्न नहीं। कं ब्रह्म एता ही कहते तौ सुखस्वरूप ब्रह्म है यह अर्थ होनेसे जन्यवि-

षयसुख ही ब्रह्म सिद्ध होता यातें खं ब्रह्म नाम आकाशकी न्याईं व्यापक ब्रह्म कहा। विषयसुख परिच्छिन्न है व्यापक ब्रह्मरूप नहीं। खं ब्रह्म एता ही कहते व्यापक ब्रह्म है यह अर्थ होनेसे आकाश ही ब्रह्म है यह अर्थ सिद्ध होता। यातें कं ब्रह्मनाम सुखरूप ब्रह्म है यह कहा। सुखभिन्न होनेसे दुःखरूप आकाश सुखरूप नहीं। यातें कं खं यह दोनों स्वरूप ब्रह्म हैं। ऐसे अग्नि मिलकरि प्राणरूप कार्य ब्रह्मका तथा आकाश नामक सुखविशिष्ट कारण ब्रह्मका उपदेश करते भये। पश्चात् गार्हपत्यनामक अग्नि अपनी विद्याका उपदेश करता भया। हे ब्रह्मचारिन्! पृथिवी अग्नि अन्न आदित्य यह चारि मेरे शरीर हैं। जो यह आदित्यमंडलमें स्थित पुरुष है सो मैं गार्हपत्यनाम अग्नि हूं मैं गार्हपत्य अग्नि ही आदित्यमंडलमें स्थित पुरुष हूं। जो पुरुष ऐसे ध्यान करता है सो पुरुष मेरे लोककूं प्राप्त होवे है। और या लोकमें भी प्रसिद्ध हुआ शतवर्ष पर्यंत जीवता है। या उपासक पुरुषकी संततिका उच्छेद नहीं होवे है। ता उपासकका या लोकविषे तथा परलोकविषे हम पालन करे हैं। पश्चात् अन्वाहार्यपच नामक अग्निने अपनी विद्याका उपदेश करा। हे सौम्य! जल दिशा नक्षत्र चन्द्रमा यह मेरे चारि शरीर हैं। चन्द्रमामें स्थित पुरुष मैं हूं मैं ही चंद्रमामें स्थित पुरुष हूं उपासककूं फलप्राप्तिकी न्याईं जान लेनी। पश्चात् आहवनीयनामक अग्निने अपनी विद्याका उपदेश करा। हे उपकोसल! प्राण आकाश स्वर्ग विद्युत् यह चारि मेरा शरीर है। उपासककूं फलप्राप्ति गार्हपत्य अग्निप्रकरणमें कही रीतिसे जान लेनी। तीनों अग्नि मिलकरि उपकोसलकूं कहे हैं। हे उपकोसल! यह हमने पृथक् पृथक् अपनी विद्या कही आत्मविद्या तो हमने कं ब्रह्म खं ब्रह्म इस वाक्यसे कही है। और आचार्य विना विद्या

फलीभूत होवे नहीं । यातें 'आचार्यस्तुते गतिं वक्ता' अर्थ यह तेरे ताईं आचार्य आत्माके स्थानादिकोंका कथन करेंगे । ऐसे कथन करि अग्नि उपराम होते भये। पश्चात् आचार्य भी आइ प्राप्त भये। आचार्य उवाच । भो उपकोसल ! उपकोसल दंडवत् करता हुआ कहता भया हे भगवन् ! आचार्य उवाच । हे सौम्य ! ब्रह्मवेत्ताके मुखकी न्याईं तेरा प्रसन्न मुख मैं देखता हूं । तेरेकूं किसने उपदेश करा है ? उपकोसल उवाच । हे भगवन् ! आपके शिष्य मेरेकूं आपसे विना और कौन उपदेश करनेहारा है । यह अग्नि आपके आनेसे प्रथम और प्रकारके प्रतीत होते थे। अब आपके आनेसे जैसे पुरुष कांपता है वैसे ही प्रतीत होते हैं । या कहनेसे यह सूचन कराया जो अग्नियोंने ही मेरे ताईं उपदेश करा है। आचार्य उवाच । हे सौम्य ! तेरे ताईं इन अग्नियोंने क्या उपदेश करा है ? उपकोसलने अग्नियोंका उपदेश सर्व श्रवण कराइ दिया । आचार्य कहे हैं हे सौम्य ! अग्नियोंने तेरे ताईं लोगोंका ही उपदेश करा है । ब्रह्मका संपूर्ण उपदेश करा नहीं। तेरे ताईं प्रथम सविशेष ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यकूं मैं कथन करता हूं । जैसे कमलपत्रमें जलोंका संबंध होवे नहीं तैसे ब्रह्मज्ञानीमें पापकर्मका संबंध होवे नहीं । उपकोसल उवाच । हे भगवन् ! आप कृपा करि ब्रह्मका उपदेश करो । आचार्य उवाच । हे सौम्य ! निवृत्ततृष्णावाले तथा जितइन्द्रिय शांतात्मा जा पुरुषकूं द्रष्टारूपसे नेत्रमें स्थित जानते हैं यह द्रष्टा पुरुष ही सर्वप्राणियोंका आत्मा है। यह आत्मा ही अविनाशी अभय व्यापक ब्रह्मरूप है । या उपकोसलके ताईं जा आत्माका उपदेश अग्नियोंने कं खं रूपसे करा था ता आत्माका ही उपदेश द्रष्टारूपसे अब आचार्यने करा कोई भिन्न नहीं जानना । और यह द्रष्टा आत्मा असंग है । जैसे कोई नेत्रोंमें जलका वा घृतका

प्रक्षेप करे है। सो जल वा घृत नेत्रोंके पक्षरूप पलकोंमें ही स्थित होवे है नेत्रोंमें संबंधवाला होवे नहीं। जबी नेत्र भी जलघृतादिकोंसे संबंधवाले होवे नहीं तब नेत्रोंमें स्थित द्रष्टा पुरुष असंग है यामें क्या कहना है। अब नेत्रस्थ द्रष्टा आत्माके ध्यानवासते ता द्रष्टा आत्माके गुणोंकूं कथन करे हैं। या नेत्रस्थ आत्माकूं संयद्वाम ऐसे कहे हैं। संयद्वाम इस पदका अर्थ यह है सर्व प्राणिमात्रके कर्मोंके फल या द्रष्टा पुरुषकूं आश्रय करिके ही उत्पन्न होवे हैं। यातें या नेत्रस्थ पुरुषकूं संयद्वाम कहे हैं। और या आत्माकूं वामनी कहे हैं। सर्व प्राणियोंके अपने कर्मोंके फलोंकूं यह आत्मा ही प्राप्त करे है यातें या आत्माकूं वामनी कहा है। और या द्रष्टा आत्माकूं भामनी कहे हैं। यह नेत्रस्थ आत्मा ही सूर्य चंद्रादिरूप हुआ सर्वका प्रकाश करे है। यातें या द्रष्टा आत्माकूं भामनी कहा है। और जो उपासक या नेत्रस्थ पुरुषका ब्रह्मरूपसे ध्यान करता है सो ध्याता पुरुष भी सब कर्मफलोंकूं प्राप्त होवे है। और प्राणियोंके कर्मोंके फलोंका प्राणियोंके ताईं प्राप्त करनेहारा होवे है तथा सर्व लोकोंमें प्रकाश करे है। और या उपासकके शरीरसे प्राणके वियोगरूप मरण हुए ता उपासकके मृत शरीरका पश्चात् पुत्र शिष्यादि दाहादिरूप संस्कार करें अथवा नहीं करें सो उपासक तौ ब्रह्मलोकमें अवश्य प्राप्त होवेगा। अब उपासकपुरुषोंकी ब्रह्मलोकमें प्राप्तिके वासते देवयानमार्गकूं कहे हैं। यह उपासक पुरुष या स्थूल शरीरका त्याग करते हुए प्रकाशअभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् दिन अभिमानी देवतावोंकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् शुक्लपक्षके अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् षट्मास उत्तरायण अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् वर्ष अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् आदित्यकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात्

चंद्रमाकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् विद्युत्नाम बिजलीकूं प्राप्त होवे हैं। ब्रह्मलोकसे या मनुसृष्टिमें न होनेहारा अमानवपुरुष ता विद्युतलोकमें आइकरि तिन उपासक पुरुषोंकूं ब्रह्मलोकमें प्राप्त करे हैं। ता ब्रह्मलोकमें हिरण्यगर्भरूप कार्यब्रह्मकूं प्राप्त होवे हैं। या मार्गमें देवता ही उपासककूं प्राप्त करनेहारे हैं। यातें या मार्गका नाम देवपथ श्रुतिमें कहा है। या मार्गकरि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवे हैं यातें या मार्गका नाम ब्रह्मपथ भी कहा है। या मार्गकरि हिरण्यगर्भ रूप ब्रह्मकूं प्राप्त हुए उपासक या मनु भगवान्की सृष्टिरूप संसारचक्रमें घटीयंत्रकी न्याई प्राप्त होवे नहीं। या मार्गकरि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मकी प्राप्ति कार्यब्रह्मकी उपासनाके सहित सोपाधिक कारणब्रह्मकी उपासनाका फल है। ऐसे सत्यकामऋषि अपने उपकोसलनामक शिष्यकूं सोपाधिक ब्रह्मका ही उपदेश करता भया। निर्गुणब्रह्मवेत्ताके तौ प्राणादिक गमन करे नहीं किंतु ब्रह्ममें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं। अब किंचित् शेष रहे चतुर्थाध्यायका तात्पर्य यह है। जब पुरुष यज्ञ करे है ता यज्ञमें कोई अंगभंगरूप क्षत उत्पन्न होवे तब ता क्षतरूप प्रतिबंधकी निवृत्ति अर्थ व्याहृतियोंका विधान है। इति छांदोग्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ॐनमो नारायणाय। अब पंचमाध्यायका पुनरावृत्तिवाले पितृयानमार्गके निरूपणवासते आरंभ है तथा कष्टरूप संसारगतिका वर्णन वैराग्य उत्पत्तिवासते करा है। प्रथम प्राणकी ज्येष्ठताश्रेष्ठताकूं कहे हैं। माताके गर्भमें यह प्राण ही प्रथम वृत्तिकूं लभता है यातें अवस्थाकरि यह प्राण ही ज्येष्ठ है। प्राण ही सर्व वागादिकोंसे गुणोंकरि भी श्रेष्ठ है। जो पुरुष श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठरूपसे प्राणकी उपासना करता है सो उपासक भी अपने ज्ञातियोंमें ज्येष्ठ होवे है। ऐसे ही वागादिकोंमें भी जो जो गुण कह्या है तिस गुणकी प्राप्ति

उपासक पुरुषकूं जान लेनी । वाग् ही वरिष्ठगुणवाला है वाग्मिनाम यथार्थ कहनेहारे पुरुष अन्य धनी पुरुषोंकूं भी दबाय लेवे हैं । चक्षु ही प्रतिष्ठा है । चक्षुवाला पुरुष ही नेत्रोंकरि सम विषम स्थानकूं देखता हुआ स्थित होवे है । श्रोत्र ही संपत् है पुरुष श्रोत्रोंकरि वेदोंका श्रवण करे है । श्रवण करि कर्मके ज्ञानवाला हुआ तिन कर्मोंके करनेसे इच्छापूर्वक संपतकूं प्राप्त होवे हैं । यातें संपतका हेतु होनेसे या श्रोत्रमें संपत् गुण श्रुतिमें कहा है । नेत्रादि इंद्रियोंसे उत्पन्न भये जे सर्व विषयोंके ज्ञान हैं ते सर्व ज्ञान मनविषे रहे हैं यातें या मनकूं आयतन श्रुतिमें कहा है । यह वागादि तथा मुख्य प्राण आपसमें विरोध करते भये । वाक् कहे मैं श्रेष्ठ हूं नेत्र कहे मैं श्रेष्ठ हूं ऐसे सर्व ही आपसमें विवाद करते हुए निर्णय वासते अपने पिता प्रजापतिके पास आते भये । प्रजापतिकूं कहते भये । हे भगवन्! हमारे सर्वमें कौन श्रेष्ठ है? यह आप कृपाकरि कहो । प्रजापतिरुवाच । तुमारे मध्यमें जिसके निकसनेसे यह शरीर गिर जावे सोई तुमारेमें श्रेष्ठ है । तब वागिंद्रिय या शरीरसे निकस जाता भया । एक वर्षके पश्चात् वागिंद्रिय प्राप्त भया । और श्रोत्रादिकोंकूं यह कहता भया । तुम मेरे विना कैसे जीवते भये । श्रोत्रादिक यह कहते भये । जैसे मूक पुरुष और सर्व इंद्रियोंका व्यापार करते हुए वागिंद्रियसे विना भी जीवते हैं । ऐसे हम भी तेरे विना जीवते रहे हैं । तब वागिंद्रिय आपकूं अश्रेष्ठ मानता हुआ या शरीरमें प्रवेश करता भया । तब चक्षुइंद्रिय बाह्य निकसिकरि वर्षभर बाहिर रहा पश्चात् आइकरि जब श्रोत्रादिकोंसे यह पूछा मेरे विना तुम कैसे जीवते भये । तब श्रोत्रादिकोंने यह कहा जैसे अंधे और इंद्रियोंसे व्यापार करते हुए स्थित होवे हैं तैसे तेरे विना भी हम जीवते

भये। तब चक्षु भी आपकूं अश्रेष्ठ मानकरि या शरीरमें प्रवेश करता भया। श्रोत्र भी या शरीरसे बाह्य निकसकरि कहीं चला गया वर्षके पश्चात् आइकरि नेत्रादिकोंसे पूछा जो तुम मेरे विना कैसे जीवते रहे। नेत्रादिकोंने कहा जैसे बधिर पुरुष और इंद्रियोंसे व्यापार करते हुए श्रोत्र विना भी जीवते हैं ऐसे हम भी तेरे विना जीवते रहे। तब श्रोत्रने भी आपकूं अश्रेष्ठ मानकरि प्रवेश करा। मन भी शरीरसे बाह्य निकसिकरि वर्षभर बाहिर रहा पश्चात् नेत्रादिकोंसे आइकरि पूछा तुम मेरे विना कैसे जीवते रहे ? नेत्रादिकोंने कहा जैसे बालक मनकी प्ररूढावस्थासे विना ही जीवते हैं तैसे हम भी तेरे विना जीवते रहे। मन भी आपकूं अश्रेष्ठ मानकरि शरीरमें प्रवेश करता भया तब मुख्य प्राण या शरीरसे बाहिर निकसनेका संकल्प करता भया। जैसे कोई बलवान् अश्व अपने पादके बंधनके हेतु कीलोंकूं उत्पाटन करे है। तैसे नेत्र श्रोत्रादि इंद्रियोंकूं मुख्य प्राण अपने स्थानोंसे चलायमान करता भया। नेत्र श्रोत्रादि इंद्रिय अपने स्थानोंसे चलायमान हुए प्राणों विना तिन अपने स्थानोंविषे स्थित होनेकूं समर्थ न होते भये और मुख्य प्राणकूं यह कहते भये हे भगवन् ! आप हमारे स्वामी होवो आप ही श्रेष्ठ हो या शरीरसे मति निकसो। जैसे वैश्यलोक बलियोंकूं लेकरि राजाकूं प्राप्त होवे हैं तैसे वागादिक अपने अपने गुणोंकूं ता प्राणके ताईं अर्पण करते भये। वागुवाच। हे भगवन् ! जो मैं वरिष्ठगुणसहित हूँ तैसे वरिष्ठगुण आपका है। ऐसे नेत्रने प्रतिष्ठागुण अर्पण करा। श्रोत्रने संपत्गुण अर्पण करा। मनने आयतनगुण अर्पण करा। और यह कहते भये हे भगवन् ! यह गुण तौ आपके ही थे परंतु अज्ञान-करि हमने अपने मान लिये थे। जिस हेतुसे वागादिकोंकी

चेष्टा प्राणोंसे विना होवे नहीं इसी वासते इन वागादिकोंकूं भी वेदवेत्ता पुरुष प्राणनामसे ही कथन करे हैं। वागादिकोंका स्वामी श्रेष्ठतादि गुणोंवाला प्राण मैं हूं। यह प्रधान उपासना कही। अब प्राणके अन्न वस्त्रदृष्टिरूप अंगका विधान करे हैं। मुख्यप्राण उवाच। हे वागादिको! मेरा अन्न क्या है ? वागादि कहे हैं। हे भगवन्! देवता मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणिमात्रका अन्न ही आपका अन्न है। प्राणके उपासक पुरुषने सर्पके अन्नविषे मैं प्राणका ही यह अन्न है ऐसी दृष्टि करनी ऐसे ध्यान करनेहारे पुरुषके समष्टिप्राणका ही यह सर्व अन्न है। अब वस्त्रदृष्टिका विधान करे हैं। मुख्यप्राण उवाच। हे वागादिको! मेरा वस्त्र क्या है? वागादि कहे हैं। हे भगवन्! जल ही तेरा वस्त्र है। इसी वासते श्रेष्ठ पुरुष भोजनके आदिमें तथा अंतमें जलसे आचमन लेते हैं सो आचमन लेना ही प्राणका जलरूप वस्त्रसे आच्छादन करना। ऐसे ध्यान करनेवाला पुरुष वस्त्रोंकूं प्राप्त होवे है। यह सत्यकाम जाबालने गोश्रुति नाम अपने शिष्यकूं उपदेश करा है। ऐसे और भी प्राण उपासनाकी स्तुति लिखी हैं। संक्षेपसे हमने कुछ कही है। प्राण उपासनाका निरूपण करिके अब पंच अग्निविद्याका निरूपण करे हैं। अरुणऋषिका पौत्र श्वेतकेतुनामा कुमार प्रवाहणनामा राजाकी सभामें प्राप्त होता भया। प्रवाहण राजा ता श्वेतकेतुसे यह पूछता भया। हे कुमार! तेरेकूं पिताने उपदेश करा है ? श्वेतकेतुरुवाच। हां भगवन्! मेरेकूं पिताने उपदेश करा है। राजोवाच। हे श्वेतकेतो! या लोककूं त्यागकरि प्रजा जहां उपरि जाती है सो तू जानता है ? श्वेतकेतुरुवाच। हे भगवन्! यह मैं नहीं जानता। राजोवाच। हे श्वेतकेतो ! परलोकमें प्राप्त हुई प्रजा जिस प्रकारसे पुनः या लोकमें प्राप्त होवे है सो तूं जानता है ?

श्वेतकेतुरुवाच। हे भगवन् ! यह भी मैं नहीं जानता । राजोवाच । हे श्वेतकेतो ! देवयानमार्गके तथा पितृयानमार्गके परस्पर वियोगकूं तूं जानता है ? श्वेतकेतुरुवाच । भगवन् ! मैं नहीं जानता । राजोवाच । स्वर्गलोकमें अनेक पुरुष प्राप्त होवे हैं। सो स्वर्गलोक जा निमित्तसे पूर्ण नहीं होता ता निमित्तकूं तूं जानता है ? श्वेतकेतुरुवाच । भगवन् ! मैं नहीं जानता । राजोवाच । हे श्वेतकेतो ! जिस प्रकारसे अग्निहोत्रके साधन दुग्ध घृतादिरूप जल अपूर्वरूप हुए वीर्यरूप पंचमी आहुतिसे पुरुषशब्दवाच्य होवे हैं सो तुम जानते हो ? श्वेतकेतुरुवाच । भगवन् ! मैं नहीं जानता । राजोवाच । हे श्वेतकेतो ! तुमने प्रथम यह किसवास्ते कहा जो मेरेकूं पिताने उपदेश करा है । जो मैं तेरेसे पूछता हूं तिसके उत्तरकूं तूं कहता नहीं और यह भी कहता है जो मेरेकूं पिताने उपदेश करा है । जो तेरेकूं उपदेश करा है तो किसवासते नहीं कहता । ऐसे श्वेतकेतु उत्तरके नहीं आनेसे दुःखी हुआ पिताके स्थानमें आइकरि पिताकूं यह कहता भया । हे भगवन् ! मेरेकूं उपदेश करे विना ही तुमने कहा जो हे पुत्र ! तुमारे ताईं हमने उपदेश कर दिया है । प्रवाहणनामक राजाने मेरेसे पंच प्रश्न पूछे मेरेकूं एकका उत्तर नहीं आया । पितोवाच । हे पुत्र ! जिन पंच प्रश्नोंके उत्तर राजाने तेरेसे पूछा तिन पंच प्रश्नोंके उत्तरकूं मैं भी नहीं जानता । यदि मैं जानता तौ तुम प्रिय पुत्रकूं मैं किसवासते न कहता यातें मैं नहीं जानता । ऐसे कथन करि श्वेतकेतुका पिता गोत्रसे जो गौतम संज्ञाकूं प्राप्त था सो प्रवाहणराजाके स्थानमें प्राप्त भया । ता प्राप्त भये श्वेतकेतुके पिता गौतमऋषिकी सो प्रवाहणराजा पूजा करता भया । दूसरे दिनमें प्रातःकालविषे सो गौतमऋषि प्रवाहणराजाके समीप प्राप्त भया सो प्रवाहण राजा

गौतमऋषिका पूजन करता हुआ यह कहता भया। हे गौतम! जो यह मेरा धन है तथा ग्रामादिक हैं तिनमेंसे अपनी इच्छा अनुसार तुम मांगो जो मांगोगे सोई मैं आपके ताईं देऊंगा। गौतम उवाच। हे राजन्! यह मानुष वित्त तेरे पास ही रहे मैं इस धनकूं नहीं चाहता। मैं तौ यह चाहता हूं जे पंच प्रश्न मेरे पुत्र श्वेतकेतु पूछैं थे तिन पञ्च प्रश्नोंके ही उत्तर मेरेकूं कहो तब श्रवणकरि राजा दुःखी भया। दुःखी होनेमें कारण यह जो विद्या भी गोप्य है और ब्राह्मण मांगता है न देना भी उचित नहीं। तब राजा गौतमकूं यह कहता भया। हे गौतम! तुम यहां चिरकाल रहो। चिरकालके पश्चात् राजा यह कहता भया। हे गौतम! तुम सर्व विद्यासंपन्न हुए भी जो मेरेसे पञ्च प्रश्नोंका उत्तर पूछते हो तुमारे अज्ञानसे मैं यह जानताहूं जो यह विद्या हम क्षत्रिय राजालोकोंमें ही थी अब मेरेसे तुमारे द्वारा ब्राह्मणोंमें भी प्रवृत्त होवेगी। और जो हमने चिरकाल रहनेवास्ते आपकूं कहा सो विद्या न्यायसे ही कहनी चाहिये। या शास्त्रकी आज्ञाकूं मानकरि हमने कहा। हमारा अपराध आप क्षमा करने योग्य हो। ऐसे कथन करि अर्थ कर्मके अनुसार प्रथम पंचम प्रश्नके उत्तरकूं राजा कहता भया। राजोवाच। हे गौतम! यह स्वर्गलोक ही आहवनीय अग्नि है। या स्वर्गलोक अग्निका आदित्यही प्रज्वलित करनेहारा समिध नाम इंधनरूप है। सूर्यकी किरणें ही धूम हैं। दिन ही स्वर्गलोकरूप अग्निका अर्चिः नाम प्रकाश है। चंद्रमा ही अंगार है। नक्षत्र ही विस्फुलिंग हैं ऐसे ध्यान करना। यजमानके वागादिइंद्रिय अधिदेव अग्नि आदि रूपकूं प्राप्त हुए श्रद्धाकरि संपादन करी जो जलादिरूप आहुति है ता आहुतिकूं स्वर्गलोकरूप अग्निमें हवन करे हैं। ता आहुतिसे चंद्रमंडलमें जलरूप यजमानका शरीर उत्पन्न होवे है। पर्जन्यनाम वृष्टिके करनेहारे देवताविशेषमें अग्निध्यान करना। वायु ही ताका

इन्धन है। बादल ही धूम है। विद्युत् प्रकाश है। मेघसे उत्पन्न भये उल्काविशेष तथा इंद्रखड्गादिक ही अंगार हैं। मेघोंके शब्दही विस्फुलिंग हैं। या पर्जन्यरूप अग्निमें पूर्व कहे देव ही सोमरूप आहुतिका हवन करे हैं। श्रद्धापूर्वक हवन करा जो जलरूप सोम तासे वृष्टि उत्पन्न होवे है। हे गौतम! पृथिवी ही अग्नि है। ताका वर्षा ही इंधन है। तथा आकाश ही धूम है। आवांतर दिशा ही विस्फुलिंग हैं। या पृथिवीरूप अग्निमें देवता वर्षारूप आहुतिका हवन करे हैं। तब अन्न उत्पन्न होवे है। ऐसे ध्यान करना। यह पुरुष ही अग्नि है। या पुरुषरूप अग्निका वागही इंधन है। प्राण ही धूम हैं। जिह्वा प्रकाश है। चक्षु अंगार हैं। श्रोत्र विस्फुलिंग हैं। या पुरुषरूप अग्निमें अन्नरूप आहुतिके हवन करनेसे रेतनाम वीर्य उत्पन्न होवे है। पंचम स्त्री ही अग्नि है। याका उपस्थ ही इंधन है। या स्त्रीसे अवाच्य कर्म वासते पुरुष संकेत करे है सोई धूम है। योनि प्रकाश है। अवाच्य कर्म ही अंगार है। रेतरूप आहुतिके हवन करनेसे गर्भ उत्पन्न होवे है। हे गौतम! ऐसे पंचमी रेतरूप आहुतिके हवन करनेसे दुग्धादिरूप जल ही परंपरासे पुरुषशब्द वाच्य होवे हैं। ऐसे सो माताके उदरमें स्थित तथा जरायुकरि आच्छादित हुआ गर्भ नव वा दश मासके पश्चात् बाहिर आवे है। जबपर्यंत कर्म है तबपर्यंत या लोकमें स्थित होवे है। भोगकरि कर्मके क्षीण हुए परलोकमें अपने कर्मके अनुसार प्राप्त होवे है। ता पुरुषके पुत्रादि याकूं मृत हुआ देखकरि दाह करनेवासते ग्रामसे बाह्य ले जावे हैं। यह पुरुषशरीर श्रद्धापूर्वक अग्निमें हवन करनेसे अग्निके सकाशसे ही आया था पश्चात् अग्निमें ही प्राप्त होवे है। ऐसे पंचम प्रश्नके उत्तरकूं कथन करिके अब या देहकूं त्यागकरि प्रजा उपरि कहां जाती है या प्रथम प्रश्नके तथा देवयान और पितृयानके परस्पर वियो-

गरूप या तृतीय प्रश्नके उत्तरकूं कहे हैं। हे गौतम! जे गृहस्थ पूर्व कही रीतिसे पंच अग्निओंकी उपासना करते हैं तथा जे वानप्रस्थ तथा संन्यासी श्रद्धापूर्वक तपकूं करते हैं ते सर्व पूर्व कहे देवयान मार्गकरि ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे हैं। और जे पुरुष गृहस्थाश्रममें अग्निहोत्रादिरूप इष्टकर्मकूं तथा वापीकूपादिरूप आपूर्त्त कर्मकूं तथा वेदीसे बहिर्दानकूं करते हैं ते केवल कर्मी गृहस्थ पितृयान मार्गसे स्वर्गकूं प्राप्त होवे हैं। पितृयान मार्गका क्रम या श्रुतिमें ऐसे लिखा है। ते कर्मी या शरीरकूं त्यागकरि प्रथम धूम अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् रात्रिअभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। तासे कृष्णपक्ष अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। तासे षट्मासदक्षिणायनअभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे हैं। पश्चात् वर्ष अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे नहीं किंतु षट्मासअभिमानी देवतासे पितृलोककूं प्राप्त होवे हैं। पितृलोकसे आकाशकूं आकाशसे चंद्रमंडलकूं प्राप्त होवे हैं। ते कर्मी चंद्रमंडलरूप हुए देवतावोंके भोगका साधन होवे हैं। जब पर्यंत कर्म हैं तब पर्यंत चंद्रमंडलमें स्थित होवे हैं। भोगकरि कर्मके क्षीण हुए जा मार्गकूं प्राप्त होवे हैं ता मार्गकूं कहे हैं। कर्मी पुरुष चंद्रमंडलसे आकाशकूं प्राप्त होवे हैं। आकाशसे वायुकूं वायुसे धूमकूं धूमसे अभ्रकूं अभ्रसे वर्षा करने योग्य मेघकूं प्राप्त होवे हैं। मेघसे वर्षाद्वारा या पृथिवीमें व्रीहि यव औषधि तिल माषादिरूपसे उत्पन्न होवे हैं। आकाशादिकोंसे तथा व्रीहियवादिकोंसे कर्मी पुरुष संबंधकूं प्राप्त होवे हैं। व्रीहियवादिरूप ही नहीं होवे हैं यह वार्त्ता या उपनिषत्के भाष्यमें तथा श्रीमच्छारीरकभाष्य विषे विस्तारसे कही है। और या अन्नके सकाशके कर्मी पुरुषोंका निकसना अतिकष्टसे होवे है। जबी ता अन्नकूं पुरुष भक्षण करे है सो अन्न

रेतरूप होइकारि पुरुषके शरीरमें रहे है । ऋतुकालमें जब पुरुष स्त्रीके साथ गमन करे है तब स्त्रीके उदरमें कलल बुद्बुदादिरूप अवस्थाकूं प्राप्त होइकारि बालक हुआ पश्चात् बाहिर आवे है । "तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा । " अर्थ यह तिन कर्मियोंके मध्यमें या लोकविषे पूर्व जे पुण्यकर्मवाले हैं अभ्याश नाम शीघ्र ही ते पुण्यात्मा रमणीयनाम पुण्ययोनिकूं ही प्राप्त होवे हैं । ता पवित्र योनिकूं ही कथन करे हैं। जैसे ब्राह्मणयोनि वा वैश्ययोनि वा क्षत्रिययोनि ऐसे पवित्र योनिकूं प्राप्त होवे हैं । "अथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चंडालयोनिं वा " अर्थ यह पुनः या लोकमें पूर्व जे पापकर्मवाले हैं ते पापात्मा शीघ्र ही निंदित पापयोनिकूं ही प्राप्त होवे हैं। जैसे कूकरयोनि वा सूकरयोनि वा चंडालयोनि ऐसी नीच योनियोंकूं पापी पुरुष प्राप्त होवे हैं। इस रीतिसे प्रवाहणराजाने या लोकसे उपरि प्रजा कहां जाती है या प्रथम प्रश्नके उत्तरकूं ऐसे कह्या । जे पुरुष पंचाग्नि उपासनामें तथा श्रद्धासहित तपमें आरूढ हैं ते उपासक पुरुष देवयानमार्गकरि ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे हैं । केवल कर्मी पितृयानमार्गकरि स्वर्गकूं प्राप्त होवे हैं । पितृयानमार्गका तथा देवयानमार्गका परस्पर वियोग कैसे है या तृतीय प्रश्नका उत्तर यह कह्या । पितृयान मार्गवाले कर्मी वर्ष अभिमानी देवताकूं प्राप्त होवे नहीं तथा पुनः या ससारमें प्राप्त होवे हैं । परलोकमें प्राप्त भयी प्रजा पुनः या लोकमें कैसे प्राप्त होवे हैं या द्वितीय प्रश्नका उत्तर ऐसे जान लेना। मेघादि द्वारा या लोकमें प्राप्त होवे हैं। अब स्वर्गलोक अनेक कर्मी पुरुषोंके प्राप्त होनेसे पूर्ण किसवासते नहीं होता या चतुर्थ

प्रश्नके उत्तरकूं कथन करे हैं। हे गौतम! जे पुरुषाधम पितृयान-मार्गके साधन शुभ कर्मसे रहित हैं। तथा देवयानमार्गके साधन उपासना श्रद्धा तप ब्रह्मचर्य सत्य क्षमा अकौटिल्य आदिकोंसे रहित हैं ते क्षुद्र पुरुष वारंवार या संसारमें घटीयन्त्रकी न्याई जन्ममरणकूं ही प्राप्त होवे हैं। यातें ही स्वर्गलोक पूर्ण होवे नहीं। अभिप्राय यह प्रथम तो या संसारमें स्वर्गके साधन धर्मका अनुष्ठान ही केचित् पुरुष करे हैं। बहुत पुरुष धर्मके अनुष्ठानसे रहित रसना और उपस्थ इन्द्रियके अधीन हुए कीटपतंगादि योनियोंकूं ही प्राप्त होवे हैं। स्वर्गके साधन धर्मके अनुष्ठान करनेसे भी अपने कर्म फलकूं भोगकरि॰ पूर्व कही रीतिसे या संसारमें ही प्राप्त होवे हैं। ऐसे पापी पुरुषोंकी तथा सकाम पुण्यवाले पुरुषोंकी या कष्टरूप संसारमें प्राप्तिकूं देखकरि उत्तम अधिकारी पुरुष वैराग्यकूं प्राप्त होवे। वैराग्यउत्पत्तिवासते ही या संसार-गतिका कथन है। अब मंत्रके अर्थसे पंचाग्निविद्याकी स्तुतिकूं दिखावे हैं। जो पुरुष पंचाग्नियोंकी उपासना करे है सो पुरुष स्वर्णचोरी सुरापान गुरुस्त्रीगमन ब्रह्महत्या इन पाप करनेहारोंका संसर्ग इन पंच महापातकोंसे रहित होवे है। और या पंच प्रश्नोंकूं तथा तिन पंच प्रश्नोंके उत्तरोंकूं यथार्थ जानता है सो पुरुष उत्तम लोकोंकूं प्राप्त होवे है। पूर्व यह कह्या जो कर्मी चंद्रमण्डलमें परतंत्र हुए देवताओंके भोगका साधन होवे हैं या दोषकी निवृत्तिवासते अब वैश्वानरकी उपासना कहनेकूं प्रथम आख्यायिका कहे हैं। एक प्राचीनशालनामक ऋषि दूसरा सत्ययज्ञनामक ऋषि तीसरा इंद्रद्युम्न चतुर्थ जन पंचम बुडिल यह पंच ही महागृहस्थ तथा महाश्रोत्रीय मिलकरि यह विचार करते भये। हमारा आत्मा कौन है और ब्रह्म कौन है प्रत्यग्से

अभिन्न ब्रह्मके निश्चयकूं न प्राप्त हुए उद्दालक ऋषि वैश्वानर ब्रह्मकूं जानता है ता उद्दालककूं प्राप्त होवे ऐसे निश्चयकरि उद्दालकऋषिके समीप प्राप्त भये । तब तिन प्राचीनशालादिक ऋषियोंकूं देखकरि सो उद्दालकऋषि अपने मनमें यह विचार करता भया । यह पंचही महाश्रोत्रीय हैं और वैश्वानरके स्वरूपकूं अनेक प्रश्नोंसे पूछेंगे तिन सर्व प्रश्नके उत्तर देनेकूं मेरे मनमें उत्साह नहीं है यातें किसी और वक्ताकूं ही मैं कथन करूं यह विचार करि तिन ऋषियोंकूं सो उद्दालकऋषि यह कहता भया । हे भगवंतः ! इस कालमें अश्वपतिनामक राजा वैश्वानरके स्वरूपकूं यथार्थ जानता है । ता अश्वपतिके पास जाइकरि तिससे वैश्वानरविद्याकूं ग्रहण करें । ऐसे कल्पकरि अश्वपतिराजाके पास प्राप्त भये । तब अश्वपतिराजा अपने पुरोहितादिकोंसे तिन ऋपियोंका भिन्न भिन्न पूजन करवाता भया । दूसरे दिनमें प्रातःकालविषे तिन ऋषियोंकूं राजा यह कहता भया । भो भगवन्तः ! आप इस मेरे धनकूं ग्रहण करो । जब ऋपियोंने धन ग्रहण न करा तब राजाने अपने मनमें यह जाना जो यह धन अल्प है यातें ही यह ऋषि या अल्प धनकूं ग्रहण करते नहीं । तब राजा यह कहता भया । हे भगवंतः ! मेरे राजमें चोर नहीं । तथा धन होते अदाता नहीं । तथा मद्यके पीनेवाला नहीं । अधिकारी हुआ अपने अग्निसे तथा विद्यासे रहित नहीं । व्यभिचारी पुरुष वा व्यभिचारिणी स्त्री नहीं । इन चोरादिकोंके दंडसे हमारेकूं धन प्राप्त नहीं होता । न्यायसे ही हम धनका ग्रहण करते हैं । अन्यायसे ग्रहण करते नहीं । यातें आप इस अल्प धनकूं भी ग्रहण करो । और हे भगवंतः ! अब मैं याग करनेवाला हूं ता यज्ञमें एक एक यज्ञ करानेवाले ऋत्विग्कूं जितना जितना मैं धन देऊंगा तितना ही धन पुनः तुमारे ताईं भी मैं

देऊंगा। आप मेरे गृहमें ही निवास करो। ऐसे श्रद्धाभक्तिसहित वचनोंकूं श्रवण करे हुए ते ऋषि यह कहते भये। हे राजन्! जिस पुरुषकी जा पदार्थमें इच्छा होवे तिस पुरुषकूं सो अभिलषित अर्थ दिया जावे सो पुरुष तब ही प्रसन्न होवे है। हमारेकूं इस धनकी इच्छा नहीं। आप वैश्वानरके स्वरूपकूं यथार्थ जानते हो ता वैश्वानरके स्वरूपका ही हमारे ताईं उपदेश करो। हम वैश्वानरकी विद्यावासते ही आपके समीप आये हैं धनवासते नहीं आये। ऐसे वचनकूं श्रवणकरि राजा यह कहता भया। आप ऋषि प्रातः-कालविषे मेरेकूं प्राप्त होवो मैं प्रातःकालविषे उत्तर कहूंगा। राजाके मनविषे अभिप्राय यह जो शिष्य रीतिविना उपदेश करना उचित नहीं। ता राजाके अभिप्रायकूं जानकरि दूसरे दिनमें प्रातः-कालमें समित्पाणि हुए राजाकूं प्राप्त होते भये। जातिकरि ब्राह्मणोंकूं श्रेष्ठ होनेसे दंडवत् प्रणाम कराये विना ही उपदेश करनेवासते प्रथम एक एककूं राजा यह पूछता भया। प्रथम प्राचीन-शालसे यह पूछता भया। हे प्राचीन-शाल! तूं किसकूं वैश्वानररूप जानकरि उपासना करता है। प्राचीनशाल उवाच। हे भगवन्! स्वर्गलोककूं ही वैश्वानर-रूप जानकरि मैं ध्यान करता हूं। राजा प्रथम तौ ता स्वर्गादि एक एक अवयवमें वैश्वानरके ध्यानकी स्तुति करता भया पश्चात् समस्त उपासनाके विधानवास्ते एक एक अवयवमें वैश्वानरके ध्यानकी निंदा करता भया सो दिखावे हैं। हे प्राचीनशाल! जा स्वर्गकूं तूं वैश्वानररूप जानकरि उपासना करता है सो स्वर्ग वैश्वानरका मस्तक है। यह स्वर्ग ही वैश्वनर नहीं। जबी तूं मेरे समीप समस्त उपासनावासते नहीं आवता तब मिथ्या ज्ञानकरि तेरे मस्तकका अधःपतन होता। पश्चात् सत्ययज्ञसे राजा पूछता

भया । हे सत्ययज्ञ ! तूं किसकूं वैश्वानररूपसे ध्यान करता है । सत्ययज्ञ उवाच । हे भगवन् ! आदित्यकूं वैश्वानररूप जानकरि मैं ध्यान करता हूं । राजोवाच । हे सत्ययज्ञ ! जिस अनेकरूपवाले आदित्यका तूं वैश्वानररूपसे ध्यान करता है सो आदित्य वैश्वानरका चक्षु है । आदित्य ही वैश्वानररूप नहीं । जब तूं मेरे पास न आवता तब तूं विपरीत ज्ञानसे अंध होइ जाता । इंद्रद्युम्नसे राजा यह पूछता भया । हे इंद्रद्युम्न ! तूं किसकूं वैश्वानररूपसे ध्यान करता है । इंद्रद्युम्न उवाच । हे भगवन् ! मैं वायुका वैश्वानररूपसे ध्यान करता हूं । राजोवाच । हे इंद्रद्युम्न ! यह वायु वैश्वानर भगवान्का प्राण है । या प्राणरूप वायुकूं वैश्वानररूप जानता हुआ जबी तूं मेरेपास न आवता तब या विपरीतज्ञानसे तेरे प्राण निकस जाते पश्चात् जनऋषिकूं राजा यह कहता भया । हे जन ! तूं किसकूं वैश्वानररूप जानकरि ध्यान करता है । जन उवाच । हे भगवन् ! मैं आकाशकूं वैश्वानररूप जानकरि ध्यान करता हूं । राजोवाच । हे जन ! यह आकाश वैश्वानरके देहका मध्यभाग है । या आकाशकूं वैश्वानररूप जानता हुआ जब तूं मेरे पास न आवता तब तेरा देह नष्ट होइ जाता । पश्चात् बुडिलकूं राजा यह पूछता भया । हे बुडिल ! तूं किसकूं वैश्वानररूप जानकरि ध्यान करता है । बुडिल उवाच । हे भगवन् ! मैं समुद्रादिरूप जलकूं वैश्वानररूपसे ध्यान करता हूं । राजोवाच । हे बुडिल ! यह संपूर्ण जल वैश्वानरके मूत्रस्थितिका स्थल है । जब तूं या जलकूं ही वैश्वानररूप जानता हुआ मेरे समीप नहीं आवता तब ता विपरीत ज्ञानसे तेरे मूत्रस्थलका भेदन होइ जाता । पश्चात् राजा उद्दालकसे यह पूछता भया । राजोवाच । हे उद्दालक ! तूं किसका वैश्वानररूपसे ध्यान करता है । उद्दालक उवाच । हे भगवन् ! मैं पृथ्वीकूं वैश्वानररूपसे ध्यान करता हूं ।

राजोवाज। हे उद्दालक! यह पृथिवी वैश्वानरभगवान्का पाद है। जब तूं या पादरूप पृथिवीकूं ही वैश्वानररूपसे जानता हुआ मेरे समीप नहीं आवता तब ता विपरीत ज्ञानसे तेरे पाद शिथिल होइ जाते। पश्चात् समस्त वैश्वानरकी उपासनाके विधान करनेकूं राजा यह कहता भया। राजोवाच। भो ऋषयः! तुमने पृथक् पृथक् वैश्वानरकूं जानकरि व्यर्थ ही अन्नकूं भक्षण करते दिन व्यतीत करे। अब यथार्थ वैश्वानरके स्वरूपकूं तुम श्रवण करो। तिस वैश्वानरका स्वर्ग ही मस्तक है। सूर्य चक्षु है। वायु प्राण है। देहका मध्य धड आकाश है। समुद्र मूत्रस्थल है। पृथिवी पाद हैं। यज्ञमें जो वेदिभूमि है सो भूमि उर है। दर्भ रोम हैं। गार्हपत्य नाम अग्नि हृदय है। अन्वाहार्यपचननामक अग्नि मन है। आहवनीयनामक अग्नि वैश्वानरका मुख है। जो पुरुष या वैश्वानरको अपना आत्मारूप जानता हुआ ध्यान करे है। सो पुरुष सर्वलोकोंविषे तथा सर्वभूतोंविषे सर्व अन्नकूं भक्षण करे। भोजन कालमें प्रथम ग्रासकूं आहुतिरूप ध्यानकरि ता आहुतिकूं प्राणाय स्वाहा या मंत्रकूं सूक्ष्म उच्चारण करिके अपने मुखमें हवन करे। ता होमसे प्राण तृप्त होवे हैं। प्राणकी तृप्ति होनेसे चक्षु तृप्त होवे हैं। चक्षु तृप्त होनेसे आदित्य तृप्त होवे है। आदित्यके तृप्त होनेसे स्वर्ग तृप्त होवे है। स्वर्गके तृप्त होनेसे स्वर्ग तथा आदित्यकूं आश्रय करि जे प्राणी हैं ते सर्व तृप्त होवे हैं। ऐसे दूसरी ग्रासरूप आहुतिका व्यानाय स्वाहा या मंत्रकूं उच्चारण करि हवन करनेसे व्यान तृप्त होवे है। व्यानकी तृप्तिसे श्रोत्र चंद्रमा दिशा विदिशा चंद्रमाके मध्यवर्ती सर्वप्राणी यह सर्व ही पूर्व कहे क्रमसे तृप्त होवे हैं। तीसरी ग्रासरूप आहुतिकूं अपानाय स्वाहा या मंत्रकरि हवन करनेसे अपान तृप्त होवे है। पश्चात् क्रमसे वाक् अग्नि

पृथिवी, पृथिवी तथा अग्निके आश्रित प्राणिमात्र यह सर्व तृप्त होवे हैं। चतुर्थी ग्रासरूप आहुतिकूं समानाय स्वाहा इस मंत्रकरि हवन करनेसे समान तृप्त होवे है। समान तृप्तिके पश्चात् क्रमसे मन पर्जन्य विद्युत विद्युत् पर्जन्यके आश्रित प्राणिमात्र यह सर्व तृप्त होवे हैं। पंचमी ग्रासरूप आहुतिकूं उदानाय स्वाहा या मंत्रके उच्चारणपूर्वक हवन करनेसे उदान तृप्त होवेहै। ता उदानकी तृप्तिके पश्चात् वायु आकाश वायु आकाशके आश्रित प्राणिमात्र यह सर्व पूर्व कहे क्रमसे तृप्त होवे हैं। ऐसे वैश्वानरके उपासक पुरुषकूं पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा प्राप्त होवे है। गौ अश्व हस्ती आदि पशु प्राप्त होवे हैं। अनेक प्रकारके भक्षण करने योग्य अन्न प्राप्त होवे हैं। वेदके पठनसे उत्पन्न होनेहारे ब्रह्मतेजकूं प्राप्त होवे है। जो पुरुष पूर्ण कहे अग्निहोत्रकूं न जानकरि बाह्य अग्निहोत्रकूं करता है। सो पुरुष अंगारोंकूं त्यागकरि भस्मविषे हवन करनेवाले पुरुष जैसा है। वैश्वानरके उपासक पुरुषके सर्व कर्म क्षीण होवे हैं। या अर्थमें श्रुति दिखावे हैं। "तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयतैवं हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयंते।" अर्थ यह तद्नाम तिस वैश्वानरकी विद्यामाहात्म्यविषे यथा नाम दृष्टांत है। इषीकातूलं नाम मुञ्जके मध्यवर्ती नालका जो तूल है। अग्नौ प्रोतं प्रदूयत नाम अग्निमें गेरा जो तूल दग्ध होवे है। एवं हास्य सर्वे पाप्मानःप्रदूयंते नाम इस वैश्वानर उपासकके सर्व धर्माधर्मरूप कर्म दग्ध होवे हैं और जैसे बालक क्षुधाकरि पीडित हुए माताका ही ध्यान करे हैं जो यह माता हमकूं कब भोजन देवेगी तैसे ता वैश्वानर उपासकके पूर्व कहे अग्निहोत्रका सर्व प्राणी ध्यान करे हैं जो यह कब भोजन करेगा याके भोजन करनेसे हम तृप्त होवेंगे। वैश्वानरका उपासक आपकूं वैश्वानररूप माने है। वैश्वानरसे कोई प्राणी भिन्न नहीं। वैश्वानर नामसे ही या

अर्थका लाभ होवे है । विश्व नाम सर्वका है । विश्वरूप होवे पुनः सर्वका कारण होनेसे नररूप होवे सो कहिये वैश्वानर । और विश्व होवे नियम्य जाके ऐसे नियामक परमात्माका नाम वैश्वानर है । और आपही विश्वनाम सर्व नरनाम पुरुष सर्व पुरुषरूप होवे सो कहिये वैश्वानर । यातें वैश्वानर सर्वरूप है । ताकूं अपना स्वरूप माननेवाला जो उपासक है ता वैश्वानर उपासकके तृप्त होनेसे सर्व जगत तृप्त होवे है । इति छांदोग्ये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॐ नमो गिरिजायै । पूर्व पंचम अध्यायके अंतमें यह कह्या है । वैश्वानरभगवान्‌की उपासनाका फल यह है । जो वैश्वानरके उपासकके भोजन करनेसे सर्व जगत् तृप्त होवे है । जबी आत्माका भेद माने तौ एक पुरुषके तृप्त होनेसे द्वितीय पुरुष तृप्त होवे नहीं और श्रुतिमें एक उपासकके तृप्त होनेसे सर्व जगत्‌की तृप्ति लिखी है, यातें आत्माके अभेदमें ही श्रुति भगवतीका तात्पर्य है । ता आत्माकी एकताके बोधनवासते या षष्ठ अध्यायका आरंभ है । अरुणऋषिका पुत्र जो उद्दालक ता उद्दालकऋषिका पुत्र श्वेतकेतुनामक होता भया । ता श्वेतकेतुविषे माता पिताकी बहुत प्रीति होती भयी । इसीसे सो श्वेतकेतु क्रीडाविषे ही वहुत आसक्त होता भया । और उपनयन संस्कारसे भी रहित हुआ सो श्वेतकेतु स्त्री बालकोंकूं महान् दुःख देता भया । किसी ब्राह्मणका कठोर वचनसे तिरस्कार करता भया । तथा किसी बालक और स्त्री आदिकोंकूं दंडका प्रहार करिके अपने गृहविषे भाग जाता भया । ऐसे पुत्रकूं देखकरि पिता उद्दालक मुनि किंचित् क्लेशकूं प्राप्त होता भया । किसी कालविषे विनयसहित हुआ श्वेतकेतु पिताके समीप स्थित भया । ताकूं देखकरि पिता कहै हैं । हे पुत्र ! नीतिशास्त्रविषे यह लिखा है कि जे माता पिता पुत्रकूं ताडन करिके शास्त्र पठनादि

मार्गमें लगाते नहीं ते माता पिता ता पुत्रके शत्रु हैं। शिक्षाके न करनेसे पुत्र उन्मत्त हुआ या लोकमें तथा परलोकमें दुःखकूं प्राप्त होवे है। यातें तीन वर्षपर्यंत माताने पुत्रकूं शिक्षा करनी। अष्टवर्षपर्यंत पिताने शिक्षा करनी। पश्चात् अष्टवर्षसे लेकरि षोडशवर्षपर्यन्त आचार्यने शिक्षा करनी योग्य है। जबी पुत्र षोडश वर्षका होइ जावे तबी पुत्रके ताईं करने योग्य कामकूं पिता मित्रकी न्याईं कहे। कदाचित् ताडन करिके कहे नहीं। हे पुत्र! तेरी माताने तथा मैं पिताने तुमारेकूं शिक्षा करी नहीं यातें ही तूं द्वादश वर्षका हुआ भी ब्राह्मणोंके कर्मोंसे रहित होइके ब्राह्मणोंमें अधम जैसा प्रतीत होवे है। अब पर्यन्त उपनयनादिक संस्कारसे विना तथा वेदके अध्ययन विना तुमने क्रीडामें ही काल व्यतीत करा है और मेरा तेरेमें स्नेह है। जाका जामें स्नेह होवे ता पुत्रादिकोंकी ता पिता आदिकोंमें श्रद्धा होवे नहीं। यातें मैं तुमारेकूं उपदेश करि सकता नहीं। किसी गुरु आचार्यके समीप जाइ करि ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदके अध्ययनकूं करो। ऐसे पिताके वचनोंकूं श्रवणकरि श्वेतकेतु विचारकूं प्राप्त भया। पिताकी आज्ञाकूं मानकरि स्वगृहका त्याग करता हुआ किसी वेदवेत्ता आचार्यकूं प्राप्त भया। ता गुरुसे अर्थसहित चतुर्वेद तथा षडंग पठन करे। परंतु उपनिषद्रूप वेदांत भाग श्वेतकेतुने नहीं पठन करा। चौबीस वर्षपर्यन्त वेदकूं पठन करिके ता गुरुसे आज्ञा लेकरि अपने गृहकूं आवता भया। मार्गमें आवता हुआ सो श्वेतकेतु यह विचार करता भया। जैसे मैं वेदोंके पाठकूं तथा अर्थकूं जानता हूं तैसे मेरे पिता नहीं जानते। काहेतें जो मेरे गुरुवोंने शपथों करिके मेरेकूं यह कह्या है। हे श्वेतकेतो! हम जेती विद्या जानते थे सो सम्पूर्ण विद्या तेरेकूं हमने

उपदेश करी है। इससे अधिक विद्या हम नहीं जानते यातें मैं अपने पितासे अधिक विद्यवान् हूँ। ऐसे विचार करि महान गर्वकूं प्राप्त हुआ श्वेतकेतु गृहविषे आइकरि पिताके ताईं नमस्कार न करता भया। ऐसे स्तब्ध श्वेतकेतुकूं देखकरि पिता क्रोधकूं न प्राप्त भया। पुत्रमें कृपायुक्त हुआ पुत्रके हितवासते या प्रकारके वचनकूं कहता भया। हे पुत्र! जा अधिकताके अभिमान करिके तूं स्थाणुकी न्याईं स्तब्ध भया है। अर्थ यह नम्रतारहित भया है। तथा जा अधिकताके गर्व करिके आपकूं सर्व वेदका ज्ञाता मानता है। तथा आपकूं सर्वसे अधिक मानता है। सो अधिकता तुमारेकूं अपने उपाध्यायसे कौन प्राप्त भयी है। तुमने अपने गुरुसे यह भी कभी पूछा था जिस एक वस्तुके श्रवण करनेसे अश्रुत पदार्थोंका भी श्रवण होवे है तथा जा एकके मननसे सर्वका मनन होवे है तथा एकके निश्चयसे सर्व अनिश्चित पदार्थोंका भी निश्चय होवे है। हे पुत्र! ऐसा कौन वस्तु है। जबी तुम जानते हो तो हमारेकूं श्रवण करावो। ऐसे पिताके वचनकूं श्रवण करि श्वेतकेतु परम आश्चर्यकूं प्राप्त भया। उत्तरके न जाननेसे गर्वरहित होइकरि श्रद्धासे पिताकूं नमस्कार करिके यह कहता भया। हे भगवन्! ता वस्तुकूं मैं नहीं जानता आप कृपा करि कहो। पिता कहे हैं हे पुत्र! जैसे एक कारण मृत्तिकाके ज्ञान हुए मृत्तिकाके कार्य घट शरावादि संपूर्णोंका ज्ञान होवे है। काहेते ता मृत्तिकासे जबी भिन्न घटादिक कार्य होवे तब तो मृत्तिकाके ज्ञान होते भी भिन्न घटादिकोंका ज्ञान न होवे सो भिन्न तो घटादिक हैं नहीं किन्तु मृत्तिका मात्र ही है। और घटादिक विकारकूं नाममात्र होनेसे वाणीसे उच्चारण ही तिन घटादिकोंका होवे है। ता वाणीकरि उच्चारण करे नामसे भिन्न

किंचित् भी घटादि पदार्थ हैं नहीं । किंतु नाममात्र सर्व घटादि पदार्थ हैं । ऐसे स्वर्णलोहके दृष्टांतों विषे जानना । जैसे एक स्वर्णपिंडके जाननेसे स्वर्णके कार्य कटक कुंडलादि ज्ञात होवे हैं । और जैसे एक लोहपिंडके ज्ञान होनेसे ता लोहका कार्य खड्गादि ज्ञात होवे हैं । और स्वर्णकार्य कुंडलादि तथा लोहकार्य खड्गादि विकार केवल नाममात्र होनेसे वाणीकरि उच्चारण करे जावे हैं वास्तव मृत स्वर्ण लोहसे किंचित् भी भिन्न नहीं । मृत्तिका स्वर्ण लोह यह कारण ही सत्य है । मृत्तिका स्वर्ण लोहरूप कारणके ज्ञान होनेसे कार्य घट कुंडल खड्गादिकोंका ज्ञान अवश्य होवे है । तैसे एक आत्माके ज्ञान होनेसे ता आत्माके कार्यरूप सर्व पदार्थोंका ज्ञान होवे है । हे सौम्य ! एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान ऐसे होवे है । श्वेतकेतु अपने मनविषे यह विचार करता भया जो पिता मेरेकूं गुरुके पास पुनः न भेजें । किन्तु आपही पिता मेरेकूं उपदेश करें या तात्पर्यसे श्वेतकेतु कहे हैं । हे भगवन् ! अत्यंत पूज्य जे मेरे गुरु हैं तिनकी मेरे विषे महान् कृपा थी यातें मेरेकूं तिनोंने समग्र विद्याका उपदेश करा है । और या तुमारे प्रश्नके उत्तरकूं तौ मेरे गुरु भी नहीं जाने । जबी जानते तौ मैं अत्यंत प्रिय शिष्यकूं किसवासते न कहते । कह्या तौ तिनोंने नहीं है यातें तुमारे प्रश्नके उत्तरकूं नहीं जानते । ऐसे श्वेतकेतुके वचनकूं श्रवणकरि पिता कहे हैं हे सौम्य नाम प्रियदर्शन पुत्र ! यह संपूर्ण नाम रूप जगत् उत्पत्तिसे प्रथम सत् अद्वितीय ब्रह्मरूप होता भया । या जगत् स्थूल नामरूप न होते भये । और नास्तिक जे शून्यवादी बौद्ध हैं ते बौद्ध यह कहे हैं । उत्पत्तिसे प्रथम शून्यरूप असत् ही होता भया । और सो असत् एक अद्वितीय होता भया । ता असत्से ही सत्नाम रूप जगत् उत्पन्न

होता भया। हे पुत्र ! ऐसे शून्यवादी असत्‌कूं ही कारण माने हैं। तिनका मानना केवल हठमात्र है और युक्तिविरुद्ध है। जबी असत्‌कूं भी कारण माने तौ वंध्यापुत्रकूं भी कारण मानना चाहिये। जैसे वंध्यापुत्रसे किसी कार्यकी उत्पत्ति होवे नहीं। तैसे असत्‌रूप शून्यसे भी किसी कार्यकी उत्पत्ति होवे नहीं। यातें सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित अद्वितीय ब्रह्म ही उत्पत्तिसे प्रथम होता भया। नामरूप प्रपञ्च किंचित् भी स्थूल-रूपसे न भया। अब ता सत्य अद्वितीय ब्रह्मके बोधन वासते नामरूप प्रपञ्चकी उत्पत्ति कहनेकूं परमात्माके विचारकूं कहे हैं। सत्यरूप परमात्मा या प्रकारका चिंतन करता भया। मैं परमा-त्मा ब्रह्म ही बहुत रूप करिके उत्पन्न भया होवों। मेरे विना प्रपञ्च बहुत होता नहीं यातें मैं ब्रह्म ही बहुत रूपताकूं प्राप्त होवों। या प्रकारका चिंतन करिके मायाशबल परमात्मा, आकाशादिक पञ्च भूतोंकूं उत्पन्न करता भया। यद्यपि या छांदोग्य उपनिषद्‌में पृथिवी जल तेज या तीन भूतोंकी ही उत्पत्ति कही है वायु आकाशकी उत्पत्ति कही नहीं। तथापि तैत्तिरीय श्रुतिमें आकाशादिक पंच भूतोंकी उत्पत्ति कही है। और श्रीव्यास भगवान् जे वेदांतके आचार्य हैं तथा भगवान् श्रीशंकराचार्य हैं तिनोंने श्रीमत् शारीरकनाम ग्रंथके द्वितीय अविरोध अध्यायके तृतीय वियत्पादमें तैत्तिरीयउपनिषद्‌की अनुसारतासे पंच भूतोंकी ही उत्पत्ति कही है। यातें या उपनि-षद्‌का तैत्तिरीयश्रुतिसे विरोध नहीं है। ऐसे परमात्मा आकाश वायुकूं उत्पन्न करिके तेजकूं उत्पन्न करताभया। तेज उपहित हुआ सो परमात्मा या प्रकारका चिंतन करता भया। मैं बहुतरूप करिके उत्पन्न होवों। तथा तेजउपहित हुआ परमात्मा जलोंकूं

उत्पन्न करता भया । लोकमें भी यह सर्व प्रसिद्ध है । जबी तप्त बहुत पडे हैं तबी वृष्टि होवे है । यातें अग्निसे जलोंकी उत्पत्ति कही । पुनः जलउपहित परमात्मा या प्रकारके विचारकूं करता भया जो मैं बहुतरूप करिके उत्पन्न होवों । जलउपहित परमात्मासे अन्नशब्दका अर्थ जो पृथिवी है सो पृथिवी उत्पन्न भयी । लोकमें भी यह प्रसिद्ध है जो देशमें वर्षा होवे है ता देशमें ही अन्न बहुत उत्पन्न होवे है । यातें जलोंसे ही अन्नशब्दका अर्थ पृथिवी उत्पन्न होवे है । श्वेतकेतो ! पृथिवी जल तेज इन तीन भूतोंके अनुसार ही अंडज उद्भिज्ज जरायुज यह तीन भूतोंके बीज उत्पन्न होवे हैं । स्वेदज दो प्रकारके हैं एक तौ मशकादिरूप स्वेदज उद्भिज्जरूप होवे हैं । दूसरे यूकादिरूप स्वेदज अंडजरूप होवे हैं । यातें स्वेदजका जलके कार्य उद्भिज्जरूप करिके तथा पृथिवीके कार्य अंडजरूप करिके ग्रहण करना । गर्भके वेष्टनवाले चर्मका नाम जरायु है ता जरायुकी जाठर अग्निरूप तेजसे उत्पत्ति होनेसे तेजका कार्य कहिये है । परमात्मा पृथिवी आदिक तीन भूतोंविषे प्रविष्ट हुआ या प्रकारके विचारकूं करता भया । इन तीन भूतों-विषे मैं परमात्मा जीवरूपसे प्रवेश करिके नामरूपकूं स्पष्ट करूं. प्रथम इन तीन भूतोंके तीन तीन भागोंकूं करूं । इन भूतोंके नव भाग करनेसे नाम रूप स्पष्ट होवेंगे । या प्रकारका विचार करिके सो परमात्मा एक एक भूतके दो दो भागोंकूं करिके पुनः तिनमेंसे एक एक भागकूं पृथक् राखकरि शेष रहे तीन भागोंके दो दो भाग करिके अपने अपने भागकूं त्यागकरि तिन वृद्ध भागोंविषे मेलनेसे त्रिवृतकरण करता भया । यह त्रिवृतकरण पंचीकरणका उपलक्षण है । इस रीतिसे उद्दालक पिताने नाम रूप प्रपंचकी उत्पत्ति भूतोंसे वर्णन करी । तिस पिताने ही अग्नि सूर्य चंद्रमा

विद्युत् यह च्यारि दृष्टांत जगत्के अपवादवासते कहे हैं। हे श्वेतकेतो! अग्नि आदि च्यारों विषे जो रक्त रूप प्रतीत होवे है सो रक्त रूप तेजका जानना। इन चारों विषे जो शुक्ल रूप है सो जलोंका जानना। इन चारों विषे जो कृष्ण रूप है सो पृथिवीका जानना। कारण तेज आदिकोंके रूपसे विना कार्यभूत अग्नि सूर्य चंद्र विद्युत् आदि विकार वाणीकरिके सिद्ध हैं। नाम मात्रसे पृथक् नहीं। पृथक् करे मिथ्या ही हैं। ऐसे जो जो संसारविषे पदार्थ प्रतीत होवे हैं सो सो अपने कारण तेज जल पृथिवी इनके रूपोंसे पृथक् नहीं। तेज आदिक सर्व पदार्थोंका कारण परमात्मा है। ता परमात्मारूप कारणसे भिन्न करिके कोई तेज आदि सिद्ध होवे नहीं। या सत्यपरमात्मारूप कारणके ज्ञानसे तेज आदि कार्यका ज्ञान होवे है। ऐसे एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान कह्या। अब या अर्थविषे विद्वानोंका अनुभव वर्णन करे हैं। हे श्वेतकेतो! केईक विद्वान् कारणकूं सत्य जानकरि हर्षकूं प्राप्त हुए या प्रकारका वचन कहते भये। हमारे विद्यारूप कुलमें जो पुरुष उत्पन्न होगा तिनमें कोई पुरुष भी अज्ञात वस्तुका कथन न करेगा। किंतु कारणरूप सत्यकूं जानकरि तथा कारणसे भिन्न कार्यकूं मिथ्या जानकरि ज्ञात वस्तुका ही निरूपण करेगा। ऐसे बाह्य अग्नि चंद्रादि सर्व पदार्थोंमें भूतकार्यता वर्णन करिके अंतर स्थूल सूक्ष्म शरीरमें भी भूतकार्यताकूं वर्णन करे हैं। हे श्वेतकेतो! भक्षण करे अन्नके उदरमें तीन भाग होवे हैं। अन्नका जो स्थूल भाग है सो विष्ठा होइ जावे है। जो मध्यम भाग है ताका मांस हो जावे है। सूक्ष्म भागका मन कार्य होवे है। पान करे जलके भी तीन भाग होवे हैं स्थूल भागका मूत्र होइ जावे है। मध्यम भागका रुधिर होवे है। सूक्ष्म भागका कार्य प्राण होवे है। तैल घृतादि रूप

तेजके भक्षण करनेसे स्थूल भागका कार्य अस्थि होइ जावे है। मध्यम भागका मज्जा होवे है। सूक्ष्म भागका वाक्इंद्रिय उत्पन्न होवे है। यातें अन्नका कार्य मन है। जलका कार्य प्राण है। अग्निका कार्य वाग्इंद्रिय है। यद्यपि अन्य उपनिषद्में भूतोंके सात्विक भागका कार्य मन, भूतोंके राजस भागका कार्य प्राण और आकाशके राजस भागका कार्य वाग्इंद्रिय कह्या है तथापि तैलघृतादिरूप तेज वाग्इंद्रियकी पुष्टिका हेतु है। तथा प्राणकी स्थितिका हेतु जल है। मनकी पुष्टिका हेतु अन्न है। और मन आदिक कार्य तौ भूतोंके सात्विक भागोंके ही हैं। श्वेतकेतुरुवाच। हे भगवन्! सूक्ष्म जे मन आदिक हैं ते स्थूल अन्न आदिकोंका कार्य कैसे हैं? उद्दालक उवाच। हे श्वेतकेतो! जैसे दधिके मथन करनेसे स्थूल दधिसे भी सूक्ष्म घृतकी उत्पत्ति होवे है तैसे मन आदिक सूक्ष्म भी स्थूल भूतोंसे प्रगट होवे हैं। जैसे स्थूल दधिका मध्यम भाग फेन होवे है स्थूल भाग तक्र होवे है तैसे स्थूल भूतोंके मध्यम स्थूल भागोंका काय पूर्ण निरूपण करा है। हे श्वेतकेतो! जबी तेरेकूं मन अन्नका कार्य है या अर्थके दृढ निश्चय करनेका संकल्प है तबी पंचदश दिन पर्यंत भोजन मति करो। परंतु जलका पान अपनी इच्छाके अनुसार करना। जबी जलका पान भी नहीं करोगे तबी शरीर भी रहेगा नहीं। हे सौम्य! यह मनोमय जीव अन्नकी शक्तिकरके षोडश कलावाला कहावे है। अन्नके भक्षणसे उत्पन्न भयी जे मनकी वृत्तियां हैं ते वृत्तियां ही कला कहिये हैं। तिन वृत्तियों विशिष्ट पुरुष भी षोडश कल कहिये है। ऐसे पिताकी आज्ञाकूं मानकरि पंचदशदिनपयत पुत्र भोजनकूं न करता भया। पिताकूं प्राप्त हुए ता पुत्रकूं पिता कहे हैं। हे पुत्र! तुमने जे गुरुके समीप वेदपठन करे हैं तिनकूं

मेरे ताई श्रवण करावो । पुत्र कहे है । हे भगवन् ! ऋग् यजुस् साम जे मैंने गुरुके पाससे श्रवण करे हैं तिनमेंसे मेरेकूं एक भी अब नहीं स्फुरण होता । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! जैसे महान् प्रज्वलित अग्नि काष्ठादिकोंकूं दग्ध करिके केवल खद्योतसदृश अंगाररूप शेष रहि जावे तब ता अग्निकरिके बहुत काष्ठादिकोंका दाह होवे नहीं तैसे पंचदश दिनपर्यन्त तुमने भोजन करा नहीं । यातें तुमारे मनकी पंचदश कलवोंका नाश भया है । एक कला शेष रही है । यातें मनकरिके तुम किंचित जानते नहीं । अबी भोजन करो । जबी ता श्वेतकेतुने भोजन करा और पिता वेद पूछने लगे तबी श्वेतकेतु सर्व कहता भया । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! जैसे खद्योतसदृश अग्निकूं शुष्क तृणों करि वृद्ध करे तबी महान् काष्ठोंकूं भी सो अग्नि दाह करे है । आहारके न करनेसे तेरे मनकी कला शेष एक रही थी, अबी भोजन करनेसे अग्निकी न्याईं ते षोडश कला सावधान भयी हैं । यातें ही तुम वेदोंकूं जानते हो । इस रीतिसे पिता उद्दालक तेज आदिकोंका कारण अद्वितीय परमात्मा तत्पदार्थका निरूपण करते भये । अब सो अद्वितीय परमात्मा ही त्वंपदार्थ प्रत्यक्रूप है या अर्थकूं वर्णन करे हैं । हे श्वेतकेतो ! यह जीवात्मा सुषुप्ति अवस्थाविषे सद्रूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है । मनरूप उपाधिके लय होनेसे यह अपने वास्तव ब्रह्मरूपकूं सुषुप्तिमें प्राप्त हुआ स्वपति या नामवाला होवे है । स्वपति नामका अर्थ यह-स्व जो अपना स्वरूप ताकूं प्राप्त होवे है । यातें ही स्वपति नामवाला जीव सुषुप्तिमें कह्या जावे है । जैसे चीलनामक पक्षी सूत्रकरि बांधा हुआ अनेक दिशावोंमें चलायमान होवे है, परंतु अन्यस्थानमें आश्रयकूं न प्राप्त होइकरि अपने खूंटीरूप स्थानमें प्राप्त होवे तैसे मनविशिष्ट जीव भी

जाग्रत्स्वप्नमें भ्रमण करता हुआ स्थितिकूं प्राप्त होवे नहीं। सुषुप्ति अवस्थामें ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। हे श्वेतकेतो ! यह आत्मा वास्तवसे क्षुधा पिपासासे रहित है। प्राणोंका धर्म ही क्षुधा पिपासा है। प्राणोंके साथ अध्यास करिके जागरित स्वप्नावस्था विषे तिन प्राणोंके धर्म क्षुधा पिपासाकूं व्यर्थ ही अपनेविषे माने है। जबी क्षुधाकरि पीडित हुआ पुरुष अन्नका भक्षण करे है ता अन्नकूं जल द्रवीभावकरिके ले जावे है। यातें जलौका नाम अशनाया है। अर्थ यह-अशन जो भोजन ताकूं जो लेजावे ताकूं अशनाया कहे हैं। जैसे अश्वोंके प्राप्त करनेहारेकूं अश्वनाय कहे हैं। गौवोंकूं ले जानेवालेकूं गोनाय कहे हैं तैसे जलोंका नाम अशनाया है और पान करे जलकूं तेज शोषणस्वभाववाला ले जावे है। यातें तेजका नाम उदन्या यह श्रुति भगवती कहे हैं। दृष्टांत अश्वनाय गोनाय कायामें भी जान लेना। हे श्वेतकेतो ! या शरीररूप कार्यकरि अन्नरूप कारणकूं जानो काहेते कार्यद्वारा ही कारणका ज्ञान होवे है। यातें शरीररूप कार्यद्वारा कारण अन्नका ज्ञान होवे है ता अन्नरूप कार्यसे पृथिवीरूप कारणकूं निश्चय करो। तथा पृथिवीरूप कार्यसे जलरूप कारणकूं निश्चय करो। जलरूपकार्यसे तेजरूप कारणकूं निश्चय करो। तेजरूप कार्यकरिके कारण जो सदात्मा ब्रह्म है ताकूं निश्चय करो। यह स्थावर जंगमरूप सर्व प्रजा सद्ब्रह्मका ही कार्य है। तथा ता सद्रूप ब्रह्ममें स्थित है। ता ब्रह्ममें ही लय भावकूं प्राप्त होवे है। यातें सर्व नाम रूप प्रपञ्च आत्मारूप है। या सूक्ष्म आत्मासे भिन्न नहीं। सो ब्रह्म ही आत्मा है। ऐसे ब्रह्मरूप ही तुम हो। शंका। हे भगवन् ! मैं ब्रह्मरूप कैसे हूं ? मैं परिच्छिन्न हूं। ब्रह्म तौ व्यापक है। यातें मैं ब्रह्मरूप नहीं। समाधानरूप प्रथमाभ्यासकूं पिता कहे हैं। हे

श्वेतकेतो ! जबी पुरुष मृत्युकूं प्राप्त होवे है ता पुरुषके प्रथम नेत्रादिक इंद्रियसहित वाक्इंद्रिय मनमें लय होइ जावे हैं। मन प्राणविषे लयभावकूं प्राप्त होवे है। प्राण सूक्ष्म पञ्च भूतोंसहित जीवात्मामें लय होवे है। तिन भूतोंसहित जीवात्मा मायासहित ब्रह्मविषे लयभावकूं प्राप्त होवे है। यातें मरणकालविषे जा ब्रह्ममें एकताकूं जीव प्राप्त होवे है। ऐसे ब्रह्म ही तुम हो। और नित्य सुषुप्तिअवस्थामें ता ब्रह्मके साथ अभेद भावकूं प्राप्त होते हो। परिच्छिन्नता आदिक भी केवल शरीरादि उपाधि करिके हैं। वास्तवसे तूं शुद्ध पूर्ण ब्रह्मरूप ही है। यातें परिच्छिन्न देहादिकोंविषे अभिमानकूं त्यागकरि अपने शुद्धरूपकूं स्मरण करो। शंका। हे भगवन् ! जबी सर्व जीव सुषुप्तिअवस्थाविषे ब्रह्ममें एकताकूं प्राप्त होवें तबी सर्व पुरुषोंने अनुभव करा चाहिये। जो हम ब्रह्मके साथ अभिन्न भये हैं। अभेद भी होवे और ज्ञान न होवे यामें अनुकूल दृष्टांतकूं मेरे ताईं आप निरूपण करो। ऐसे प्रश्नकूं श्रवण करिके पिता द्वितीय अभ्यासकूं कहे हैं। हे पुत्र ! जैसे नाना वृक्षोंके रसोंकूं मक्षिका मधुमें प्राप्त करे हैं। तिन रसोंकूं यह ज्ञान होवे नहीं। हम अमुक वृक्षोंके रस हैं। और जैसे किसी पुरुषके गृहमें ही स्वर्णनिधि मृत्तिकासे आवृत हुई स्थित होवे ता पुरुषकूं निधिका ज्ञान होवे नहीं तैसे ही तुम नित्य ब्रह्ममें सुषुप्ति अवस्थाविषे एकताकूं प्राप्त होते हो। परंतु अज्ञानके सद्भावसे तुमारेकू हम ब्रह्मसे अभिन्न भये हैं, यह ज्ञान होवे नहीं। तथा ज्ञानके साधन मन आदिकोंके अभाव होनेसे भी सुषुप्तिमें ज्ञान नहीं होवे है। और अविद्याकर्मवासनाके अनुसार व्याघ्र सिंह वृक वराह कीट पतंग दंश मशक इत्यादि अपने शरीरोंकूं उठकरि सर्व जीव प्राप्त होवे हैं। यातें जा अपने ब्रह्मरूपकूं न जानकरि अनेक क्षुद्र

योनियोंकूं पुरुष प्राप्त होवे हैं। ऐसा शुद्ध ब्रह्म तुमारा स्वरूप है ताकूं निश्चय करो। हे भगवन् ! सुषुप्तिअवस्थाविषे तथा मरण अवस्थाविषे एकताकूं तौ जाना। परंतु जैसे पुरुष गृहसे बाहिर आवे है ताकूं यह स्मरण होवे है। जो हम गृहसे बाहिर आये हैं। तैसे सुषुप्ति अवस्थाविषे ब्रह्मके साथ हम अभिन्न भये थे। अब ता ब्रह्मसे ही हमने आगमन करा है। ऐसा जागरितमें स्मरण हुआ चाहिये तो होवे नहीं यातें मैं ब्रह्म नहीं हूँ। या शंकाके समाधान करनेवासते तृतीय अभ्यासकूं पिता कहे हैं। हे पुत्र ! जैसे प्राणियोंके कर्मोंकरि प्रेरे हुए मेघ समुद्रसे जलकूं ग्रहण करिके अन्य देशमें गेरे हैं। सो जल नदीरूपसे सागरके सम्मुख गमन करे है। ते नदियां अपने वास्तव समुद्ररूपकूं जाने नहीं। तैसे तुम भी अद्वितीय ब्रह्मरूप हो केवल उपाधिकरि परिच्छिन्नभावकूं तुमने धारण करा है। यातें देहादि उपाधिकरिके तुम परिच्छिन्नताकूं प्राप्त हुए हो। अब तुम देहादि उपाधिकूं त्यागिकरि अपने शुद्धरूपकूं निश्चय करो। तुम शुद्ध निर्विकारब्रह्मरूप हो। शंका। हे भगवन् ! नदियोंके दृष्टांतविषे मेरेकूं संदेह है। जैसे नदियां समुद्रमें लयभावकूं प्राप्त हुई नाशकूं प्राप्त होवे हैं। तैसे जीवका नाश होवेगा। ता नाशी जीवकी ब्रह्मसे एकता बने नहीं और नाम रूप प्रपंच भी ता सद्रूप ब्रह्मसे उत्पन्न भया है सो प्रपंच सत्य हुआ चाहिये। या शंकाकी निवृत्तिवासते पिता चतुर्थ अभ्यासकूं कहे हैं। हे श्वेतकेतो ! जैसे या वृक्षके मूलदेशमें कुठार आदिकोंके प्रहार करनेसे रस निकसे है। मध्यमें वृक्षकूं प्रहार करे तौ भी रस निकसे है। तथा ता वृक्षके अग्रदेशमें प्रहार करनेसे रस निकसे है। यातें सो वृक्ष जीवसहित निश्चय होवे है। तथा सो वृक्ष शरीरवाला जीव जबी एक शाखाका त्याग करे

तबी सो शाखा शुष्क होइ जावे है। द्वितीय शाखाके त्याग करनेसे द्वितीय शाखा सूक जावे है। जबी सर्व वृक्ष शरीरका त्याग करे है तबी सर्व वृक्ष सूक जावे है। तैसे यह जीवात्मा मनुष्य देहादिकोंकूं त्यागता हुआ द्वितीय देहोंकूं ग्रहण करे है। कबी जीवका नाश होवे नहीं, केवल कर्मोंकरि प्राप्त या स्थूल शरीरका ही नाश होवे है। यह नित्य जीवात्मा ही ब्रह्मरूप है। और ब्रह्मसे उत्पन्न भया जो नाम रूप जगत है सो रज्जु सर्पकी न्याई मिथ्या है सत्य नहीं। जैसे रज्जुसे सर्प उत्पन्न भया मिथ्या कहिये है सत्य नहीं कहिये है। तैसे ब्रह्मसे उत्पन्न भया प्रपंच मिथ्या है सत्य नहीं। या स्थानमें यह अभिप्राय उपरिसे जानने योग्य है। जसे रज्जुका सर्प विवर्त्त है तैसे ब्रह्मका जगत् विवर्त्त है। विवर्त्तका लक्षण यह है। "अतात्त्विकोऽन्यथाभावो विवर्त्तः।" सत्य अधिष्ठानने ही मिथ्यारूपसे प्रतीत होना यह लक्षणका अर्थ है। ब्रह्मका जगत् परिणाम होता तब जगत् सत्य होता काहेते "तात्त्विकोऽन्यथाभावः परिणामः" जैसे दुग्ध वास्तवसे दधिरूपताकूं प्राप्त होवे है ता दुग्धसे भिन्न ही दधि है। तैसे निरवयव ब्रह्मका यह जगत् परिणाम बने नहीं। विवर्त्त तौ निरवयव आकाशमें भी नीलरूप तथा कटाहाकाररूपसे होवे है यातें जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या उत्पन्न होवे है और जैसे आकाशविषे मिथ्या नीलरूपादि प्रतीत होवे है तैसे ब्रह्मसे मिथ्या ही उत्पन्न जगत् ब्रह्ममें ही प्रतीत होवे है। यातें हे श्वेतकेतो! तुम अपने अद्वितीय भावकूं स्मरण करो। शंका। हे भगवन्! या सूक्ष्मब्रह्मसे यह स्थूल प्रपंच कैसे उत्पन्न होवे है। तथा ब्रह्म या स्थूल जगत्का आधार भी कैसे है। स्थूल मृत्तिका ही घटकूं उत्पन्न करे है। परमाणुसे घटकी उत्पत्ति देखनेमें आवे

नहीं तथा सूक्ष्म परमाणुके आश्रित होइकरि घट स्थित भी होवे नहीं किंतु स्थूल मृत्तिकामें स्थित होवे है। यह सूक्ष्म ब्रह्म जगतका कारण तथा आश्रय कदाचित् बने नहीं। या शंकाकी निवृत्ति-वासते पिता पंचम अभ्यासकूं कहे हैं। हे पुत्र! या वटवृक्षसे एक फलकूं ले आवो। श्वेतकेतु ले आता भया। पिता कहे हैं या फलकूं भेदन करो। श्वेतकेतु कहे है। हे भगवन्! या फलको भेदन करा है। पिता कहे हैं या भेदन करे फलमें तुम क्या देखते हो। पुत्र कहे है। हे भगवन्! सूक्ष्म बीज प्रतीत होवे हैं। पिता कहे हैं। हे पुत्र! इन बीजोंमेंसे एक सूक्ष्म बीजकूं भेदन करो। पुत्रने भेदन करिके कहा हे भगवन्! बीज भेदन करा है। पिता कहे हैं। भेदन करे बीजमें तुम क्या देखते हो। पुत्र कहे है। हे भगवन्! मेरेकूं अब किंचित् भी प्रतीत नहीं होता। पिता कहे हैं हे पुत्र! यह महान् वट वृक्ष या सूक्ष्म वटबीजमें स्थित है। जबी ता बीजमें वृक्षका अभाव माने तौ जैसे वंध्यापुत्रसे किंचित् उत्पन्न होवे नहीं। तैसे ता सूक्ष्म बीजसे भी वृक्ष उत्पन्न नहीं होवेगा। यातें सूक्ष्म रूपसे यह महान् वृक्ष उत्पत्तिसे प्रथम ता बीजमें स्थित हुआ तासे ही उत्पन्न होवे है। तैसे या सूक्ष्म ब्रह्मविषे भी यह जगत् सूक्ष्मरूपसे स्थित हुआ तासे ही उत्पन्न होवे है। और हे पुत्र! यह हमारा समाधान तुमारी शंकाकूं मान करि है। वास्तवसे तौ महान् आकाशादिकोंसे भी ब्रह्म महान् है। और सत्तारूपसे घटादिरूप सर्व जगत्में व्यापक है। सूक्ष्मरूपसे जो श्रुतिमें कथन करा है सो केवल दुर्लक्ष अभिप्रायसे कह्या है। अल्प है या कहनेमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं। जैसे सूक्ष्म वस्तुका दर्शन सावधान हुए विना होवे नहीं। तैसे सावधान हुए विना ब्रह्मका प्रत्यग्रूपसे दर्शन होवे नहीं। यातें तुम शुद्ध ब्रह्मरूप हो॥ शंका।

हे भगवन् ! प्रत्यग् ब्रह्म जबी सर्वत्र व्यापक है तौ सर्वकूं अपना आत्मारूपसे प्रतीत हुआ चाहिये । तथा सर्व जगत्विषे व्यापक होनेसे सर्व जगत्में भी प्रतीत हुआ चाहिये । जबी सूक्ष्म होनेसे दर्शनके अयोग्य कहोगे तौ ता ब्रह्मका साक्षात्कार किसी पुरुषकूं भी न होनेसे संसारभ्रम किसीका भी निवृत्त नहीं हुआ चाहिये यातें मैं ब्रह्मरूप कैसे हूं । या शंकाकी निवृत्तिवासते पिता षष्ठ अभ्यासका उपदेश करे हैं । हे पुत्र ! या लवणकूं रात्रिमें जलविषे गेरकरि प्रातःकालमें मेरेकूं तुमने प्राप्त होना । श्वेतकेतुने तैसे करा प्रातःकालमें पिताके समीप आइ स्थित भया । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! जो लवण रात्रिविषे तुमने जलमें गेरा था ताकूं निकास लेवो । श्वेतकेतुने जलमें हस्तकूं पाइकार निकासने वासते बहुत परिश्रम करा परंतु जलसे बाहिर निकसा नहीं । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! जलके उपरिदेशसे आचमन करो । श्वेतकेतुने जबी आचमन करा तब पिता पूछे हैं यामें क्या है । पुत्र कहे है हे भगवन् ! लवण है । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! या जलके मध्यम देशसे आचमन करो । पुत्रने जबी मध्यदेशसे आचमन करा तबी पिता पूछे हैं । यामें क्या है । पुत्र कहे है । हे भगवन् ! लवण है । पिता कहे हैं । हे पुत्र ! अब नीचे देशसे आचमन लेवो । जबी पुत्रने आचमन लिया तबी पिता पूछे हैं यामें क्या है । पुत्र कहे है हे भगवन् ! लवण है । पिता कहे हैं हे पुत्र ! या जलकूं त्यागकरि हमारे पास आवो । पुत्र लवण सदा वर्त्तमान है ऐसे कहता हुआ पिताके पास प्राप्त भया । पिता कहे हैं हे पुत्र ! जैसे या जलमें लवण है भी परंतु तुमारेकूं इन नेत्रोंकरि प्रतीत होवे नहीं तैसे सर्वमें व्यापक ब्रह्म भी बहिर्मुख इंद्रियोंकरि प्रतीत होवे नहीं और जैसे लवणका रसनाकरि ज्ञान होवे है तैसे

शुद्ध बुद्धि करिके आत्मा प्रत्यक्ष होवे है यातें श्रद्धासहित शुद्ध बुद्धिकरिके अपने शुद्ध स्वरूपकूं निश्चय करो। ब्रह्मकूं कहीं दूर नहीं जानो या शरीरमें ही साक्षीरूपसे ब्रह्म स्थित है। जैसे जलसे भिन्न ही लवण है तैसे देहादिकोंसे पृथक् ही प्रत्यग् ब्रह्म है। यातें देहादिकोंसे भिन्न शुद्ध ब्रह्मरूप तुम हो। शंका। हे भगवन्! नेत्रादिकोंके अविषयस्वभाव आत्माके प्रत्यक्षमें कोई उपाय कथन करो। जा उपायसे मैं शीघ्र ही आत्माकूं जानकरि कृतार्थ होवों या शंकाके प्रहारवासते पिता सप्तम अभ्यासकूं कहे हैं। हे पुत्र! गंधारदेशविषे रहनेहारे किसी पुरुषकूं चौर पुरुष पकडकारि वनमें ले आवते भये। ता पुरुषके नेत्रोंकूं बांधके ता वनमें ताके भूषण वस्त्रोंकूं उतारकारि छोडते भये। सो गंधारदेशका पुरुष ता वनविषे महान् दुःखकूं प्राप्त हुआ रुदन करे है। कबी पूर्व मुख करिके रुदन करे है। कबी उत्तर मुख करिके रुदन करे है। कबी नीचे मुख करिके रुदन करे है। और मुखसे यह शब्द करे है। मैं गंधारदेशमें रहनेवाले पुरुषकूं चौरोंने नेत्रादिक बांधके तथा वस्त्रभूषण उतारकारि या कठिन वनमें मेरेकूं छोड दिया है। या वनमें मेरेकूं सिंह व्याघ्र सर्पादि दुःख देवे हैं। ऐसे ऊंचे पुकारते पुरुषकूं दुःखी देखिकारि कोई कृपालु पुरुष ताके नेत्रोंके बंधनकूं खोलकारि यह कहता भया। हे पुरुष! जा गंधारदेशसे तूं आया है। या मार्गसे तुम अपने गंधारदेशकूं चले जावो। या दिशामें ही गंधार है। सो पुरुष ता दयालुके उपदेशकूं श्रवणकारि अपने गंधारदेशमें प्राप्त भया। कैसा भी सो पुरुष था, जो उपदेशके ग्रहण करनेमें समर्थ तथा आप बुद्धिमान् था सो अपने देशकूं प्राप्त होइके परम आनंदकूं प्राप्त भया। हे श्वेतकेतो! ऐसे ही तुमारेकूं कामक्रोधादि चोरोंने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप स्वदेशसे ले

आइके संसाररूपी वनमें प्राप्त करा है तिन कामक्रोधादिक चोरोंने तुमारे साक्षीरूप नेत्रकूं बांधके महान् दुःखकूं प्राप्त करा है। यातें ही तूं संसाररूपी वनमें दुःखकूं प्राप्त भया है। ब्रह्मवेत्ता गुरुके महावाक्य उपदेशरूप हस्तकरिके अज्ञानरूप दृढबंधनकी निवृत्ति करो। यातें तुम भी गंधार देशकी न्याईं अपने ब्रह्मरूपदेशकूं प्राप्त होवो। गुरुका उपदेश ही ब्रह्मप्राप्तिमें द्वार है। ताके सहकारी शिष्यकी बुद्धि तथा आत्मजिज्ञासा यह दोनों जानने। गुरुउपदेशकूं श्रवण करिके आत्मनिश्चयवाला पुरुष ब्रह्मस्वरूपकूं प्राप्त होवे है। ता महात्मा ज्ञानीका तबपर्यन्त शरीर प्रतीत होवे है जबपर्यन्त प्रारब्ध है। भोगकरि प्रारब्धके निवृत्त भये सो विद्वान् विदेहकैवल्यकूं प्राप्त होवे है। जा ब्रह्ममें विद्वान् अभिन्न होवे है ऐसा शुद्ध ब्रह्म ही तुमारा स्वरूप है। शंका। हे भगवन्! सुषुप्तिकी न्याईं मरणकाल विषे जैसे अज्ञानी ब्रह्मसे अभिन्न होवे है तैसे विद्वान् भी ब्रह्मसे अभिन्न होवे है। वा कोई और रीतिसे ब्रह्मके साथ अभिन्न होवे है। या शंकाकी निवृत्तिवासते पिता अष्टम अभ्यासकूं कहे हैं। हे पुत्र! मरणकालमें अज्ञानी पुरुषके समीप संबंधी आइकरि पूछे हैं। तुम मैं पुत्रकूं जानते हो तुम मैं पिताकूं जानते हो। सो पुरुष तबपर्यन्त जानता है जबपर्यन्त ताके वाग् आदि इन्द्रिय मनमें लयभावकूं नहीं प्राप्त भये तथा मन प्राणमें प्राण जीवमें जीव परमात्मामें लयभावकूं प्राप्त नहीं भया। जबी ताके वाग्आदि सर्व लयभावकूं प्राप्त होवे हैं तब किंचित् भी जाने नहीं। ब्रह्मप्राप्तिपर्यन्त तौ या क्रमसे विद्वान् अज्ञानीकी समान गति है। विलक्षणता यह है। जो अज्ञानी पुरुष है सो मरणकालमें सुषुप्तिकी न्याईं ब्रह्ममें लयभावकूं प्राप्त तौ होवे है। परंतु ज्ञानके अभावसे ताकी अविद्या निवृत्त होवे नहीं। तथा

कर्मवासना भी सुषुप्तिकी न्याईं सूक्ष्मरूपसे स्थित होवे है। यातें सो अज्ञानी पुरुष अविद्याकामकर्मके अधीन हुआ पुनः जन्म मरणकूं प्राप्त होवे है। और ज्ञानी पुरुषकी अविद्याका ब्रह्मज्ञानकरि नाश होवे है। अविद्याके नाश होनेसे ता अविद्याके कार्य वासना कर्मसंशय विपर्ययादि सर्व निवृत्त होवे हैं। तथा ता ज्ञानीके प्राणादिक परलोकमें गमन करे नहीं किन्तु ब्रह्ममें लयभावकूं प्राप्त होवे हैं। यातें हे श्वेतकेतो ! ज्ञानी या शरीरकूं त्यागके जा ब्रह्मसे अभिन्न होवे है ऐसे शुद्ध ब्रह्मरूपकूं प्राप्त होवो सोई तुमारा स्वरूप है। शंका हे भगवन् ! जबी अज्ञानी पुरुषकूं मृत्यु परलोकमें प्राप्त करे है। ज्ञानीकूं भी किसवासते मृत्यु परलोकविषे नहीं ले जाता। यामें मेरे ताईं कारणकूं कहो। अथवा अज्ञानी भी मरणकालमें ब्रह्मकूं प्राप्त हुआ परलोकमें सुखदुःखकूं किस वासते प्राप्त होवे है। या शंकाकी निवृत्तिवासते अंत्यका नवम अभ्यास पिता कहे हैं। हे श्वेतकेतो ! जैसे एक पुरुष चोर था। दूसरा पुरुष साधु था। तिन दोनोंकूं राजाके किंकरोंने चोर जानके बलात्कारसे पकड़ लिया राजाके समीप प्राप्त करिके किंकरोंने कहा यह दोनों चोर हैं। इन्होंने धनकी चोरी करी है। चोर कहे है मैंने चोरी नहीं करी। साधुपुरुष भी कहे हैं हमने चोरी नहीं करी। राजाके मंत्री कहे हैं। जब तुमने चोरी नहीं करी तौ या तप्त परशुकूं हस्तसे ग्रहण करो। जबी तुम चोर नहीं होवोगे तब तुमारा हस्त दग्ध होवे नहीं। प्रथम चोरने अपने कर्मकूं प्रगट न करा और मिथ्या संभाषण करिके तप्त परशुकूं ग्रहण करा ता चोरका हस्त दाहकूं प्राप्त भया। राजाके भृत्योंने ताकूं चोर जानकरि अनेक प्रकारका दंड दिया। साधुपुरुषकूं तप्त परशु ग्रहण वासते जबी कहा तबी ता साधुका हस्त दाह भया नहीं। ता कालमें राजाने

तथा राजाके भृत्योंने ता साधुपुरुषकूं क्षमा कराई। तथा अपना अपराध क्षमा कराइके ता साधुकूं अन्नवस्त्रादिक भी दिये। ऐसे ही अज्ञानी पुरुष अपने शुद्ध रूपकूं न जानता हुआ कहे है मैं ब्रह्म नहीं हूं मैं सुखी दुःखी जन्ममरणवाला हूँ। यह ही चोरीरूप स्वकर्मका छिपाना है। जैसे ता चोरके प्रथम हस्तका दाह भया। पश्चात् राजाके भृत्योंने बांधके दुःख दिया। तैसे यह अज्ञानी प्रथम मृत्युसे पीडाकूं प्राप्त होवे है पश्चात् चौरासी लक्षयोनिरूप बंधनकूं प्राप्त हुआ दुःखकूं प्राप्त होवे है। जैसे साधु पुरुषकूं किंचित् भी दुःख होवे नहीं। सर्व राजा आदिक ताका पूजन ही करते भये तैसे ज्ञानी पुरुष भी अपने शुद्ध स्वरूपमें निश्चयवाला हुआ तथा सर्व विक्षेपसे रहित हुआ ब्रह्मा आदिकों करिके भी पूज्य होवे है। यातें अज्ञानी पुरुष आपसे शुद्ध रूपकूं न जानकरि अपने अज्ञान करिके ही पुनः पुनः जन्म मृत्युकूं प्राप्त होवे है। ज्ञानी तौ शुद्धसच्चिदानंद ब्रह्मकूं अपना स्वरूप जानकरि पुनः जन्म मृत्युकूं प्राप्त होवे नहीं। जा ब्रह्मस्वरूपकू ज्ञानी प्राप्त होवे है। हे श्वेतकेतो! "तत्त्वमसि" अर्थ यह सो ब्रह्म तुमारा अपना स्वरूप है। ताकूं जानकरि कृत्यकृत्यभावकूं प्राप्त होवो। श्रुति भगवती सर्व मुमुक्षु जनोंकूं कहे है। भो मुमुक्षवः! ऐसे उपदेशकूं पिता उद्दालकसे श्वेतकेतुने श्रवण करा और ब्रह्मस्वरूपकूं जानकरि प्रारब्धकूं भोगकरि क्षय करता हुआ विदेह कैवल्यकूं प्राप्त भया। ऐसी ऐसी अनेक कथा द्वारा श्रुतिभगवती सर्व मुमुक्षुजनोंके मोक्षवासते ब्रह्मके आत्मरूपसे उपदेश करे हैं। यातें मुमुक्षुजनोंकूं ब्रह्मके आत्मरूपसे निश्चयवासते आत्माके ही श्रवण मनन निदिध्यासन कर्त्तव्य हैं। अब प्रसंगसे श्रवण आदिकोंकूं कहे हैं। श्रवण दो प्रकारका है। एक साधारण श्रवण है द्वितीय असाधारण श्रवण है। साधारण

कथा आदिकोंका श्रवण तथा महात्मा संत जनोंके वचनोंका श्रवण याकूं साधारण श्रवण जानना। और षड्विधलिंगोंसे वेदांतोंका अद्वितीय ब्रह्ममें तात्पर्य निश्चय करना यह द्वितीय असाधारण श्रवण है। अब वेदांतोंके तात्पर्यके ग्रहण षड्विधलिंगोंकूं कहे हैं। उपक्रमउपसंहार १। अभ्यास २। अपूर्वता ३। फल ४। अर्थवाद ५। उपपत्ति ६। तिन षट्के नामोंकूं कहिकरि अब तिन एक एककूं कहे हैं। उपक्रम नाम आरंभका है। उपसंहार नाम समाप्तिका है। आदि अंतमें अद्वितीय ब्रह्मके कथनका नाम उपक्रम उपसंहार यह प्रथम लिंग है। छांदोग्यउपनिषद्के या षष्ठप्रपाठकके आरंभमें यह श्रुति वचन है। "सदेव सौम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्" अर्थ-यह हे सौम्य! यह सर्वजगत् उत्पत्तिसे प्रथम सत्यस्वरूप ही होता भया। सो सत् ब्रह्म सजातीय विजातीय स्वगत भेदत्रयसे रहित है। प्रसंगसमाप्तिमें यह श्रुतिवचन है। "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं" अर्थ यह-इदं सर्वं नाम यहसर्व जगत् ऐतदात्म्यं नाम या आत्माका ही स्वरूप है। आदि अंतमें एक अर्थका बोधक होनेसे उपक्रम उपसंहार एक ही लिंग है। अब द्वितीय अभ्यास नामक लिंगका निरूपण करे हैं। सत् अद्वितीय ब्रह्मके वारंवार कथनका नाम अभ्यास है। या छांदोग्यके षष्ठप्रपाठकमें ही यह श्रुतिवचन नव वार कहा है। "तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" या नव वार पठित श्रुतिका अर्थ यह है। तत्सत्यं नाम सो ब्रह्म सत्य है। स आत्मा नाम साक्षी आत्मारूप ही ब्रह्म है। श्वेतकेतु कहे है मेरेकूं क्या तब ता श्वेतकेतुकूं पिता उद्दालक कहे हैं। हे श्वेतकेतो! तत्त्वमसि सो शुद्ध ब्रह्मस्वरूप सजातीय विजातीय स्वगत भेदत्रयरहित तुमारा आत्मा है। अब तृतीयलिंग अपूर्वताकूं कहे हैं। अद्वितीय ब्रह्ममें उपनिषत् प्रमाणसे

विना अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अविषयत्व प्रतिपादनका नाम अपूर्वता है। या छांदोग्यके षष्ठ प्रपाठकमें ही अपूर्वताप्रतिपादक यह श्रुतिवचन है। "अत्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसे" अर्थ यह हे श्वेतकेतो ! अत्र वाव नाम या देहमें ही सत्सोम्य न निभालयसे नाम सत्स्वरूप ब्रह्म स्थित है ताकूं तुम नहीं जानते किल पद आचार्यके महावाक्य उपदेशरूप उपायकूं ब्रह्मप्राप्तिमें द्वाररूपसे कहे हैं। अब चतुर्थ फलरूप लिंगकूं कहे हैं। अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानसे ता अद्वितीय ब्रह्मकी प्राप्तिरूप फलके कथनका नाम फललिंग है। ता फलमें या छांदोग्य उपनिषत्के षष्ठ अध्यायकी श्रुति कहे हैं। "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये।" अर्थ यह–तस्य तावदेव चिरं नाम ता ज्ञानीकूं विदेहमें तावत्काल विलंब है। यावन्न विमोक्ष्ये नाम यावत्काल प्रारब्धसे रहित नहीं होता। अथ नाम भोगकरि प्रारब्धके निवृत्त हुए संपत्स्ये नाम विदेहकैवल्यकूं प्राप्त होवे है। अब पंचम अर्थवादरूप लिंगकूं कहे हैं। अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानकी स्तुति करनेका नाम अर्थवाद है। या छांदोग्यके षष्ठ अध्यायमें ही यह श्रुतिवचन है। "येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतविज्ञातं विज्ञातमिति" अर्थ यह-येनाऽश्रुतं श्रुतं भवति नाम जा एक ब्रह्मके श्रवण करनेसे नहीं श्रवण करा भी पदाथ श्रवण होइ जावे है। अमतं मतं नाम नहीं मनन करा भी मनन होइ जावे। अविज्ञातं विज्ञातमिति नाम अनिश्चित पदार्थ भी निश्चित होइ जावे। ऐसे अद्वितीय ब्रह्मके श्रवण मनन निदिध्यासन करनेसे अन्य अश्रुत अमत अविज्ञात पदार्थके श्रवणादिरूपसे स्तुति कथन करी है। अब षष्ठ उपपत्तिरूप लिंगका निरूपण करे हैं। अद्वितीय ब्रह्मका दृष्टांतरूप युक्तियोंसे वारंवार प्रतिपादनका नाम

उपपत्ति है । ता उपपत्तिके प्रतिपादक छांदोग्यश्रुतिके या षष्ठ अध्यायके वाक्यकूं कहे हैं ।" वाचाऽऽरंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् " अर्थ यह-वाचाऽऽरंभणं विकारः नाम वाणी करि उच्चारणमात्र ही घटादि विकार हैं । नामधेयं नाम जिससे घटादि नाममात्र है यातें मिथ्या ही है । मृत्तिकेत्येव सत्यं नाम कारणरूप मृत्तिका सत्य है । ऐसे छांदोग्यविषे उद्दालक ऋषिने मृत्तिका स्वर्णलोहादिकोंके दृष्टांतोंसे कारणब्रह्मकूं अद्वितीयता प्रतिपादन करी है । इस प्रकारके षड्विध लिंगोंसे अद्वितीयब्रह्ममें वेदांतोंके तात्पर्यके निश्चयका नाम श्रवण है । वेदांतब्रह्मके प्रतिपादक हैं वा अन्य किसी अर्थके प्रतिपादक हैं या प्रकारकी असंभावना या श्रवणसे निवृत्त होवे है । अब मननकूं कहे हैं भेदबाधक युक्तियोंसे अद्वितीय ब्रह्मके चिंतनका नाम मनन है । युक्ति यह है । जीव ईश्वरका स्वाभाविक भेद है वा औपाधिक भेद है । स्वाभाविक भेद माने साक्षीरूप जीव चेतनसे ईश्वरकूं भिन्न माने तौ ईश्वरमें जडताकी प्राप्ति होवेगी । ईश्वरकूं चेतनरूप श्रुति कहे हैं श्रुतिसे विरोध होवेगा । चेतनरूप ईश्वरसे जीवकूं भिन्न माने तौ एक ही चेतन है । चेतनभिन्न जड होवे है । यातें जीवमें जडताकी प्राप्ति होवेगी ऐसे स्वाभाविक भेद नहीं । उपाधिकरिके भेद माने तौ अंतःकरण उपाधि तौ सुषुप्तिमें रहे नहीं यातें सुषुप्तिमें जीव ईश्वरके भेदका लोप होवेगा । जबी अज्ञान उपाधि माने तौ बने नहीं । काहेतें अज्ञान शुद्ध ब्रह्मसे ईश्वरके भेदका साधक है । जीव ईश्वरके भेदका साधक नहीं । जबी माने तौ भी जीव ईश्वरके भेदकूं अज्ञान उत्पन्न करे है वा प्रकाशक है वा स्थित करे है । जीव ईश्वरके भेदकूं अनादि माननेसे प्रथम पक्ष असंगत है । अज्ञानकूं जड होनेसे द्वितीय पक्ष बने नहीं । तृतीय पक्षमें यह दोष है ।

प्रयोजन विना तौ अज्ञान भेदकूं स्थित करै नहीं और आश्रय विषयलाभसे विना अज्ञानका और प्रयोजन कह्या जावै नहीं। आश्रयविषय तौ निर्विभाग चेतन ही बने है । भेदकूं अज्ञानसे स्थित करना निष्फल है। इत्यादि युक्ति चिंतनरूप मननसे भेदकी निवृत्ति होवे है। तैलधारावत् ब्रह्माकारवृत्तिरूप निदिध्यासनसे अखंड ब्रह्मके ज्ञानद्वारा मोक्ष प्राप्त होवे है। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः। इति छांदोग्ये षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥ ॐनमो भगवते सूर्याय। पूर्व षष्ठ अध्यायविषे साक्षात् ब्रह्मका निरूपण करा है। अब सप्तम अध्यायविषे नामादिद्वारा ब्रह्मका परंपरासे उपदेश करे है। एक कालमें नारदमुनि संसारके तापोंकरि तप्त हुआ एकांत देशमें स्थित सनत्कुमार ऋषिकी शरणकूं प्राप्त भया और कहता भया। हे भगवन्! आप ब्रह्मात्माकूं भली प्रकार जानते हो ता ब्रह्मका मेरेकूं उपदेश करो। सनत्कुमार कहे हैं। हे नारद! आप जितनी विद्या जानते हैं सो संपूर्ण हमारेकूं श्रवण करावो। पश्चात् तुमारे ताईं हम ब्रह्मका उपदेश करेंगे। नारद उवाच। हे भगवन्! ऋक् यजुष् साम अथर्व इन चारों वेदोंकूं मैं पिता ब्रह्माजीकी कृपासे जानता हूं। तथा भारतरूप पंचम वेदकूं पुराणोंकूं व्याकरणकूं म जानता हूँ। श्राद्धादिक पितृकर्मके कहनेहारे पित्र्यनामक शास्त्रकूं मैं जानता हूं। तथा गणितशास्त्र तथा उपद्रवका बोधकशास्त्र तथा स्वर्णादि धन दाबे हुएका जा शास्त्रसे ज्ञान होवे है ताकूं मैं जानता हूं। तर्कशास्त्र नाम न्यायशास्त्रकूं तथा नीतिशास्त्रकूं तथा निरुक्त अंगकूं तथा शिक्षाकूं तथा कल्पकूं मैं जानता हूं तथा वैद्यक आयुर्वेदकूं तथा अस्त्रशस्त्रादिकोंकूं कहनेहारे धनुर्वेदकूं मैं जानता हूं। तथा ज्योतिषनामक अंगकूं तथा गारुडविद्याकूं तथा गीतविद्याकूं मैं जानता हूं। हे भगवन्! सर्व

विद्याओंका साक्षात् और परंपरासे अद्वैत ब्रह्ममें ही तात्पय है। ता ब्रह्मकूं मैं जानता नहीं यातें मैं तिन विद्याओंके पाठमात्रकूं जानता हूं। अर्थसे नहीं जानता। हे भगवन्! आपसदृश ब्रह्मवेत्ता महात्मावोंसे मैं यह श्रवण करता भया। "तरति शोकमात्मवित्" अर्थ यह जो आत्मवेत्ता पुरुष शोकरूप सर्व संसारकूं कारणसहित निवृत्त करे है। हे भगवन्! मैं तौ महान् शोककूं प्राप्त हूं। जैसे युवाअवस्थावाली तथा छोटे बालकोंवाली पतिव्रता स्त्रीका पति मृत होइ जावे तबी सो पतिव्रता स्त्री महान् शोककूं प्राप्त होवे है। तैसे आत्मज्ञानसे रहित मैं नारद महान् शोककूं प्राप्त होइ रहा हूं। यातें मेरेकूं शोकसमुद्रसे आप कृपाकरि पार करो। या प्रकारके नारदके वचनोंकूं श्रवण करि स्थूल अरुंधतीन्यायकरिके आत्माके बोधनवासते सनत्कुमारऋषि या प्रकारका वचन कहता भया। सनत्कुमार उवाच। हे नारद! जिन वेदादिकोंकूं तुम जानते हो ते सर्व नाममात्र ही हैं। ऋग्वेदादि तथा इतिहास पुराण व्याकरणादि षडंग तथा पित्र्यशास्त्रादि तुमने जे प्रथम निरूपण करे हैं ते सर्वही नामस्वरूप हैं। यातें हे नारद! नामकूं ब्रह्मरूप जानकरि उपासना करो। जैसे शालिग्रामविषे विष्णुका ध्यान नर्मदेश्वरमें शिवका ध्यान शास्त्रकी आज्ञा मानिके होवे है तैसे नामविषे ब्रह्मका ध्यान शास्त्र कहे है। नामके ब्रह्मरूपसे उपासनाका फल कहे हैं। जा पदार्थका नामसे उच्चारण होवे है ता सर्व लोक आदिकोंमें नामकूं ब्रह्मरूपसे उपासना करनेवालेका राजाकी न्याईं स्वतंत्र गमन होवे है। नारद उवाच। हे भगवन्! नामसे अधिक भी कोई पदार्थ है। सनत्कुमार उवाच। या नामसे नामका हेतु वाक् अधिक है। जैसे दो बिभीतका नाम बहेडे तथा दो बदरी फल मुष्टिके अंतर्गत होवें हैं तैसे वाणी मनमें

स्थित है। वाणीसे मन व्यापक है यह भाव है। मनकी इच्छा विना वाणीसे शब्द उच्चारण होवे नहीं। ऐसे नामकी न्याई वाग- आदिकोंकी उपासनावोंके फल भी सर्व लोकोंमें स्वतंत्र गमनादिक जान लेने। ऐसे ही नारदके अधिकता प्रश्न और सनत्कुमारके उत्तर जानने योग्य हैं। ता वाक्से वाक्का प्रेरक इच्छारूप मन अधिक है। ता मनसे कर्त्तव्य अकर्त्तव्यकूं पृथक् पृथक् जानने- हारी इच्छाका हेतु संकल्परूप अंतःकरणकी वृत्ति अधिक है। संकल्पसे संकल्पका हेतु स्मरणरूप चित्त अधिक है। वृत्तियोंका प्रवाह चिन्तारूप ध्यान ता चित्तसे अधिक है। ध्यान भी ताका होवे है जाका विशेष ज्ञान होवे। यातें ता ध्यानसे विशेषज्ञानरूप विज्ञान अधिक है। विशेषज्ञानवाले बहुत पुरुषोंकूं भी एक बलवाला पुरुष कंपायमान करे है यातें ता विज्ञानसे बल अधिक है। बलसे बलका हेतु अन्न अधिक है। पृथिवीरूप अन्नका हेतु जल है त जल अन्नसे अधिक है। जलोंसे तिनका हेतु तेज अधिक है। तेजसे आकाश अधिक है। इहां तेज तथा वायु इन दोनोंकूं जलरूप वृष्टिका कारण होनेसे तेज शब्दकरिके तेजका तथा वायु इन दोनोंका ग्रहण करना। आकाशसे अभ्यासका हेतु स्मरण अधिक है। स्मरण विना आकाशका सत्त्व सिद्ध होवे नहीं, यातें आकाशसे स्मरण अधिक है। आशाकरिके ही पुरुष मंत्रोंकूं स्मरण करे है तथा पुत्र पशु आदिकोंकी इच्छा करे है यातें स्मरणसे आशा अधिक है। प्राणविना आशा होवे नहीं यातें ता आशासे प्राण अधिक है। हे नारद ! जैसे रथकी नाभिमें अरा स्थित होवे हैं तैसे समष्टिरूप प्राणोंविषे यह स्थूल सर्व जगत् स्थित है। प्राण अपनी स्वतंत्रता करिके ही गमन करे हैं। दाता पुरुषरूप प्राण ही गोरूप प्राणकूं दान करे है तथा

दान लेनेवाला ब्राह्मणादि भी प्राण है। प्राण ही पिता माता भगिनी आचार्य ब्राह्मणादिरूप है। हे नारद ! प्राणादियुक्त पिता आदिकोंकूं जो पुत्रादि तूं शब्द करिके उच्चारण करे है ताकूं बुद्धिमान् दूसरे पुरुष कहे हैं। तुमने तूं शब्द करिके पिता मातादिकोंकूं जो उच्चारण करा है सो तुमने पिता माता आदिकोंका वध करा है। यातें तुम हत्यारेकूं धिक्कार है। जबी तिन पिता आदिकोंके प्राण शरीरसे निकस जावें तब अग्निविषे तीक्ष्ण काष्ठकरि वेधन करते हुए पुत्रादिकोंकूं ब्रह्महत्यारा कहे नहीं। यातें जो पुरुष प्राणकूं सर्व रूप जानता है सो पुरुष प्राणके स्वरूप सर्व रूपकूं जानता हुआ मुख्य अतिवादी होवे है। जैसे कोई पुरुष किसी दूसरे पुरुषकूं कहे मैं तेरा पिता हूं ताकूं बुद्धिमान् कहे हैं। तूं मर्यादाका त्यागकरि यह वचन कहता है। परंतु सो गौण अतिवादी कहिये है। काहेतें आचार्य तेरा मैं हूं यह तो नहीं कहा। जो पुरुष प्राणकूं अपने आत्मारूपसे जानता है सो मुख्य अतिवादी है। प्राण ही पिता मातादि सर्व रूपसे वर्त्तमान है। यातें सो प्राणवेत्ता ही मुख्य अतिवादी है। ता प्राणके स्वरूपकूं आत्मरूपसे जाननेवाले पुरुषकूं जबी कोई पुरुष कहे तू अतिवादी नहीं तब सो ऐसे नहीं कहे मैं अतिवादी नहीं। मैं अतिवादी हूं यह ही वचन कहे। ऐसे प्राणके माहात्म्यकूं श्रवणकरि प्राणकूं ही परम तत्त्व जानता हुआ या प्राणसे भी कोई अधिक है। या प्रकारके प्रश्नकूं नारद करता भया। ऐसे मिथ्या प्राणके स्वरूपकूं आत्मारूपसे जाननेवाला जो नारद है ताकूं कृपालुस्वभाव भगवान् सनत्कुमार कहते भये। हे नारद ! प्राणात्मवादी पुरुष मुख्य अतिवादी नहीं किंतु प्राणसे अधिक सत्य ब्रह्म है। जो सत्य ब्रह्मकूं अपना आत्मरूपकरि जाननेहारा है सोई अतिवादी है।

ऐसे वचनकूं श्रवण करिके नारद कहे है। हे भगवन्! मैं सत्य ब्रह्मके जाननेकी इच्छा करता हूं। यातें सत्य ब्रह्मका ही मेरे ताईं उपदेश करो। ता सत्य ब्रह्मके ज्ञानकरि ही मैं अतिवादी होवोंगा। या प्रकारके वचनकूं श्रवण करि सनत्कुमार कहे हैं। हे नारद! जो पुरुष सत्य ब्रह्मकूं जानता है सोई पुरुष स्पष्टरूपसे ब्रह्मकूं कथन करे है। स्पष्ट कथन ब्रह्मके प्रत्यक्ष करे विना नहीं होवे। यातें यथार्थ प्रत्यक्षरूप विज्ञान ही तेरेकूं ज्ञातव्य है। नारद उवाच। हे भगवन्! मैं विज्ञानके जाननेकी इच्छा करता हूं। ऐसे नारदके प्रश्न मननादि पंच पदार्थोंविषे और भी जान लेने। सनत्कुमार उवाच। हे नारद! युक्ति चिंतनरूपमनसे विना विज्ञान होवे नहीं। यातें मनन तुमारेकूं ज्ञातव्य है। तथा गुरुशास्त्रके वचनोंविषे विश्वासरूप श्रद्धा विना मननके न होनेसे श्रद्धा ही तुमारेकूं ज्ञातव्य है। ता श्रद्धाका हेतु गुरुसेवा आदि रूप निष्ठाके विना श्रद्धा होवे नहीं। यातें ता निष्ठा ही ज्ञातव्य है। इंद्रियसंयम तथा चित्तकी शुद्धिपूर्वक एकाग्रतारूप जा कृति है। ऐसे कृतिकूं निष्ठाका कारण होनेसे सो कृति ज्ञातव्य है। इंद्रियसंयमादिरूप कृति भी सुखप्राप्तिकी इच्छा विना होवे नहीं। यातें ता कृतिके कारण सुखके जाननेकी इच्छाकूं करो। नारद उवाच। हे भगवन्! मैं सुखके जाननेकी इच्छा करता हूं ता सुखका ही मेरे ताईं निरूपण करो। सनत्कुमार उवाच। हे नारद! "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति" अर्थ यह त्रिविधपरिच्छेदशून्य जो भूमा पदार्थ ब्रह्म है सो ब्रह्म ही सुखरूप है। अल्प नाम परिच्छिन्न नामरूप जगत्में कदाचित् सुख नहीं। अज्ञानी मूढोंकूं ब्रह्मानंद-प्राप्तिसे विना स्त्री आदिक विषयोंविषे सुखभ्रांति होइ रही है। नारद कहे हैं। हे भगवन्! सुखरूप भूमाब्रह्मकूं मैं जानना चाहता

हूं। यातें मेरे ताईं आप भूमाका उपदेश करो। भूमा किसकूं कहे हैं। सनत्कुमार उवाच। हे नारद ! भूमाका लक्षण यह है। जा पदार्थके बुद्धिमें निश्चय हुए ज्ञानी पुरुष अपनेसे भिन्न किसी पदार्थकूं नेत्रोंसे देखे नहीं। तथा अपनेसे भिन्न किसी पदार्थकूं श्रोत्रसे श्रवण करे नहीं। तथा अपनेसे भिन्न किसी पदार्थकूं मनकरिके जाने नहीं ता परिच्छेदरहित ब्रह्मकूं भूमा कहे हैं। जा पदार्थकूं अज्ञानकालमें अपनेसे भिन्न नेत्रोंसे देखे है। तथा अपनेसे भिन्न पदार्थोंकूं श्रवण करे है। तथा अपनेसे भिन्न पदार्थकूं मनन करिके जाने है। ता परिच्छिन्न पदार्थकूं अल्प कहे हैं। हे नारद ! जो भूमा है सोई अमरणधर्म होनेसे अमृत है। जो अल्प है सो मरणधर्मा है। नारद उवाच। 'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठितः' अर्थ यह हे भगवन् ! सो भूमा कहां रहे है। सनत्कुमार उवाच। हे नारद ! व्यवहारदृष्टिकरिके तुम भूमाका आश्रय पूछते हो। वा परमार्थदृष्टिकरिके आधार पूछते हो। प्रथम पक्षमें उत्तर यह है। '*स्वे महिम्नि*' *अर्थ यह* जैसे देवदत्तनामक पुरुष पशु स्वर्ण दास भार्या गृह क्षेत्रादिरूप अपनी विभूतिके आश्रय होइकरि स्थित प्रतीत होवे है। तैसे माया और मायाका कार्यरूप अपने महिमाविषे भूमा स्थित है। द्वितीय परमार्थपक्षमें उत्तर यह है 'यदि वा न महिम्नीति'। अर्थ यह सो भूमा वास्तवसे अपने महिमाविषे भी रहे नहीं। काहेते गो अश्व हस्ति स्वर्ण दास भार्या क्षेत्र गृह इत्यादि विभूतिरूप देवदत्तके महिमाविषे जैसे देवदत्त स्थित होवे है। तैसे भूमा ब्रह्म वास्तवसे कहीं स्थित होवे नहीं। घटादिकोंसे भिन्न भूतलादिक ही तिन घटादिकोंके आधार बने है। सर्वरूप तथा सर्वमें व्यापक भूमाका कोई आधार बने नहीं। हे नारद ! सो भूमा ही नीचे है। सो भूमाही उपरि है।

सो भूमा ही पश्चिम पूर्व उत्तर दक्षिणादि दिशावोंमें व्यापक है। तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालमें व्यापक है। देश काल वस्तु सर्व ही ता भूमासे पृथक् नहीं हैं। सो भूमा ही प्रत्यगात्मस्वरूप है यातें प्रत्यगात्मरूपसे अब भूमाकूं वर्णन करे हैं। मैं ही नीच हूं म ही उपरि हूं मैं पूर्व आदि सब दिशावोंमें तथा भूतादि सर्व कालोंमें व्यापक हूं। सर्वदेश सर्वकाल सर्व वस्तुरूप मैं हूं मेरेसे किंचित् भिन्न नहीं है। अहंशब्दका अर्थ तौ यह शरीर भी है या शरीरकूं सर्वरूपता कहनी विरूद्ध है। या शंकाकी निवृत्तिवासते आत्माही सर्वदेशकालादिरूप है यह श्रुति भगवती कहे है। या जड परिच्छिन्न शरीरमें तौ सर्वरूपता बने नहीं। यातें भिन्न ही आत्मा है। अब आत्मज्ञानके फल जीवन्मुक्तिकूं तथा विदेहमुक्तिकूं कहे हैं। जो पुरुष गुरुशास्त्र उपदेशसे संशयविपर्ययसे विना अपने रूपकूं यथार्थ जानता है सो विद्वान् जीवन्मुक्त आत्मरति है। अर्थ यह जैसे कामी पुरुष विदेशमें प्राप्त हुआ भी रति अपनी स्त्रीमें राखे है तैसे जीवन्मुक्त आत्मामें रतिवाला है। जैसे बालक दूसरे बालकोंसे क्रीडा करे है तैसे विद्वान् वेदांतके चिंतन कालमें आनंदरूप आत्माविषे ही क्रीडा करे है। जीवन्मुक्त पुरुषकी दो अवस्था हैं एक व्युत्थान दूसरी समाधि। व्युत्थानकालमें वेदांतकूं चिंतनकरता विद्वान् आत्मक्रीडा या नामवाला होवे है। स्नान भोजनादिकालविषे आत्मचिंतन करनेवाले विद्वान्कूं आत्मरति कहे हैं। समाधि दो प्रकारकी है एक विकल्प समाधि है द्वितीय निर्विकल्प समाधि है। जैसे एकांतमें मिथुनभावकूं प्राप्त हुए स्त्री पुरुष आनंदकूं प्राप्त होवे हैं तैसे ध्याता ध्येयकरि सहित जा सविकल्प समाधि है ता समाधिविषे विद्वान् आनंदकूं प्राप्त होवे है। ता विद्वान्कूं आत्ममिथुन कहे हैं। हे नारद! त्रिपुटीरहित निर्विकल्पसमाधिविषे निर्विकल्पब्रह्मानंदकूं प्राप्त भया

जो विद्वान् है ताकूं आत्मानंद या नाम करिके कहे हैं। अब विदेहमुक्तिकूं कहे हैं। हे नारद! ऐसे वर्तमान जो ज्ञानी है सो प्रारब्धकूं भोग करिके क्षय करता हुआ शरीरके नाश होनेसे ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवे है। किसीके वश होवे नहीं। तथा परिच्छिन्न पदार्थोंके विषे इच्छाकूं करे नहीं। ऐसे भूमाविद्याके फलकूं कहकरि आत्मज्ञानरहित पुरुषोंकूं अनर्थप्राप्ति कहे हैं। जे पुरुष भूमाब्रह्मकूं आत्मरूपसे जाने नहीं ते सर्वदा परवश हुए नाशवान् लोकोंकूं प्राप्त होवे हैं। तिन पुरुषोंका अपनी इच्छानुसार सर्व लोकोंविषे गमन होवे नहीं। हे नारद! जा विद्वान्ने तत्पदार्थरूप भूमाकूं अपना स्वरूप जाना है ता विद्वान्से ही नामादि प्राणपर्यन्त पंचदश तत्त्व उत्पन्न होवे हैं। ता विद्वान्से ही स्वर्गादिफलसहित कर्म तथा ऋगादिवेद उत्पन्न होवे हैं। भूमाकूं विद्वान् जानता हुआ मृत्युकूं तथा रोगकूं तथा रोगादिनिमित्तक दुःखोंकूं देखता नहीं। सर्वभावकूं प्राप्त हुआ सर्व प्रपंचकूं अपने विषे कल्पित देखे है। कल्पितरूपसे जान्या हुआ पदार्थ इंद्रजालके सर्पकी न्याईं दुःखदाता होवे नहीं। हे नारद! ज्ञानी तेज जल पृथिवीरूपसे त्रिधा होवे है। आकाशादिरूपसे पंचधा नाम पंच प्रकारका होवे है। भूरादिसप्तलोक-रूपसे सप्त प्रकारका होवे है। सूर्यादि नवग्रहरूपसे नव प्रकारका होवे है। मनसहित दश इंद्रियरूपसे एकादश प्रकारका होवे है। मनसहित दश इन्द्रियोंकी दश दश वृत्तियोंवाला होनेसे सो विद्वान् दश उपरि एक शत ११० प्रकारका होवे है। दिनरात्रिविषे इक्कीस हजार षट्शत २१६०० श्वास प्रश्वास चले हैं तिन श्वासप्रश्वासवायुकरि उच्चारण करे जे हंसमंत्र तिन मंत्रोंकरि इक्कीस सहस्र षट् शत प्रकारका सो विद्वान् होवे है। उपाधिभेदकरि ता विद्वान्के एते भेद हैं। वास्तवसे तो एक अद्वितीय ब्रह्म

है। हे नारद! चित्तकी शुद्धि विना आत्मज्ञान होवे नहीं। यातें मुमुक्षु पुरुषने चित्तशुद्धि अवश्य संपादन करनी। चित्तशुद्धि आहारकी शुद्धि विना होवे नहीं। अपने वर्णाश्रमके अनुसार अन्न-जलादिकोंके ग्रहणका नाम आहार है। ताकी शुद्धि यह है जो रागद्वेषसे रहित अन्न जलादिकोंका ग्रहण है तथा पापबुद्धिसे रहित जो अन्नादिकोंका संपादन है। या प्रकारकी आहार शुद्धि विना तथा रागादिकोंसे रहित जो शब्दादिकोंका ग्रहणरूप आहार-शुद्धि ता आहारशुद्धि विना चित्त शुद्ध होवे नहीं। जबी चित्त शुद्ध होवे है तब भूमारूप ब्रह्मकी निश्चल स्मृति होवे है। जाकूं भूमा ब्रह्मकी अचल स्मृति भयी है, सो विद्वान् ब्रह्मज्ञान करिके काम कर्म अध्यास संशयादि सर्व ग्रंथियोंकूं निवृत्त करे है। इस रीतिसे रागद्वेषादिदोषरहित अंतःकरण-वाले नारदकूं भगवान् सनत्कुमार अज्ञानसे रहित शुद्ध ब्रह्मका प्रत्यक्ष कराते भये। ता सनत्कुमारकूं स्कंद तथा स्वामिकार्तिकेय भी कहे हैं। स्वामिकार्तिकेय नाममें निमित्तकूं प्रसंगसे कहे हैं। एक कालमें काशीविषे भवानीसहित महादेव गंगातीरमें आते भये। ता महादेवकूं देखकरि सर्व ऋषि उठकरि नमस्कार करते हुए। नाना प्रकारकी स्तुति करते भये। महादेव भी तिनकी इच्छा अनुसार वर देते भये। परंतु सनत्कुमारऋषि ध्यानमें स्थित हुए अभ्युत्थानकर्मकूं न करते भये तथा नमस्कारकूं न करते भये। महादेव तौ सनत्कुमारकूं परब्रह्मवित् जानकरि आनंदकूं प्राप्त भये। परंतु भवानी महादेवका तिरस्कार जानती हुई सनत्कुमारकूं शाप देती भयी। हे सनत्कुमार! जगत्के कर्त्ता हर्त्ता परमेश्वरस्वरूप मेरे पतिका तुमने तिरस्कार करा है। यातें दुःखकूं प्राप्त होनेहारा जा अश्वोंका पालक है ताके जन्मकूं तुम प्राप्त होवो। पार्वतीकूं महा-

देवने वारण भी करा परंतु क्रुद्ध हुई देवी बलात्कारसे शाप देकरि तहांसे महादेवसहित गमन करती भयी। जबी अश्वोंका पालक सनत्कुमार भये तब काल पाइकरि भवानीसहित महादेवने सनत्कुमारकूं परम आनंदकूं प्राप्त हुआ देखा। भवानीने कहा हे सनत्कुमार ! तुम वर मांगो। सनत्कुमार यह कहते भये हे देवि ! मेरे मल मूत्रका त्याग विना क्लेशसे होवे मैं यह ही वर मांगता हूं। तब देवी पुनः क्रोधकरिके शाप देती भयी। हे सनत्कुमार ! तुमारेकूं उष्ट्रजन्मकी प्राप्ति होवे। तभी सनत्कुमार उष्ट्रके जन्मकूं प्राप्त भये। ता उष्ट्रने राजाके गृहविषे जबी किंचित् भी शिक्षा नहीं ग्रहण करी। तबी ते राजपुरुष ता उष्ट्रकूं वनमें त्याग करि आवते भये। ता वनमें करीरादिकोंकूं भक्षण करिके तथा श्रीगंगाजलकूं पान करिके सो उष्ट्र बहुत स्थूलताकूं जबी प्राप्त भया। तब भवानीसहित महादेव परम आनंदकूं प्राप्त हुआ देखते भये। पार्वती कहे है हे सनत्कुमार ! मैं तुमारे उपरि बहुत प्रसन्न भयी हूँ यातें तुम वर मांगो। सनत्कुमार कहे हैं या उष्ट्रशरीर जैसा कोई शरीर मैं नहीं जानता या शरीरविषे मैं परमानंदकूं प्राप्त होइ रहा हूं। यह ही मेरेकूं वर देवो। जो यह मेरा शरीर निवृत्त न होवे। जबी पूर्णकाम सनत्कुमारने कोई वर नहीं लिया। तबी पार्वती कहे है तुम मेरे गृहमें पुत्ररूपसे उत्पन्न होवो यह मेरेकूं ही वर देवो। सनत्कुमारने वर दिया। तब ब्रह्मचारीरूप स्वामिकार्तिकेय होते भये। यातें या सनत्कुमारकूं स्कंदनाम करि कहे हैं। इति श्रीछांदोग्ये सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥ ॐनमो विष्णवे। पूर्व षष्ठसप्तमाध्यायमें उत्तम तथा मध्यम अधिकारीजनोंकूं श्रुति भगवतीने ब्रह्म उपदेश करा। अब इस अष्टमाध्यायमें मंदबुद्धिवाले अधिकारी जनोंकूं श्रुति उपदेश करे है। ब्रह्मकी प्राप्तिके

योग्य या स्थूल शरीरकूं ब्रह्मपुर या नामसे कथन करा है । या ब्रह्मपुरमें एक छोटासा हृदयकमलरूपी गृह है । ता हृदयकमलमें स्थित दहरनाम सूक्ष्म आकाशरूप ब्रह्मकूं गुरुशास्त्रादि उपायसे अन्वेषण करना चाहिये । तथा ता सूक्ष्मब्रह्मका ही सर्व जगत्का आश्रयरूपसे साक्षात् करना योग्य है । आपही श्रुति शिष्यरूपसे प्रश्न करे है । पूर्व उक्त प्रकारसे सूक्ष्म हृदयकमलमें स्थित जा दहरआकाश है ता दहरआकाशमें क्या वर्तता है जाका अन्वेषण करना चाहिये तथा साक्षात् करना चाहिये । आचार्यने ऐसे उत्तर देना यह श्रुति कहे है । हे शिष्य ! यद्यपि अंतःकरण उपाधिवशसे दहर नाम अल्प भी ब्रह्म है तथापि वास्तवसे या दहरआकाश ब्रह्मकूं बाह्यभूत आकाशकी न्याईं परिपूर्ण जानो । और या दहरआकाशमें ही यह स्वर्ग और पृथिवी स्थित है तथा अग्नि वायु सूय चंद्रमा विद्युत् नक्षत्र ता दहरआकाशमें स्थित हैं । और इस जीवकी ममताविषय जे पदार्थ वर्तमान हैं तथा जे पदार्थ नष्ट भये हैं तथा जे पदार्थ भविष्यत्में होनेहारे हैं ते सर्व पदार्थ या दहरआकाशमें स्थित हैं । शिष्य कहे हैं । हे गुरो ! जा हृदय आश्रित दहरआकाशमें पृथिवी आदि सर्व स्थित हैं तथा स्थावर जंगम सर्व भूत स्थित हैं तथा कामनाके विषय सर्व पदार्थ स्थित हैं जबी यह देह वृद्ध अवस्थाकूं प्राप्त हुआ नष्ट होवे है । ता देहके नाश होनेसे हृदयका नाश होवे है । ता आश्रयरूप हृदयके नाश होनेसे दहरआकाशरूप ब्रह्मकी स्थिति प्रतीत होवे नहीं । आचार्य कहे हैं । या स्थूल शरीरके जीर्ण होनेसे यह दहर आकाशरूप ब्रह्म जीर्ण होवे नहीं । शस्त्रादिकोंसे या शरीरके नाश होनेसे भी या आत्माका बाह्य आकाशकी न्याईं नाश होवे नहीं । ऐसे ब्रह्ममें ही सर्व जगत् स्थित

है । हे शिष्य ! यह ब्रह्मही तुमारा आत्मा है । और यह आत्मा ही धर्म अधर्मसे रहित है । विजर नाम जरा अवस्थासे रहित है । विमृत्यु नाम मृत्युसे रहित है । भोजनकी इच्छासे रहित है यातें अविजिघत्स है । पान करनेकी इच्छासे रहित है यातें अपिपास है । और जाकी इच्छा निष्फल नहीं यातें सत्यकाम कहे हैं । और जा आत्माका इच्छाका जनक ज्ञानरूप संकल्प निष्फल नहीं है यातें सत्यसंकल्प है । और या आत्माके न जाननेसे पुण्य का जो फल है सो विनाशी तथा पराधीनतासहित ही उत्पन्न होवे है । जैसे राजाके भृत्य आदि राजाकी आज्ञाकूं मानते हुए देशमें क्षेत्रभागकूं प्राप्त होवे हैं और राजसेवा आदि कर्मकरि संपादित जो तिनोंका कृषि आदि भोगरूप लोक है सो लोक नाशकूं प्राप्त होवे है । ऐसे ही आत्माके न जाननेसे अग्निहोत्रादि पुण्यकर्मोंकरि संपादित जो परलोकमें भोगरूप लोक है सो भोगरूप लोक भी इंद्रादिकोंकी अधीनताकरि ग्रस्त है । और अंतमें नाशकूं प्राप्त होवे है । और तिन अज्ञानी पुरुषोंका सर्व लोकोंमें स्वतंत्र गमन भी होवे नहीं । और जे पुरुष आत्माकूं यथार्थ जानते हैं और आत्मामें ही स्थित सर्व पदार्थोंकूं जानते हैं ते पुरुष शरीरकू त्याग करि राजाकी न्याईं सर्व लोकोंमें स्वतंत्र अपनी इच्छानुसार प्राप्त होवे हैं । और ता दहरआत्माके उपासक पुरुषकी परलोकविषे यदि मृत भये पितरोंके प्राप्तिकी इच्छा होवे तौ ता उपासककी इच्छानुसार पितर प्राप्त होवे हैं । ता पितृलोकमें समृद्धिकूं प्राप्त हुआ उपासक महान् महिमाकूं अनुभव करे है । ऐसे माता भ्राता भगिनी सखा इनकी जभी उपासककूं इच्छा होवे तब इनकी प्राप्ति होनेसे सो उपासक परम आनंदकूं अनुभव करे है । जबी सुगंधवाली पुष्पमालावोंका तथा

अन्नपानका तथा गाना और मृदंगादिकोंका संकल्प करे है तब यह सर्व पदार्थ प्राप्त होवे हैं। जभी स्त्रियोंका संकल्प करे है तब स्त्रियोंकूं प्राप्त होवे है। बहुत क्या कहें जिस जिस पदार्थकी उपासक इच्छा करे है ता ता पदार्थकूं संकल्पमात्रसे प्राप्त होवे है। पूर्व कहे दहरआत्माके ध्यानवासते साधनोंके अनुष्ठान करनेकूं पुरुषोंका उत्साह उत्पन्न होवे या अभिप्रायसे श्रुतिभगवती पुकारती हुई उपदेश करे है। भो पुरुषाः ! जिन जिन पदार्थोंकी तुम इच्छा करते हो ते सर्व पदार्थ आत्मामें ही स्थित हैं। परंतु तुम अपने आत्मासे बहिर्मुख हुए स्त्री आदि विषयोंमें तृष्णावाले हो इसीवासते आत्मामें स्थित भी सर्व पदार्थोंकूं तुम प्राप्त होते नहीं और जिन पदार्थोंकी इच्छा करते हुए भी तुम प्राप्त होते नहीं तिन सर्व पदार्थोंकूं आत्माका ध्यान करनेहारा पुरुष प्राप्त होवे है। आत्माके अज्ञानसे आत्मामें स्थित भी सर्व पदार्थोंकूं तुम प्राप्त होते नहीं। जैसे किसी स्थानमें स्वर्णनिधि दाबी होवे ता निधिकूं न जाननेहारे पुरुष ता स्थानके उपरि दिन दिनमें अनुसंचरण करे हैं। परंतु अज्ञानसे प्राप्त भी निधिकूं भी प्राप्त होवे नहीं। तैसे तुम दिनदिनमें सुषुप्ति अवस्थाविषे प्राप्त ब्रह्मानंदकूं भी प्राप्त होते नहीं बडा कष्ट है। जो बाह्य विषयोंकी तृष्णाकूं दूर करिके ध्यान करि अंतरआत्माकूं प्राप्त होना अपने अधीन भी है। तुमने तौ ता आत्माकी उपेक्षा ही करी है। और यह आत्मा हृदयदेशमें स्थित है या अर्थमें तुमने संशय करना नहीं। काहेते हृदय या शब्दका अर्थ यह है हृदि अयम् हृदयम्। अर्थ यह। हृदयकमलमें यह आत्मा वर्त्तमान है यातें ही या हृदयकमलकूं हृदय कहे हैं। जो पुरुष या हृदयदेशमें स्थित दहरब्रह्मकूं जानता है सो पुरुष दिनदिनमें ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवे है। ऐसे देहादिकोंमें आत्मत्व-

बुद्धिकूं त्यागकरि जा स्वयंप्रकाश ब्रह्मकूं विवेकी पुरुष अपना आत्मारूप जानता हुआ ता ब्रह्ममें ही अभेदभावकूं प्राप्त होवे है। सो ब्रह्म तुमारा ब्रह्मात्मा है ब्रह्म और यह आत्मा ही अमृतरूप है तथा अभयरूप है। ता ब्रह्मका ही सत्यं यह नाम है। सत्यं या नाममें तीन अक्षर हैं। 'स ती यं' इन तीनोंमें जो प्रथम सकार अक्षर है सो सत् अमृतब्रह्मका वाचक है। और त नामक अक्षर मर्त्यका वाचक है। ता तकारमें ईकार उच्चारणार्थ है और यकार अक्षर करिके सत्यनामका उपासक पुरुष मर्त्य अमृत इन दोनोंकूं अपने अधीन करे है। जबी सत्यब्रह्मके नामके ध्यानका भी ऐसे माहात्म्य है तब सत्य नामवाले ब्रह्मके ध्यानका माहात्म्य कैसे न होवेगा यातें अवश्य ब्रह्मका ध्यान करना। यह आत्मा ही भूरादिलोकोंके रक्षावासते वर्णआश्रमादि भेदवाले जंतुमात्रका धारण करनेहारा है। जैसे मृत्काष्ठमय बाह्य सेतु जलोंका भेद करे है। तैसे यह आत्मा जंतुमात्रके वर्णाश्रमादि भेदोंका धारण करनेहारा है। यातें ही सेतुकी न्याई सेतु है। या सेतुरूप आत्माकूं दिन रात्री परिच्छिन्न करि सकते नहीं। तथा जरा मृत्यु शोक धर्म अधर्म इत्यादि सर्व पापरूप या आत्मासे निवृत्त होवे हैं। जिस हेतुसे यह आत्मा अपहतपाप्मा है। अर्थ यह दूर भये हैं धर्माधर्मादिरूप पाप जिससे धर्मकूं पापरूपताका कथन जन्ममरणादिवाले लोकोंका कारण होनेसे जानना और अंधत्वादिदोष या शरीरके ही धर्म हैं ते धर्म अध्यासकरि आत्मामें भासते थे। देहसे भिन्न आत्माकूं प्राप्त हुआ विद्वान् देहके धर्म अंधत्वादिकोंका त्याग करे है। शरीर आदिकोंमें अध्यास करनेसे ही आपकूं दुःखी रोगी मानता था। अध्यासके निवृत्त होनेसे आपकूं दुःखी रोगी माने नहीं। या आत्मामें दिन रात्रि हैं नहीं।

यातें सर्वदा प्रकाशरूप आत्मामें रात्रिरूप तम नहीं ऐसे प्रकाशरूप आत्माकूं ही विवेकी प्राप्त होवे हैं। और या आत्माकी प्राप्ति ब्रह्मचर्यसे होवे है। ब्रह्मचर्य सहित जे विद्वान् हैं तिनोंका सर्वलोकोंविषे इच्छापूर्वक विचरना होवे है। ब्रह्मचर्य करिके ही अपने स्वरूपकूं प्राप्त होवे है। यातें ब्रह्मवेत्ता या ब्रह्मचर्यकूं ही यज्ञरूप कथन करे हैं और दर्शपौर्णमासादि इष्ट भी ब्रह्मचर्य है। और ईश्वरका आराधनरूप इष्ट भी ब्रह्मचर्य है जिस हेतुसे ब्रह्मचर्य करिके ही आत्माका पूजन करता हुआ विद्वान् ता आत्माकूं प्राप्त होवे है। जो कर्मके बहुत यजमान होवैं ता कर्मकूं सत्रायण कहे है। सो सत्रायणकर्म भी ब्रह्मचर्यरूप है काहेतें ब्रह्मचर्य करिके ही सत्यस्वरूप अपने आत्माकी रक्षा करे है और ध्यानरूप मौन भी ब्रह्मचर्य है काहेतें ब्रह्मचर्य करिके ही गुरु उपदेशसे आत्माका श्रवण करि पुनः मनन ध्यान करे है और उपवासादिरूप अनाशकायन भी ब्रह्मचर्य है। तिस ब्रह्मचर्यकरि प्राप्त जो आत्मा है ता आत्माका नाश होवे नहीं। यातें ब्रह्मचर्यकूं अनाशकायन या नामसे कह्या है और वनवासकूं अरण्यायन कहे हैं। और अरण्य इस नामवाले दो ह्रदोंसहित जो ब्रह्मलोक है ता ब्रह्मलोककी प्राप्ति या ब्रह्मचर्यसे होवे है यातें ही या ब्रह्मचर्यका नाम अरण्यायन है। ऐसे ब्रह्मचर्यसहित उपासनाकरि प्राप्त होनेसे योग्य ब्रह्मलोकका निरूपण करे है। या लोकसे लेकरि तीसरे स्थानमें स्थित ब्रह्मलोकमें और अरण्य या नामवाले समुद्रके तुल्य दो ह्रद हैं और ता ब्रह्मलोकमें अन्नका रसरूप तथा मदके उत्पन्न करनेहारा ऐरंमदीय या नामवाला सरोवर है। और ता ब्रह्मलोकमें अश्वत्थवृक्षके सदृश सोमसवन या नामवाला वृक्ष है ता सोमसवननामक वृक्षसे सर्वदा अमृत स्रवे है। और ता ब्रह्म-

लोकमें हिरण्यगर्भकी पुरी है। सो पुरी ब्रह्मचर्यादिसाधनयुक्त पुरुषोंसे भिन्न पुरुषोंकरि प्राप्त होवे नहीं यातें ता पुरीकूं अपराजिता या नामसे कहे हैं और ता ब्रह्मलोकमें प्रभु हिरण्यगर्भकरि रचित स्वर्णका मंडप है ऐसे ब्रह्मलोककूं ब्रह्मचर्यकरि ही प्राप्त होवे हैं। ता ब्रह्मचर्य करिके ही इच्छापूर्वक सर्वलोकोंमें विचरना होवे है। अब ब्रह्मचर्यसंपन्न तथा हृदयमें स्थित ब्रह्मउपासककी मूर्ध नाडीसे गति कहनेकूं नाडियोंका निरूपण करे हैं। या हृदयकमलके साथ संबधवाली नाडियां सूक्ष्म पिंगल वर्णवाले अन्नरसकरिके पूर्ण हुई स्थित होवे हैं। तथा शुक्ल नील पति रक्तादिरूप सूक्ष्म अन्नरस करिके नाडियां भी शुक्लपीतादिरूप हुई वर्त्ते हैं। और इन नाडियोंका नीलपीतादिरूपहोना भी नीलपीतादिरूप सूर्यके संबंधसे है। इस अर्थके सूचन करनेवासते सूर्य भगवान्‌कूं पिंगल शुक्ल नील पीत लोहितरूपसे श्रुतिमें कहा है जैसे या लोकमें कोई महान् मार्ग दो ग्रामोंमें संबंधवाला होवे है। तैसे सूर्यभगवान्‌की रश्मियां या पुरुषसे तथा आदित्यमंडलसे संबंधवाली हैं या आदित्यमंडलसे रश्मियां या संसारमें प्रसृत होवे हैं। और पुरुषकी नाडियोंके साथ संबंधवाली होवे हैं और यह विज्ञानमय जीव जबी सुषुप्ति अवस्थाकूं प्राप्त होवे है ता अवस्थामें इंद्रिय मन आदिकोंके लीन होनेसे स्वप्नादिकोंके विशेष ज्ञानसे रहित हुआ ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवे है। ता ब्रह्मानंदकी प्राप्तिमें द्वार नाडियां हैं। ता ब्रह्मासे अभिन्न भये जीवकूं धर्माधर्मका संबंध होवे नहीं। और वृद्धअवस्थाके प्राप्त होनेसे निर्बलताकूं प्राप्त भया यह देह मरणअवस्थाके सन्मुख होवे है तब संबंधी जन चारों दिशावोंमें उसके पास स्थित होवे हैं। और ते संबंधी जन यह कहे हैं। तुम मैं पुत्रकूं जानते हो। तुम मैं पिताकूं जानते हो। जबतक ता पुरुषके प्राणोंका

बहिर्गमन नहीं भया तबतक सो पुरुष जाने है। प्राणोंके बहिर्निः-सरणके पश्चात् सो पुरुष जाने नहीं। बाह्य परलोकमें भी तिन नाडियोंसे ही गमन करे है। जो पुरुष हृदयकमलमें स्थित दहररूप ब्रह्मका ध्यान करनेवाला है। सो उपासक प्रणवका ध्यान करता हुआ या देहकूं इस लोकमें त्यागकरि मनके वेगकी न्याईं शीघ्र आदित्यमण्डलकूं प्राप्त होवे है। सो आदित्यमण्डल ब्रह्मलोककी प्राप्तिमें द्वार है। ता आदित्यमण्डलद्वारा सो उपासक ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है। उपासनादि साधनरहित पुरुषकूं आदित्यमण्डलकी प्राप्ति होवे नहीं। इन नाडियोंकरि बाह्य गमन करने ब्राह्मणभागरूप छांदोग्यश्रुति आप ही मन्त्रभागकी संमति देवे है। हृदयरूप कंदकी संबन्धी एकशत एक १०१ प्रधान नाडियां हैं। तिन नाडियोंके मध्यमें एक सुषुम्ना नामवाली नाडी मस्तकसे निकसी है। ता सुषुम्ना नाम नाडीसे उपरि आदित्य-मण्डलकी प्राप्तिद्वारा उपासक ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है और दूसरी नाडियां तौ नाना योनियोंका ग्रहणरूप संसारप्राप्तिवासते ही होवे हैं। ऐसे दहरविद्याकूं समाप्त करिके अब देवता असुरोंकूं प्रजा-पतिका उपदेशरूप वचन कथन करे है सो वचन यह है "य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः" अर्थ-यह जो आत्मा पापसे रहित है। मृत्युसे रहित है। संतापरूपशोकसे रहित है। अविजिघत्सः नाम भोजनकी इच्छासे रहित है। पानकी इच्छासे रहित है। फलकामनावाला है। सकल ज्ञानरूप संकल्पवाला है। सो गुरुशास्त्रके उपदेशसे अन्वेषण करने योग्य है। और विजिज्ञासितव्य है कहिये अनुभवकरि अपरोक्ष जानने योग्य है। जो पुरुष या आत्माकूं अपरोक्षरूपसे निश्चय करता

है सो ज्ञाता पुरुष सर्व लोकोंकूं प्राप्त होवे है और कामनाके विषय सर्व भोगोंकूं प्राप्त होवे है । या प्रजापतिके वचनकूं देवता तथा असुर परंपरासे श्रवण करते भये । ते देवता और असुर अपनी अपनी सभामें यह कहते भये भो देवाः ! यदि तुम सर्वकी सम्मति होवे तौ प्रजापतिके उपदेशसे आत्माकूं जानकरि हम सर्व लोकोंकूं तथा उत्तम भोगोंकूं प्राप्त होवें । ऐसे ही असुरोंने अपनी सभामें कहा । कोई बुद्धिमान् होवे सो प्रजापतिके पाससे ब्रह्मविद्याकूं ग्रहण करि हम सर्वकूं उपदेश करे । तब इन्द्र प्रजापतिके समीप आनेकूं अपने लोकसे निकसता भया । असुरोंका राजा विरोचन भी अपने लोकसे चला । ता ब्रह्मलोकमें दोनों एक कालमें ही प्राप्त भये । इन्द्र विरोचन दोनों आपसमें मैत्रीकूं न करते हुए समित्पाणि होइकरि प्रजापतिके शरणकूं प्राप्त भये, तिन दोनोंका अन्तरमें अत्यंत वैर भी था, परंतु अपने कार्यकी सिद्धिवासते ते बुद्धिमान् इंद्र विरोचन बाहिरसे प्रीति करते भये । प्रजापतिके समीप प्राप्त हुए । इन्द्र विरोचन बत्तीस ३२ वर्ष पर्यंत स्त्री भोगादिकोंकूं त्यागकरि स्थित भये । ब्रह्माजीने भी उनके अभिमानादिकोंकी निवृत्तिवासते बत्तीस वर्षपर्यन्त उपेक्षा करी । अपमानकूं सहारते हुए भी अपने कार्यकी सिद्धिवासते स्थित होते भये । ऐसे बत्तीस वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्यकूं धारण करनेवाले इंद्र विरोचनकूं ब्रह्माजी पूछते भये । भो इंद्रविरोचनौ ! तुम अपने स्वर्गादि लोकोंको त्यागकरि दुःखपूर्वक इहां किसवासते स्थित भये हो । तुम क्या चाहते हो । इंद्र विरोचन कहे हैं हे भगवन् ! धर्माधर्मसे रहित जरामृत्युसे रहित शोकसे रहित अशन इच्छा तथा पान इच्छासे रहित अमोघकाम अमोघसंकल्प जो आत्मा है ता आत्माकूं अपरोक्षरूपसे निश्चयवाला सर्व लोककूं तथा

सर्वभोग्य विषयोंकूं प्राप्त होवे है। यह वचन अपने सभाविषे कहा था। ता वचनकूं श्रवणकरि ता आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासते आपके समीप ब्रह्मचर्यधारणपूर्वक बत्तीस वर्षपर्यंत हम स्थित भये हैं। आप कृपा करिके ता आत्मज्ञानका उपदेश करो। ऐसे इंद्र विरोचनके वचनकूं श्रवण करि प्रजापति उपदेश करे है। 'य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मा'। अर्थ यह। जो यह पूर्णपुरुष नेत्रोंमें स्थित है और ध्याता पुरुषोंको नेत्रोंमें स्थित दिखाता है सोई यह आत्मा है। यह आत्मा ही अमृत है। तथा अभय है और यह आत्मा ब्रह्मरूप है। या प्रकारके वचनकूं श्रवणकरि इंद्र विरोचन नेत्रस्थ छायाकूं ही आत्मा जानते भये। पांडित्यके अभिमानकरि युक्त हुए ब्रह्माजीकूं या प्रकारका वचन कहते भये। हे भगवन्! नेत्रस्थ छायाकी न्याई जलोंमें भी छाया प्रतीत होवे है। तथा दर्पणमें छाया प्रतीत होवे है। तथा खड्गादिकोंमें छाया प्रतीत होवे है। ते सर्व छाया आत्मा हैं वा इनमेंसे कोई एक ही आत्मा है ऐसे वचनकूं श्रवण करि प्रजापति उनकी मूढताकूं जानते भेय। तिनकी मूढताकी उपेक्षा करिके अपने अनुभवानुसार यह कहते भये। हे इंद्रविरोचनौ! यह नेत्रस्थ द्रष्टा आत्मा ही व्यापक होनेसे जलदर्पणादि सर्व उपाधियोंमें प्रतीत होवे है। तिनकी मूढताकी निवृत्ति वासते ब्रह्माजी उपाय कहे हैं। भो इंद्रविरोचनौ! जलकरि पूर्ण शरावमें अपनेकूं देखिकरि जबी तुम आत्माकूं नहीं निश्चय करो तब तुम मेरेकूं कथन करो। इंद्र विरोचन जलकरि पूर्ण शरावमें आपकूं देखते भये। ब्रह्माजी पूछते भये। तुमने क्या देखा। ऐसे पूछे हुए इंद्रविरोचन कहते भये। हे भगवन्! नखलोमादियुक्त या शरीरके प्रतिबिंबरूप आत्माकूं ही हमने देखा है। विरोचनने तौ छायामें

आत्मत्वबुद्धिकूं त्यागकारि छायावाले देहमें आत्मत्वबुद्धि कारि छायामें विरोचन यह दोष देखता भया। छोटे दर्पणमें छोटी छाया होवे है। बडे दर्णपणादिकोंमें बडी छाया होवे है। ऐसे दर्पणादि उपाधिके नीलपीतादिरूप होते छाया भी नीलपीतादि रूपवाली होवे है। और जाकी छाया है सो देह तौ एक जैसा है यातें देह ही आत्मा है इत्यादि युक्तियोंसे विरोचनने देहमें ही आत्मरूपता निश्चय करी। देहमें वा छायामें विपरीतप्रत्यय अब इनका निवृत्त करना चाहिये। या अभिप्रायसे भगवान् प्रजापति कहे हैं। हे इंद्रविरोचनौ! तुम मुंडन कराइके तथा सुंदर वस्त्र भूषणादिकों कारिके अलंकृत हुए पुनः जलपूरित शरावमें आपकूं देखकारि मेरेकूं कथन करो। ब्रह्माजीने यह चिंतन कारि मुंडनादिकोंका उपदेश करा। जो यह स्थूल देह विलक्षण होइ जावेगा यातें या परिणामी शरीरमें तथा छायामें इनकी आत्मत्वबुद्धि निवृत्त होवेगी। परंतु इंद्र विरोचन तौ मुंडनादिक कराइकारि भी देहमें ही आत्मत्वबुद्धि करते भये। प्रजापति इंद्र विरोचनकूं पूछता भया। भो इंद्रविरोचनौ! तुमने मुंडनादिक कराइकारि जलपात्रमें क्या देखा है। इंद्रविरोचन कहे हैं। हे भगवन्! सुंदर वस्त्र भूषणसहित यह देह ही या जलमें प्रतीति होवे है। जबी इंद्र विरोचनने यह कहा और स्थूलदेहकूं आत्मरूपता निश्चय करी तब प्रजापति अपने मनमें यह विचार करते भये। जैसे इंद्र विरोचनने छायाविषे दोष देखकारि अनात्मता निश्चय करी है तैसे या देहमें भी जडता परिच्छिन्नता जरामरणादि अनेक दोष प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। यातें यह देह भी आत्मा नहीं। ऐसे या देहमें भी इंद्रविरोचन अनात्मता निश्चय कारि लेवें या अभिप्रायसे देहमें जिन धर्मोंका संभव न होइसके तिन आत्माके

धर्मोंका उपदेश करते भये। भो इंद्रविरोचनौ! यह चिद्रूप आत्मा अमृत नाम मरणसे रहित है तथा भयसे रहित है। और देश काल वस्तु परिच्छेदसे रहित ब्रह्मस्वरूप है। प्रजापतिने देहमें न बननेहारे धर्मोंका उपदेश करा भी परंतु ते अभिमानी इंद्र विरोचन प्रजापतिके अभिप्रायकूं न जानते हुए चले आवते भये। विरोचन तौ रसायन मंत्र योगादि उपायसे या देहमें ही आत्माके अजर अमृत अभयत्वादि धर्मोंकूं जानता भया। इंद्रने छायामें ही आत्मरूपता निश्चय करी। जब प्रसन्न होइकरि दोनों गमन करते भये तिनकूं देखकरि प्रजापति यह वचन कहते भये जे देवता वा असुर अजर अमर अभयरूप आत्माकूं गुरु शास्त्रसे न जानकरि तथा अपरोक्ष निश्चय विना इंद्र विरोचनकी न्याईं निश्चयवाले होवेंगे ते देवता वा असुर क्लेशकूं ही अनुभव करेंगे। विरोचन तौ प्रसन्न हुआ असुरोंकूं प्राप्त भया यह उपदेश करताभया। भो असुराः! प्रजापतिने यह देह ही आत्मा कह्या है यह देहरूप आत्माका ही पूजन करना चाहिये तथा या देहरूप आत्माकी ही अनेक प्रकारके वस्त्र भोजन भूषण भोगों करिके सेवा करना योग्य है। ऐसे देहरूप आत्माकी पूजा तथा सेवा करनेवाला या लोककूं तथा परलोककूं प्राप्त होवे है ऐसा असुरोंका संप्रदाय अबपर्यंत संसारविषे देखनेमें आता है। जो पुरुष देहात्मवादरूप असुरोंके संप्रदायकूं मानकरि अतिथि भिक्षु आदिकोंके ताईं अन्नादिकोंकूं श्रद्धापूर्वक नहीं देता ऐसे श्रद्धाहीन पुरुषकूं उत्तम पुरुष असुर कहे हैं अब इंद्रके वृत्तांतकूं कहे हैं। देवता होनेसे सात्विक देवता इंद्र देवतावोंको प्राप्त हुए विना ही अर्धमार्गविषे छाया आत्मा माननेमें या प्रकारके भयकूं देखता भया। या शरीरके भूषणवस्त्रादि करि सुंदर अलंकार करनेसे

छायात्मा भी अलंकृत होवे है। या देहमें अंधत्वादि होनेसे छायात्माके भी अंधत्वादि दोष होवे हैं और या देहके हस्तादिकोंके काटनेसे छायात्माके भी हस्तादि काटे हुए प्रतीत होवे हैं और या देहके नाश होनेसे छायात्माका भी नाश होवे है। या छायात्माके ज्ञानसे कुछ फलकूं मैं नहीं देखता। या प्रकारके दोषोंकूं छायात्मा माननेमें इन्द्र देखता हुआ समित्पाणि होइकरि प्रजापतिके शरणकूं प्राप्त भया। ता शरणमें प्राप्त भये इंद्रकूं प्रजापति कहते भये। हे इन्द्र ! तुम विरोचनके साथ प्रसन्नमन हुआ चला गया था अब पुनः किस प्रयोजन वासते आया है। इन्द्र उवाच। हे भगवन् ! या स्थूल देहके अंध होनेसे छायात्मा भी अन्ध होवे है। या देहके नाश होनेसे छायात्माका नाश होवे है। आत्मा तौ अजर अमर अभय ब्रह्म आपने निरूपण करा था। या छायात्मामें तौ आत्माके धर्म घटे नहीं तथा छायात्माके ज्ञानसे भी कुछ प्रयोजनकी प्राप्ति मैं देखता नहीं। ऐसे इन्द्रके वचनोंकूं श्रवणकरि प्रजापति कहे हैं। हे इन्द्र! जिस आत्माका उपदेश विरोचनसहित तुमारे प्रति मैंने करा था ता आत्माका ही उपदेश तुमारे प्रति मैं पुनः करूंगा। परंतु अन्तःकरणकी शुद्धि वासते बत्तीस वर्ष पर्यंत पुनः ब्रह्मचर्यकूं करो। ऐसे प्रजापतिके वचनकूं श्रवण करि इन्द्र बत्तीस वर्षपर्यन्त पुनः ब्रह्मचर्य करता भया। बत्तीस वर्षके पश्चात् शरणागत इन्द्रकूं प्रजापति कहे हैं। हे इन्द्र ! जा पुरुषका तुमारे ताईं मैंने उपदेश करा था सोई यह पुरुष स्वप्न अवस्थाविषे अपनी अविद्या करि रचित पदार्थोंकूं अनुभव करे है। सोई यह आत्मा अमृत अभय ब्रह्मस्वरूप है। ऐसे उपदेशकूं श्रवण करि सूक्ष्म शरीर विशिष्ट स्वप्नावस्थाके अभिमानी तैजस नामा जीवकूं आत्मरूप जान करि प्रसन्नताकूं

प्राप्त हुआ इन्द्र चला आवता भया अर्धमार्गविषे ही स्वप्नावस्था-
वाले तैजसकूं आत्मता माननेमें इन्द्र ऐसे विचारकारि भयकूं
देखता भया। यद्यपि छायाकी न्याईं या स्वप्नद्रष्टाविषे स्थूल शरी-
रके अंधत्व काणत्वादि धर्मोंका संबंध नहीं है। तथा सिंहव्या-
घ्रादिकोंकरिके अनेक क्लेशोंकूं यह स्वप्नद्रष्टा जीव अनुभव करे है।
और प्रियपुत्रादिकोंके वियोगसे महान् रुदन करे है और आत्मा
तौ सर्व उपद्रवोंसे शून्य है। या प्रकारका विचार करता हुआ
इन्द्र पुनः समित्पाणि होइकारि प्रजापतिकी शरणकूं प्राप्त भया।
प्रजापतिरुवाच। हे इन्द्र! तुम प्रसन्नमन होइ कारि चला गया
था, अब पुनः किसवासते आया है। इंद्रने पूर्व कहे दोषोंका स्वप्न-
द्रष्टा पुरुषविषे निरूपण करा। तब प्रजापति यह कहते भये। हे इंद्र!
बत्तीस वर्षपर्यंत तुम पुनः ब्रह्मचर्य करो पश्चात् ता आत्माका तेरे
ताईं मैं उपदेश करूंगा। इन्द्र बत्तीस वर्षपर्यंत पुनः ब्रह्मचर्य
करता भया। बत्तीस वर्षके पश्चात् प्रजापति इंद्रकूं कहते भये।
हे इंद्र! सुषुप्तिअवस्थामें यह पुरुष इंद्रियादिकोंके अभिमानविना
स्थित हुआ परमानंदकूं प्राप्त होवे है। तथा किसी स्वप्नकूं देखे
नहीं यह सुषुप्तिका द्रष्टा पुरुष ही आत्मा है तथा अमृत अभय
ब्रह्मरूप है। ऐसे श्रवणकारि इंद्र जाइकारि पुनः अर्धमार्ग विषे
विचार करता हुआ सुषुप्तिअवस्थाके अभिमानी प्राज्ञविषे भी
भयकूं देखता भया। और या विचारकूं करता भया। यद्यपि
या सुषुप्त पुरुषमें स्वप्नके रोदनादि दुःख नहीं हैं तथापि यह
कदाचित् कहै तथा आगामी भयका और दुःखोंका बीज है।
और यह प्राज्ञ सुषुप्तिअवस्थाविषे अपनेकूं जाने नहीं तथा
अन्य भूतोंकूं भी जाने नहीं। जैसे मृत हुआ पुरुष स्वपरके ज्ञानसे
शून्य होवे है तैसे यह सुषुप्तपुरुष जड़की न्याईं स्थित होवे है।

या सुषुप्तपुरुषमें भी अमृत अभयब्रह्मरूपता बने नहीं। और या सुषुप्तपुरुषके ज्ञानसे भी कुछ पुरुषार्थ सिद्धिकूं मैं देखता नहीं। ऐसे विचारकरि पुनः सो इंद्र समित्पाणि हुआ प्रजापतिकी शरणकूं प्राप्त भया। प्रजापतिरुवाच। हे इंद्र ! प्रसन्न होइकरि तूं चला गया था अब पुनः क्या इच्छा करता हुआ आया है। इंद्र उवाच। हे भगवन् ! यह प्राज्ञनामा जीव अनेक दोषोंकरि ग्रस्त है आत्मा तौ अजर अमर अभयरूप आपने कहा था यातें कृपा करि यथार्थ रूपसे आत्माका उपदेश करो। ऐसे इंद्रके वचनोंकूं श्रवणकरि प्रजापति यह कहे हैं हे इंद्र ! अब पंच वर्ष पुनः ब्रह्मचर्यकूं करो पश्चात् मैं या आत्माके यथार्थ रूपकूं तेरे ताईं कहूंगा। या प्रकारके वचनकूं श्रवण करि इंद्र पुनः पंचवर्ष ब्रह्मचर्यकूं करता भया। प्रथम तीन वार बत्तीस बत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्य करता भया। चतुर्थ वार पंच वर्ष ब्रह्मचर्य करता भया। सर्व मिलकरि एकशत एक १०१ वर्ष भये। ऐसे श्रेष्ठ पुरुष कहे हैं जो इंद्र प्रजापतिके पास एकशत वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्य करता भया। ऐसे श्रेष्ठपुरुषोंकी संमतिकूं श्रुति भगवती आप ही कहे है। अब तुरीय आत्माके उपदेशवासते प्रजापति प्रथम स्थूल शरीरविषे विनश्वरताकूं कहता भया। हे इंद्र ! यह स्थूल शरीर विनश्वर होनेसे मृत्युकरि ग्रस्त है। तथा सुखदुःखकरिके व्याप्त हुआ है। और सूक्ष्म शरीरमें भी विनश्वरता जडता तथा सुखदुःख समान हैं तथा कारणशरीररूप अज्ञान भी सर्व दुःखोंका बीज है विनश्वरता जडतादि अनेक धर्मोंकरि युक्त है। चिद्रूप आत्माविषे तौ विनश्वरता तथा सुखदुःखादि अनात्मधर्मोंका संबंध किंचित् भी नहीं है। जैसे हस्तपादादिकरि युक्त शरीरसे रहित वायु मेघ विद्युत् आदि प्राणिकर्म अनुसार अकस्मात् प्रगट होइकरि वृष्टि आदि कार्योंकूं

करे हैं। वृष्टि आदि कार्योंकूं करिके सुखदुःखसे रहित हुए ही अपने स्वरूपकूं प्राप्त होवे हैं। तैसे यह जीव शरीरोंके साथ तादात्म्याध्यासकूं प्राप्त हुआ किसी दयालु गुरुके उपदेशकूं श्रवण करि तिन शरीरोंमें अध्यासके त्यागसे अपने स्वप्रकाश ब्रह्मरूपकूं प्राप्त होवे है। ता ब्रह्मके स्वरूपसे अभिन्न भये पुरुषकूं उत्तम पुरुष कहे हैं। ऐसा उत्तम पुरुष जीवन्मुक्त प्रारब्धकर्मअनुसार अनेक प्रकारके विषयोंकूं भोगता हुआ तथा अपने स्त्रीसंबंधी आदिकोंके साथ रमण करता हुआ तथा रथादिकोंपर आरूढ हुआ जनोंके समीप वर्त्तमान जो अपना शरीर है ताकूं स्मरण करे नहीं। और जैसे सारथी पुरुषके उपराम हुए भी शिक्षित अश्व रथकूं अपने स्थानमें प्राप्त करे हैं। तैसे या जीवन्मुक्त उत्तम पुरुषके उपराम हुए भी प्रारब्धकर्मके अनुसार या देहकी प्राणरक्षा करे हैं। और प्रजापतिने जिस आत्माका उपदेश करा था सो आत्माही रूपादिकोंके ज्ञानवासते नेत्रगोलकके कृष्णताराग्रमें स्थित हुआ चक्षु या नाम करिके कह्या जावे है। ता आत्माका जब गंधग्रहणका संकल्प होवे है तब आत्मा ही घ्राण नामवाला कह्या जावे है। जब शब्दके उच्चारणका संकल्प करे है तब वाक् या नामसे कह्या जावे है। जब शब्दके श्रवणका संकल्प करे है तब श्रोत्रनामवाला होवे है। यह आत्मा ही जब मननका संकल्प करे है तब दैवचक्षुनामक मन नामसे कहिये है। दैवचक्षु मनसे व्यवहित तथा भूत भविष्यत् पदार्थोंका ज्ञान होवे है और मुक्त पुरुष भी या दैवचक्षुरूप मनकरि संकल्पमात्रसे ब्रह्ममें स्थित नाना प्रकारके भोगोंकूं प्राप्त होवे है। ऐसे आत्माके उपदेशकूं श्रवण करि आत्मज्ञानकूं प्राप्त हुआ इंद्र सर्व भोग्य पदार्थोंकूं प्राप्त भया। और सर्व देवतावोंकूं भी उपदेश करता भया। इन्द्रकी

न्याईं जो कोई इदानींतन पुरुष अजर अमर अभय ब्रह्मकूं यथा-र्थरूपसे जाने है सो पुरुष सर्व पदार्थोंकूं तथा सर्व लोकोंकूं प्राप्त होवे है ऐसे प्रजापति कहते भये। अब पूर्व कही दहरविद्याके अंग-भूत मंत्रोंके अर्थकूं कहे हैं। उपासक कहे हैं मैं हार्दब्रह्मके ध्यानसे ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मलोककूं प्राप्त होता हूं। केवल नाम रूप उपाधि करिके ही परिच्छिन्न सूक्ष्मरूप हार्दकूं प्राप्त भया था। वास्तवसे मैं ब्रह्मरूप हूं यातें अपने अपने वास्तव रूपकूं ही प्राप्त होता हूं। जैसे अश्व अपने रोमोंके कंपायमान करनेसे धूलीसे रहित होवे है और जैसे चंद्रमा राहुसे मुक्त हुआ प्रकाशरूप होवे है तैसे उपासक हार्द ब्रह्मके ज्ञानकरि सर्व कर्मोंकूं दूर करता हुआ अपने प्रकाशरूप ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। और पूर्व निरूपण करा जो दहराकाश सो आकाश ही बाह्यभूताकाशकी न्याईं व्यापक है। और ता दहराकाश-में ही नाम रूप वर्ते हैं। यह दहराकाश ही अमृत ब्रह्मरूप है। यह दहराकाश ही आत्मरूप है। अब उपासक प्रार्थना करे है। मैं उपासक प्रजापतिके सभामंदिरकूं प्राप्त होवूं और मैं ही ब्राह्म-णोंका तथा राजावोंका तथा वैश्योंका आत्मा हूं। और ब्राह्मणादि-कोंके इंद्रियादिकोंका साक्षी हूं। ता साक्षी अपने रूपकूं प्राप्त हुआ चाहता हूं। हे परमात्मन्! मैं स्त्रीकी योनिकूं मति प्राप्त होवूं। या स्त्रीकी योनिकूं सेवन करनेवाले पुरुषोंकूं दांतोंसे बिना ही यह स्त्रीयोनि भक्षण करे है। हे भगवन्! या महाअपवित्र स्त्रीकी योनिकूं मैं कबी नहीं प्राप्त होवूं। या स्त्रीयोनिकी सेवा करने-वाले पुरुषोंकी वारंवार गर्भवासमें स्थिति होवे है। या अर्थके सूचन करनेकूं उपनिषद्में वारंवार स्त्रीयोनिका निषेध है। पूर्व कह्या जो साधनोंसहित आत्मज्ञान है या साधनोंसहित आत्मज्ञानकूं ही प्रजापति ब्रह्मा विराट्के ताईं कहते भये। सो विराट् अपने पुत्र

मनुके ताईं उपदेश करता भया । सो मनुभगवान् त्रैवर्णिक पुरुषोंके प्रति या प्रकारका उपदेश करते भये । हे द्विजातयः ! ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिवासते जबतक तुमारा अंतःकरण शुद्ध न होवे तबतक चारि आश्रमोंमेंसे किसी एक आश्रमकूं ग्रहण करि शुभ कर्मोंकूं करो । कर्मोंसे शुभ अंतःकरणवाले हुए ब्रह्मज्ञानद्वारा मोक्षकूं प्राप्त होवोगे । या उपनिषद्की समाप्तिमें कर्मी पुरुषोंके संतोषवासते यह कह्या है । जो पुरुष सर्वदा गुरुकी सेवामें तत्पर है । सेवासे शेष रहे कालमें गुरुसे वेदका अध्ययन करिके गुरुकुलसे आइकरि स्त्रीके ग्रहणसे गृहस्थाश्रमकूं प्राप्त हुआ तथा पवित्र देशमें स्थित हुआ वेदोंका पठन करे है और धर्मात्मा शिष्योंके प्रति इन वेदोंका पठन कराता है और अपने सर्व इंद्रियोंकूं निषिद्ध विषयोंसे निवृत्त करे है । ऐसा पुरुष हिंसासे रहित हुआ जन्मभर शुभ कर्म करता हुआ शरीरकूं त्यागकरि ब्रह्मलोकमें प्राप्त होवे है । ‘ न स पुनरावर्त्तते ’ अर्थ यह ऐसा पुरुष या संसारविषे पुनः आवृत्तिकूं प्राप्त होवे नहीं । उपनिषद्की समाप्तिके बोधन करनेकूं ‘ न स पुनरावर्त्तते ’ यह वचन दो वार पठन करा है । ॐ शांतिः शांतिः शांतिः । इति छांदोग्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ॐ तत्सत् । इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्टपरमहंसपरिव्राजकस्वामि अच्युतानन्दगिरिविरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे छांदोग्यार्थनिर्णयः ॥ ९ ॥

इति छांदोग्योपनिषद्भाषान्तरं समाप्तम् ॥ ९ ॥

ॐ

अथ बृहदारण्यकोपनिषद्भाषांतरम् ।
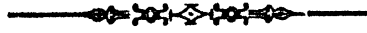
ॐ श्रीशंकराचार्येभ्यो नमः । अब यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उपनिषद्के अर्थकूं कहे हैं । ब्रह्मज्ञान विना मोक्ष होवे नहीं यह वेदमें वारंवार लिखा है । विवेक वैराग्य शमादि मुमुक्षुता इन साधनोंसे ता ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होवे है । विवेक वैराग्यादि साधन चित्तशुद्धि विना होवे नहीं । शुभ कर्म करे विना चित्त-शुद्धि होवे नहीं । यातें चित्तशुद्धिवासते शुभ कर्म प्रथम अपेक्षित है । इसी वासते चित्तशुद्धिके साधनकर्मोंका प्रथम कर्मकाण्डमें निरूपण करा है । फलरूप ज्ञानके प्रतिपादक ज्ञानकांडका पश्चात् वर्णन करा है । सर्व यज्ञोंमें श्रेष्ठ जो अश्वमेध यज्ञ है उपासना-सहित तिस अश्वमेधयज्ञका हिरण्यगर्भभावकी प्राप्तिरूप संसार ही परमफल है यह दिखाया है । जब उपासनासहित अश्वमेध यज्ञका भी संसार ही फल है तब अत्यंत अल्प जे अग्निहोत्रादि कर्म हैं तिनका संसार फल है यामें क्या कहना है । यातें कर्मोंके फलसे अधिकारी पुरुषोंने वैराग्यकूं प्राप्त होना या तात्पर्यसे अश्वमेधमें अनधिकारी पुरुषोंकूं अश्वमेधकी उपासनासे अश्वमेधके फलकी प्राप्तिवासते या यज्ञमें प्रधान अंगरूप जा अश्वविषयक उपा-सना है ता उपासनाका वर्णन करा है । पश्चात् अश्वमेधयज्ञमें होनेहारी अग्निविषयक उपासनाका निरूपण करा है । पश्चात् कर्म और उपासनाका फल प्रजापतिभावकी प्राप्ति वर्णन करी है । पुनः कर्म और उपासनाकी स्तुतिवासते प्रजापतिकी जगदुत्पत्ति आदिकोंमें स्वतंत्रता वर्णन करी है । सृष्टिसे प्रथम यह जीवसाक्षी ब्रह्म ही होता भया । अज्ञानकालमें अंतःकरणादि उपाधिकरि

आपकूं जीव माने हैं। ब्रह्मनिष्ठ दयालु गुरुके उपदेशसे 'अहं ब्रह्मास्मि' यह जाने है। ऐसे देवता ऋषि मनुष्योंमें जो ब्रह्मकूं जाने है सो ब्रह्मकूं ही प्राप्त होवे है। ऐसे या ब्राह्मणमें संक्षेपसे ब्रह्मविद्या कही है और आगे सप्तान्न ब्राह्मणमें तौ पुरुषने काम्य कर्म और उपासना करिके उत्पन्न करे प्रपंचका भोगका साधन होनेकरि सप्त अन्नरूपसे वर्णन करा है। पश्चात् उत्पन्न भये जगत् का नाम रूप कर्म ऐसे तीन रूपसे संकोच वर्णन करा है। या तृतीयाध्यायसे लेकरि अष्टमाध्यायपर्यंत श्रीशंकराचार्योंने व्याख्या करी है। या तृतीयाध्यायसे पूर्व प्रथम और दूसरे अध्यायमें कर्मोंका निरूपण करा है। इसीवासते तीनोंने तिन दोनों अध्यायोंकूं त्यागकरि या तृतीयाध्यायकी व्याख्या करी है। या उपनिषद्‌की वनमें अध्ययनकी विधि है। यातें या उपनिषद् का नाम आरण्यक है। ग्रंथसे तथा अर्थसे महान् होनेकरि बृहदारण्यक कहे हैं। ब्रह्मकूं समीप प्रत्यग्रूप करिके बोधन करे है यातें इस ग्रंथका नाम उपनिषद् है। ऐसे बृहदारण्यक उपनिषद् इन पदोंका अर्थ है। इति बृहदारण्यके तृतीयोऽध्यायः ॥ ॥ ३ ॥ ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः। पूर्व तृतीय अध्यायविषे 'आत्मेत्येवोपासीत' यह विद्या सूत्र पढा है। अर्थ यह देश कालवस्तुपरिच्छेदरहित स्वप्रकाश आत्मा है ऐसे चिंतन करे इत्यादिकोंकरि संक्षेपसे सूचन करी जो ब्रह्मविद्या ता सफल ब्रह्मविद्याके निरूपण वासते या चतुर्थ अध्यायका आरंभ है। आख्यायिकाद्वारा निरूपण करा अर्थ बुद्धिविषे शीघ्र ही आरूढ होवे है। यातें प्रथम बालाकि और अजातशत्रुराजाकी आख्यायिकाकूं निरूपण करे हैं। गर्गके वंशमें होनेहारा तथा बलाका नामा किसी स्त्रीका पुत्र होनेसे बालाकिनामकूं प्राप्त हुआ कोई

एक ब्राह्मण वेदके पढनेसे बहुत अभिमानी होता भया। सो बालाकि कुरुपञ्चालादि देशोंमें शास्त्रार्थसे अपना विजय करता भया। अनेक देशोंमें विजय करता हुआ सो बालाकि श्रीकाशीमें भी विजय करने वासते प्राप्त भया। ता श्रीकाशीमें राजा अजातशत्रुकूं प्राप्त हुआ बालाकि अपने विजय वासते राजा अजातशत्रुकूं यह कहता भया। हे अजातशत्रो! 'ब्रह्म ते ब्रवाणि' या श्रुतिका अर्थ यह तेरे ताईं मैं ब्रह्मका उपदेश करता हूं तू सावधान होइकरि श्रवण कर। ऐसे वचनकूं श्रवणकरि सो राजा अजातशत्रु मत्सरसे रहित हुआ प्रसन्न होइकरि एक सहस्र गौ ता बालाकिके ताईं देता भया। राजाके गौवोंके देनेका अभिप्राय यह जो जनक नाम राजा है सो पिताकी न्याईं आपकूं मानकरि और ब्राह्मणोंकूं पुत्रकी न्याईं मानता हुआ तिन ब्राह्मणोंके ताईं दान करे है। और ब्रह्मविद्याका दान भी आपकूं पितारूप मानकरि ही करे है। और मैंने तौ 'ब्रह्म ते ब्रवाणि' या वचनकूं श्रवण करते ही या बालाकि ब्राह्मणके ताईं एक सहस्र गौ दान करी हैं। यातें ब्राह्मण जनकके समीप किसवासते गमन करते हैं। राजा या अभिप्रायसे गौवोंका दान करता भया। राजोवाच। हे बालाके! मेरे समीप आइकरि अनेक वृद्ध ब्राह्मण अपनी अनेक विद्याओंका निरूपण करते हैं। परंतु ब्रह्मविद्याकूं तौ पूछे हुए भी निरूपण करते नहीं। और आप तौ बालक हुए तथा पूछे विना ही उपदेश करते हो। मैं आपके उपरि बहुत प्रसन्न हूं। आप ब्रह्मका उपदेश करो। बालाकिरुवाच। हे राजन्! जो प्राणरूप पुरुष समष्टिव्यष्टिभेदसे आदित्यमंडलमें तथा नेत्रोंमें स्थित है ऐसे एक ही अभिमानी पुरुष जो नेत्रादिद्वारा हृदयमें प्रवेश करि कर्त्ता भोक्ता होवे है ता पुरुषकी मैं

उपासना करता हूं । या पुरुषकी उपासनाके फल कहनेकी इच्छा-वाले बालाकिकूं हस्तसे वारण करता हुआ राजा यह कहता भया। हे बालाके ! या पुरुषकूं मैं जानता हूं। यह पुरुष सर्व भूतोंमें पूज्य है। तथा सर्वका प्रकाशक राजा है। ऐसे कर्त्ता भोक्ता पुरुषकूं मैं निरंतर जानता हूं। जो अधिकारी या पुरुषकी उपासना करता है। सो अधिकारी पूज्य होवे है तथा राजा होवे है। पुनः बालाकि चन्द्र विद्युत् आकाश वायु अग्नि जल मेघ शब्द आदित्यसहित इन अष्ट अधिदैवतोंकूं ब्रह्मरूपसे निरूपण करिके अष्ट व्यष्टिशरीरमें स्थित अध्यात्मोंकूं ब्रह्मरूपसे निरूपण करता भया। तिन अध्यात्म अष्ट ब्रह्मपुरुषोंकूं दिखावे हैं। १ प्रतिबिं-बके ग्राहक दर्पणादि उज्वलपदार्थ २ श्रोत्र ३ पुरुषके आकार जैसी पुरुषकी छाया ४ स्थूल शरीर ५ सूक्ष्म शरीर ६ दक्षिण-नेत्रमें स्थित शरीरका सूक्ष्म आकार ७ तथा वामनेत्रमें स्थित सूक्ष्म आकार ८ पूर्व कहे अष्ट अधिदैव तथा अष्ट अध्यात्मोंकूं ब्रह्मरूपसे कथन करिके तिनकी उपासनाके फलोंकूं कथन करा है। राजा तौ वारंवार यह ही कहते भये मैं इसकूं जानता हूं और इससे भिन्न ब्रह्म कहो। इनसे भिन्न निर्गुण ब्रह्मके स्वरूपकूं न जानता हुआ बालाकि नीचे मुख करिके तूष्णीं स्थित भया। पूर्व बालाकि कह्या था तेरेकूं मैं ब्रह्म उपदेश करता हूं। ता यथार्थ ब्रह्मके न कहनेसे जाकी प्रतिज्ञा भंग भई है सो बालाकि सभामें चोरकी न्याईं स्थित भया। ता बालाकिकूं देखकरि अजा-तशत्रु यह कहता भया। अरे बालाके ! एतावन्मात्र तूं जानता है वा कुछ अधिक भी जानता है। बालाकिरुवाच। हे राजन् ! मैं एता-वन्मात्र जानता हूं इससे अधिक मैं नहीं जानता। राजोवाच। हे बालाके ! तैंने ब्रह्मके स्वरूपकूं नहीं जाना। । मिथ्या संभाषण

करनेवाला पुरुष आत्महत्यारा कह्या है । और देवता गुरु राजा-दिकोंके समीप जो मिथ्या संभाषण करता है सो पुरुष कर्म-करि चांडाल है । सो तू मैं राजाकी मिथ्या सभामें संभाषण करता भया है सो तुमने अत्यंत अनुचित कर्म करा है । आजसे लेकरि पुनः तुमने मिथ्या संभाषण नहीं करना । तुमने कथन करे जो षोडश १६ पुरुष हैं इन सर्वका जो कर्त्ता ब्रह्म है तथा सर्व जगत्का जो कर्त्ता ब्रह्म है सो ब्रह्म ही तुमकूं ज्ञातव्य है सो ब्रह्म भी वेदविरुद्ध शुष्क तर्कोंसे जाना जावे नहीं यातें ब्रह्मनिष्ठ किसी गुरुकी शरणकूं प्राप्त होइकरि ता अपने स्वरूपकूं शीघ्र ही निश्चय करो । या आत्माके जानेविना तौ यह विद्यामद तथा धनमद तथा कुलमद तुमकूं नरकमें प्राप्त करेगा । ऐसे वचनोंकूं श्रवण करता हुआ सो बालाकि अपने मनमें यह विचार करता भया । जो पुरुष किसी पुरुषकूं ऐसे उपदेश करे जो जिस उपदेशके ग्रहणकरनेसे श्रोता पुरुष लघुताकूं त्यागकरि गुरुत्वभावकूं प्राप्त होवे सो उपदेष्टा पुरुष ता श्रोता पुरुषका गुरु है । यह विद्यादिमद मेरेकूं लघु करनेवाला था मेरेकूं दुःख करनेहारा यह मद या राजाने निवृत्त करा है यातें यह राजा मेरा गुरु है । इस गुरुरूप राजाकूं त्यागकरि जबी मैं किसी अन्यके समीप जाऊंगा तब मेरेकूं कृतघ्नता दोषकी प्राप्ति होवेगी यातें या राजासेही मैं ब्रह्मविद्याकूं ग्रहण करूं और या राजासे भिन्न तौ मेरे ताईं ब्रह्मविद्याके उपदेश करनेवाला कोई प्रतीत भी होता नहीं जिसके समीपसे मैं ब्रह्मविद्याकूं ग्रहण करूं ।और किसीसे भी मेरे ताईं उपदेश होना नहीं यामें हेतु यह जे मेरे गुरु हैं ते जितनी विद्या जानते थे सो संपूर्ण विद्या मेरे ताईं तिन गुरुवोंने उपदेश करी है । या ब्रह्मविद्याकूं मेरे गुरु जानते नहीं । और हिमाच-लसे लेकरि सेतुबंधरामेश्वरपर्यंत जे त्रैवर्णिक हैं । तिन सर्वकूं जीत-

करि ही काशीके जीतनेवासते मैं प्राप्त भया थ। यातें और सर्व पुरुष मेरेकरि जीते हुए होनेसे मेरे शिष्योंके तुल्य हैं। तिनसे मेरेकूं यह दुर्लभ ब्रह्मविद्या प्राप्त नहीं होवेगी। और देवता तौ भोगोंमें आसक्त होइ रहे हैं। यातें ते देवता आत्माकूं जानते भी नहीं जानते। जैसे उन्मत्त पुरुष घटादिकोंकूं देखते भी नहीं देखते तैसे देवता विषयोंमें लंपट होनेसे आत्माकूं जानते भी नहीं जानते और यह राजा तौ देवतावोंके सदृश लक्ष्मीकूं प्राप्त हुआ भी काम क्रोधसे रहित होइकरि संन्यासियोंकी न्याईं गृहमें भी स्थित होइ रहा है और इस राजाके सदृश काम क्रोधसे रहित और कोई पुरुष नहीं है। या संसारमें कामी पुरुष स्त्रियोंके तथा नट-विटादिकोंके वासते हजारों रुपिये खरच करते हुए प्रतीत होवे हैं। ब्रह्मवेत्तावोंके वासते तौ पञ्च वराटका भी खरच करनी कठिन हैं। कामी पुरुषकी कामरूप दोषकरि मलिन बुद्धि होनेसे पात्र कुपात्रका ज्ञान ता कामीकूं होवे नहीं। जसे ज्वरवाले पुरुषकूं मधुर भी शर्करादिक कटु भान होवे हैं। तैसे कामरूप ज्वरवाले पुरुषकूं सत्संग सच्छास्त्रश्रवण पात्रमें दानादि सुख करनेवाले कर्म भी दुःखदाता भान होवे हैं। सो सर्व दोषोंका मूल काम या राजाविषे मैं देखता नहीं। जिससे अधिकारी ब्राह्मण आदिकोंके ताईं यह राजा दान करता है। और यह राजामें क्रोध भी नहीं जिससे मैं अपराधीके ताईं भी प्रसन्न होइकरि सहस्र गौवोंका दान करता भया है। और मैंने गुरुशास्त्रसे यह श्रवण करा है जो ब्रह्मवेत्ता विना और प्राणियोंमें काम क्रोध रहे हैं। ब्रह्मवेत्ताके मनमें काम क्रोध होवे नहीं। यातें यह राजा काम क्रोधके रहित होनेसे ब्रह्मज्ञानी है। यातें इस राजासे ही मैं ब्रह्मविद्याकूं ग्रहण करूं। और देवतावोंसे ज्ञानलाभ संदिग्ध है। यामें हेतु यह जो प्रथम

तौ देवतावोंका प्रत्यक्ष होना कठिन है। तप आदिकोंके करनेसे या जन्ममें वा जन्मांतरमें जबी देवता प्रत्यक्ष भी होवें तौ भी ब्रह्मवेत्ता उनमें भी दुर्लभ है। जबी ब्रह्मवेत्ता भी होवेगा तौ भी भोगोंकी अधिकता होनेसे राजसप्रकृति होवेगा। और मेरे तप आदिकोंकरि प्रसन्न हुआ भी मेरे ताईं ब्रह्मविद्याका उपदेश करें वा नहीं करें और मेरेकूं भोगोंमें ही आसक्त करि देवें। यातें देवताओंसे विद्या प्राप्त होनी संदिग्ध है। और सर्व पुरुष तौ मेरेसे न्यून ज्ञानवाले हैं। ऐसे विचारकरि सो बालाकि पंडित राजाके धर्षणरूप दंडकरि शुद्ध हुआ ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिवासते समित्पाणि होइकरि राजाके समीप आवता भया। ब्रह्मविद्या विना बृहस्पति जैसा भी और विद्यामें पंडित होवे सो शिष्य ही है। ब्रह्मविद्यावाला ही गुरु है या वार्त्ताकूं सो बालाकि दिखावता भया। बालाकिरुवाच। हे भगवन्! मेरे ताईं आप कृपाकरि ब्रह्मविद्याका उपदेश करो। राजोवाच। हे बालाके! विधाताने जातिकरि ब्राह्मण ही गुरु उत्पन्न करे हैं। और क्षत्रियादि शिष्य ही उत्पन्न करे हैं। मुझ क्षत्रिय राजाका आपकूं शिष्य होना उचित नहीं। जबी मेरे कठोर वचनकूं श्रवण करिके आपकूं कोप उत्पन्न भया हो और ता कोपसे मेरे शिष्य हुआ चाहता हो तब हम आपसे अपराध क्षमा कराते हैं। आप कृपाकरि मेरे अपराधकूं क्षमा करो। मैंने आपकूं विद्यादिकोंमें मदसहित श्रवण करा और मदसहित तुमकूं नेत्रोंसे ही देखा राजधर्मकूं आश्रयकरि आपकी शिक्षावासते मैं बालकने आपकूं कठोर वचन कहे। मेरेकूं धिक्कार है तथा क्रूर मेरे राजधर्मकूं धिक्कार है। आप कृपाकरि प्रसन्न होवो। और जबी तुम मेरेसे भय मानकरि शिष्य हुआ चाहते हो। तब आप निर्भय होवो मेरेसे किंचित् आपकूं भय मति होवे। जे

चौरादिक हैं तिनकूं भी धन देकरि चोरी आदि कर्मोंसे मैं निवृत्त करता हूँ नाश नहीं करता। जबी सर्वथा चोरी आदि कर्मोंसे ते चोरादि निवृत्त नहीं होवें तब पश्चात् यथायोग्य मैं तिनकूं दंड देता हूं। जबी चोरादिक अपराधी पुरुषोंमें भी मैं दुःख करता नहीं तौ आप उत्तम ब्राह्मणकूं किसवासते भय प्राप्त होता है। यातें आप निर्भय हुए ब्राह्मण होइकरि क्षत्रियका शिष्य होनारूप या प्रतिलोम कर्मसे निवृत्त होवो। जैसे आनंदसे आये थे तैसे आनन्दपूर्वक अपने गुरुकी शरणकूं प्राप्त होवो। ऐसे अनेक वचनकूं श्रवण करि बालाकि नीचे मुख करिके पादके अग्रसे भूमिकूं लिखता हुआ तथा दीर्घ श्वासोंकूं लेता हुआ स्थित भया। जबी बालाकिने गमन करा नहीं तब राजा तिसकी चेष्टासे तिसकी लज्जा तथा चिंताकूं जानकरि यह कहता भया। हे बालाके ! वेद पढाना यज्ञ कराना दान लेना यह ब्राह्मणोंके कर्म कहे हैं। क्षत्रियके यह कर्म नहीं। और मेरा यह व्रत है प्राणोंकूं भी मैं ब्राह्मणोंके ताईं दान करता हूं और ब्रह्मविद्याकी आप याचना करते हैं। यातें या विद्याकूं तुम ग्रहण करो। परंतु दान-विधिसे ही विद्याकूं ग्रहण करो। गुरु तौ आप ब्राह्मण ही हो। हम क्षत्रिय तौ शिष्य ही हैं ऐसे कथन करिके पुनः राजा यह कहता भया। हे बालाके ! प्राणादिकोंसे भिन्न जो आनन्दस्वरूप आत्मा प्राणादिकोंकूं प्रकाशे है ता आत्माकूं ब्रह्मरूपसे निश्चय करो। ऐसे कहता हुआ राजा बालाकिके दृढ निश्चयवासते उठ-करि ता बालाकिके हस्तकूं ग्रहण करिके ते दोनों अन्तःपुरके द्वारमें प्राप्त भये। ता द्वारमें राजाका कोई भृत्य शयन करता था। ता सुप्त पुरुषके समीप बालाकिसहित राजा स्थित होता भया। बालाकि जा प्राणकूं सूर्यचन्द्रादिरूपसे जानता था तिन प्राणके

नामोंकरि ता सुप्त पुरुषकूं राजा बुलावता भया। हे आदित्यचंद्र-रूप ! हे बृहत्पांडुरवासः ! बृहत्पांडुरवासका अर्थ यह बृहत् नाम अधिक पांडुर नाम शुक्ल अधिक शुक्लरूपवाले जे जल ते जल ही हैं वास नाम वस्त्र जाका। छांदोग्य श्रुतिमें प्राणके जल वस्त्र हैं यह हम कह आये हैं। यातें बृहत्पांडुरवास यह प्राणका नाम है। हे सोम ! या सोमशब्दका अर्थ प्रियदर्शन वा सोम नाम चन्द्रमाका है। हे राजन् ! या राजन् शब्दका अर्थ यह अनेक देवतारूपसे जो प्रकाशे। ऐसे प्राणके अनेक नामोंसे राजाने बुलाया भी परंतु सो सुप्त पुरुष उठा नहीं। जैसे जड घटादिक अनेक नामोंकरि बुलाये हुए भी स्वरूपकूं जाने नहीं। तैसे जड प्राण भी अनेक नामोंकरि बुलाये हुए किंचित् मात्र न जानते भये। ऐसे जड घटादिकोंकी न्याईं जड प्राण भी आत्मा नहीं। जबी प्राणोंकूं आत्मा माने तो सुप्त पुरुषके प्राण विशेषरूपसे चलते हैं बुलानेसे किसवासते जानता नहीं। यातें घटकी न्याईं प्राण अनात्मा है। या अभिप्रायके बोधनवासते ही राजा प्राणके नामोंसे ता सुप्त पुरुषकूं बुलाता भया। ऐसे अनात्मता बोधन करिके अपने मनविषे राजा यह विचारता भया। निर्विशेष आत्माका साक्षात् बोधन करना तौ बने नहीं। स्थूलारुंधती-न्यायसे किसी उपाधिविशिष्टता करिके ता आत्माका प्रथम उपदेश करूं। या अभिप्रायसे ता सुप्त पुरुषके हस्तकूं अपने हस्तसे राजा दबाता भया। ता हस्तके दबानेसे सो सुप्त पुरुष उठता भया। ऐसे करनेसे बालाकिने उपाधिविशिष्ट आत्माकूं तौ जाना शुद्ध आत्माकूं जाना नहीं ता शुद्ध आत्माके जनावने-वासते राजा अजातशत्रु ता बालाकिसे यह पूछते भये। प्रश्न राजाके पास बालाकिने ही करा चाहिये था, परंतु बालाकिने

जबी नहीं पूछा तब राजा ब्रह्मविद्याके देनेकी प्रतिज्ञाकूं पालन करते हुए शुद्ध आत्माके बोधनवासते यह पूछते भये। हे बालाके ! बुद्धिउपाधिक होनेसे विज्ञानमय नामकूं प्राप्त भया यह पुरुष हस्तकरि दबावनेसे प्रथम कैसे स्वरूपमें शयन करता भया और सो कैसा स्वरूप है जा स्वरूपसे यह पुरुष हस्तके दबावनेके उत्तर जागरित कालमें प्राप्त भया है। ऐसे उपनिषद्भाष्यमें यह दो प्रश्न दिखाये हैं। आत्मपुराणकर्त्ता श्रीशंकारानन्दस्वामीने तीन प्रश्न दिखाये हैं सो भी मुमुक्षुजनोंके उपदेशवासते प्रकार है। और हमने तौ भाष्यकी अनुसारतासे दो प्रश्न कहे हैं। ऐसे शयनका जो आधार तथा जागरितअवस्था भयी है तिन दोनों प्रश्नोंके उत्तरकूं बालाकि न जानता भया। तब राजा या अभिप्रायसे उत्तर देता भया। वास्तवसे आत्मामें कर्तृत्व भोक्तृत्वादि संसार नहीं किंतु वागादि उपाधिके संबंधकरि ही मिथ्या कल्प्या है। राजोवाच। हे बालाके ! जा आधारविषे यह विज्ञानमय पुरुष शयन करे है ता आधारकूं श्रवण करो। यह जीव वाग् नेत्र श्रोत्रादिक इंद्रियोंके सामर्थ्यकूं ग्रहण करिके सुषुप्तिकालमें औपाधिपरिच्छिन्नताकूं त्यागकरि स्वाभाविक अपने स्वरूपमें एकताकूं प्राप्त होवे है। जब जीव वागादिक इंद्रियोंके सामर्थ्यकूं ग्रहण करिके शयन करे है। तब या पुरुषकूं स्वपिति या नामसे कथन करे हैं आपके स्वरूपकूं जो प्राप्त होवे ताकूं स्वपिति कहे हैं। ता सुषुप्तिकालमें प्राण वाग् नेत्र श्रोत्र मन आदिकोंके लीन होनेसे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि रूप संसारका भी अभाव है। जागरित स्वप्नमें इन वागादिकोंका सद्भाव है। कर्तृत्व भोक्तृत्व रूप संसार भी बन रहा है। ऐसे कर्तृत्व भोक्तृत्व संसारकूं औपाधिक होनेसे परमार्थसे निर्विशेष

सच्चिदानंद आत्मा है । हे बालाके ! जबी यह पुरुष स्वप्नाव-स्थाकूं प्राप्त होवे है तब अपनी मायाके बलकरि अनेक मिथ्या पदार्थोंकूं उत्पन्न करे है । जागरित अवस्थामें भिक्षु भी स्वप्नाव-स्थामें महाराजा होवे है । मूर्ख भी पंडित होवे है । देवादि उत्तम देहोंकूं तथा पशु पक्षी आदि नीच देहोंकूं स्वप्नावस्थामें प्राप्त होवे है । जैसे जागरितावस्थामें चक्रवर्ती राजा अपनी इच्छानुसार अपने देशोंविषे अटन करे है तैसे स्वप्नावस्थाकूं प्राप्त हुआ पुरुष अनेक देशोंमें अपनी इच्छानुसार अटन करे है । स्वप्नावस्थामें भिक्षुने राजा होइ जाना तथा देशोंमें अटनादि यह सर्व ही जाग-रितकालमें रहे नहीं यातें मिथ्या है । तैसे जाग्रत्के जे सर्व पदार्थ हैं ते सर्व ही स्वप्नमें रहे नहीं यातें मिथ्या हैं । हे बालाके ! इन जाग्रत् स्वप्न दोनों अवस्थावोंविषे देह इंद्रियादि उपाधि रहे हैं । यातें ही यह जीव अनेक प्रकारके दुःखोंकूं प्राप्त होवे है । सुषुप्ति अवस्थामें नाम रूप जगत्के विशेष ज्ञानसे रहित होइकारि स्थित होनेसे परमानंदकूं प्राप्त होवे है । हृदयसे निकसकारि बहत्तर हजार नाडियां सर्व शरीरमें व्यापक होइ रही हैं । इन नाडियोंकी अधिक संख्या प्रश्नोपनिषद्में कही है । हितफलकी प्राप्तिका यह नाडियां द्वार हैं यातें इन नाडियोंका नाम हिता कह्या है । ता नाडियोंकरिके पुरीतद्द्वारा ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवे है । हृदयकमलके चारों दिशासे वेष्टन करिके स्थित जो चर्म है ता चर्मकूं पुरीतत् नामसे कथन करा है ता पुरीतद्द्वारा सुषुप्तिअवस्थाविषे ब्रह्मानंदकूं प्राप्त भया जो जीव है तामें यह दृष्टांत कहे हैं । जैसे अत्यंत बालक दुग्धकूं पानकरि शय्यामें स्थित हुआ रागद्वेषादिकोंके अभावसे परमानंदकूं प्राप्त होवे है । तथा जैसे चक्रवर्ती राजा सर्व भोगों-करि तृप्त हुआ आनंदकी अवधिकूं प्राप्त होवे है । तथा जैसे विद्या

विनयादिकोंकूं प्राप्त हुआ जीवन्मुक्त ब्राह्मण आनंदकी सीमाकूं प्राप्त होवे है तैसे सुषुप्तिअवस्थामें यह पुरुष निरवधिक आनंदकूं प्राप्त होवे है। ऐसे किस आधारमें यह पुरुष शयन करता है या प्रथम प्रश्नके उत्तरकूं ऐसे कह्या। जो यह जीव सुषुप्तिअवस्थामें पुरीतद्‌द्वारा ब्रह्ममें एकताकूं प्राप्त हुआ ही शयन करे है। ब्रह्मसे भिन्न होइकरि किसी भिन्न आधारमें रहे नहीं। जागरितावस्थामें किस अवधिसे प्राप्त भया है। या द्वितीय प्रश्नका उत्तर भी यह ही जानना ता ब्रह्मसे ही जागरितकूं प्राप्त होवे है। यातें जागरितकी अवधि भी ब्रह्म है दूसरा नहीं। या स्थानमें भाष्यविषे ऐसी शंका दिखाई है। देवदत्त नामक पुरुष श्रीगंगाजीसे आइकरि अपने गृहमें प्रवेश करे है। या कहनेसे गंगा अवधि प्रतीत होवे है और गृह आधार प्रतीत होवे है। तैसे पुरुषके शयनके आधार और अवधि भिन्न भिन्न कहने चाहिये। एक ब्रह्मकूं उभयरूपता कैसे निरूपण करी। या शंकाकी निवृत्तिवासते ऊर्णनाभि नाम लूता कीटका तथा अग्निका दृष्टांत कहा है। जैसे एक ही ऊर्णनाभि नामक कीट किसी दूसरेकी सहायता विना ही अपने मुखसे तंतुवोंकूं उत्पन्न करिके अपने विषे ही लीन करे है तैसे यह जीव सुषुप्ति अवस्थामें जिस ब्रह्मके साथ अभेदभावकूं प्राप्त होवे है ता ब्रह्मसे ही वागादिक सर्व प्राण भूरादिक सर्व लोक अग्नि आदि सर्व देव ब्रह्मादि पिपीलिकापर्यंत सर्व भूत उत्पन्न होवे हैं। और जैसे एकरूप प्रज्वलित अग्निसे अनेक विस्फुलिंग उत्पन्न होवे हैं तैसे एक ब्रह्मसे ही नाना प्रकारका जगत् उत्पन्न होवे है और ता ब्रह्मविषे ही स्थित है। तथा ता ब्रह्मविषे ही लीन होवे है। ता जगत्के उत्पत्ति आदिक भी वास्तव नहीं है। जगत् ही वास्तव नहीं तब ताके उत्पत्ति आदिक वास्तव कैसे होवेंगे। हे बालाके! यह

संपूर्ण जगत् जाग्रत् स्वप्नमें उत्पत्तिकूं प्राप्त होवे है। सुषुप्तिमें प्रलयकूं प्राप्त होवे है। दूसरे जागरित स्वप्नमें पुनः उत्पन्न होवे है। दूसरी सुषुप्तिविषे पुनः लीन होवे है। ऐसे अनेक वार जगत्के उत्पत्ति आदिक होवे हैं। सोई कल दिनका यह गृह है सोई यह क्षेत्र है इत्यादि प्रत्यभिज्ञाज्ञान सर्व ब्रह्मरूप है। जैसे कोई कहे सोई यह नदी है सोई यह दीपज्वाला है इत्यादि प्रत्यभिज्ञाज्ञान भ्रमरूप है। काहेते सो नदीका प्रवाह नहीं रह्या तथा सोई दीपज्वाला नहीं रही। केवल अविवेकसे ही सोई यह नदी है सोई यह दीपज्वाला है यह ज्ञान होवे है। तैसे दिन दिनविषे लीन होनेहारे जगत्में सोई कल दिनका यह गृह है सोई यह क्षेत्र है सोई यह पुस्तक है इत्यादि सर्व ज्ञान भ्रमरूप हैं। वास्तवसे तौ क्षण क्षणविषे जगत उत्पन्न होवे है क्षण क्षण विषे लीन होवे है। इसी वासते श्रीवसिष्ठादि सर्वज्ञ ऋषियोंने दृष्टि सृष्टिवाद अंगीकार करा है। दृष्टि कहिये ज्ञानरूप ब्रह्म ही सृष्टिनाम प्रपंच है ता दृष्टिरूप ब्रह्मसे भिन्न सृष्टि नहीं और दृष्टि सृष्टि इस शब्दका अर्थ यह भी लिखा है। जबतक दृष्टिरूप वृत्ति है तबतक यह सृष्टि है। वृत्तिसे आगे पीछे सृष्टि नहीं। ब्रह्मरूप समुद्रमें बुद्बुदेकी न्याईं क्षण क्षणविषे यह प्रपंच उत्पन्न होवे है तथा क्षण क्षणविषे लीन होवे है। श्रीव्यासभगवान्ने शारीरिकके दूसरे अध्यायमें जो क्षणिकवादका खंडन करा है सो अधिष्ठानरूप सत्य ब्रह्मकूं न माननेहारे बौद्धके मतका खंडन है द्रष्टा दृश्य दोनोंकूं बौद्ध क्षणिक माने है। वेदांतसिद्धांतमें दृश्यरूप प्रपंच तौ क्षणिक मान्या है। द्रष्टारूप ब्रह्मकूं एकरस सत्यरूप अंगीकार करा है यातें श्रीव्यासके अनुसार ही यह प्रपंच क्षणिकवाद है विरुद्ध नहीं। ग्रंथविस्तारके भयसे और विशेष युक्ति हमने लिखी नहीं। ऐसे सर्व प्रपंच जा ब्रह्मविषे उत्पन्न होवे है तथा

स्थित होवे तथा प्रलीन होवे है ता ब्रह्मकी प्रतिपादक यह उपनिषत् है । उपनाम समीपका है नि नाम निरंतरका है षत् नाम प्राप्त करनेहारेका है । ब्रह्मकूं समीप ही जो निरंतर प्राप्त करनेहारी होवे ताकूं उपनिषत् कहे हैं । ता रहस्यरूप उपनिषत्कूं दिखावे हैं । " सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् " अर्थ यह सत्यस्य सत्यं नाम ब्रह्मदेव सत्यके सत्य हैं । सत्यके सत्य हैं इसका अर्थ आप ही उपनिषत् कहे है । प्राणा वै सत्यं प्राण ही स्थूल सूक्ष्म प्रपंचरूप सत्य हैं । तेषामेष सत्यं नाम तिन सर्वप्रपंचरूप प्राणोंका यह ब्रह्मदेव सत्य है कहिये अधिष्ठान है। ऐसे बालाकि विद्याकूं ग्रहणकरि मोक्षकूं प्राप्त भया इति । पूर्व प्रथम ब्राह्मणमें प्राणोंकूं सत्यरूपता कही ता सत्यरूप प्राणकी शिशुरूपसे उपासनाके वासते दूसरा शिशु ब्राह्मण है इति । तिसरे मूर्त्तामूर्त्त नामक ब्राह्मणमें प्राणरूप कार्य ब्रह्मकूं सत्यरूपताका कथन है । "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च" अर्थ यह नेति नेति इत्यादि वाक्योंकरि निरूपण करा जो परमार्थरूप ब्रह्म है ता ब्रह्मके मायमय दो रूप हैं एक मूर्त्त है दूसरा अमूर्त्त है । इन दोनोंविषे जो मूर्त्त है सो मर्त्य नाम मरनेहारा है दूसरा अमूर्त्त अमर है। मूर्त्त परिच्छिन्न है अमूर्त्त अपरिच्छिन्न है। मूर्त्त प्रत्यक्ष है अमूर्त्त अप्रत्यक्ष है । पृथिवी जल तेज यह भूतत्रय मूर्त्त हैं । वायु आकाश यह अमूर्त्त हैं। पृथ्वी आदि तीन भूतोंके सघन अवयव होनेसे तिनकूं मर्त्यरूपता कही।वायु आकाशकूं विपरीत होनेसे अमर्त्यरूपता कही । तिन पृथिवी आदि तीन भूतोंका यह आदित्यमण्डल सार है । वायु आकाशरूप अमूर्त्तका आदित्यमंडलस्थ हिरण्यगर्भरूप पुरुष सार है । ऐसे अधिदैव विभागकूं कथन करिके अब अध्यात्मविभागकूं कहे हैं । पृथिवी आदि भूतत्रयका चक्षु सार है । वायु आकाशका दक्षिण चक्षुमें

स्थित लिंगात्मा पुरुष सार है । अब लिंगशरीर उपाधिक आत्माके अनेक रूपोंकूं वर्णन करे हैं । यह लिंगात्मा स्त्री आदिकोंके वियोग होनेसे हरिद्राकरि रंगे पीत वस्त्रके तुल्य होवे है । ऐसे पीत शुक्ल रक्तादिक अनेक रूपोंकूं सत्त्व रज तम इन गुणोंकी न्यूनता अधिकतासे यह पुरुष प्राप्त होवे है । ऐसे समष्टिव्यष्टि-लिंगात्माके अनेक रूपोंकूं कथन करिके अब या हिरण्यगर्भरूप प्राणसत्यका ब्रह्म सत्य है या सत्यके सत्यब्रह्मका निरूपण करे हैं 'अथात आदेशो नेति नेति' अर्थ यह अथ नाम सत्यस्वरूपके निरूपणके पश्चात् सत्यका सत्य जो ब्रह्म है ताकूं कहे हैं । जिससे मूर्त्त अमूर्त्तके निरूपणके पश्चात् ब्रह्मकाही निरूपण अपेक्षित है । और मूर्त्त अमूर्त्तका निरूपण भी ब्रह्मके निरूपणवासते ही करा है । यातें नेति नेति ऐसे ब्रह्मका कथन है । दो नकारोंसे मूर्त्त अमूर्त्त-का स्थूल सूक्ष्मका विद्या अविद्याके कार्यका भाव अभावका इत्यादि सर्व अनात्म पदार्थोंका निषेध जानना । और निषेध अधिष्ठान विना होवे नहीं यातें सर्व प्रपंचके निषेध अवधि-रूप ब्रह्म अबाध्य है । और शुद्ध ब्रह्मकूं मन वाणीका अविषय होनेसे यह निषेधरूप मुख्य उपदेश ही ब्रह्मका प्राप्त करनेहारा है । ऐसे हिरण्यगर्भरूप प्राण सत्य है तिन प्राणोंका अधिष्ठानरूप ब्रह्मही सत्य है इति । तृतीय ब्राह्मणमें कही जो ब्रह्मविद्या ता ब्रह्मवि-द्याके अंगरूप संन्यासके विधानवासते चतुर्थ मैत्रेयी ब्राह्मण है । मैत्रेयी ब्राह्मण या उपनिषद्के चतुर्थाध्यायमें तथा षष्ठाध्यायमें पठन करा है । तिन दोनों स्थानोंमें पठन करे मैत्रेयी ब्राह्मणका अर्थ या उपनिषद्के षष्ठाध्यायमें कहेंगे । और इस मैत्रेयी ब्राह्मणमें सर्वात्मता कही है । ता सर्वात्मताकी सिद्धिवासते ही मधुब्राह्मण है । ता मधुब्राह्मणके अर्थकूं कहे हैं । जैसे अनेक मधुकर मक्षिका

एक मधुके अपूपकूं उत्पन्न करे हैं। तैसे ब्रह्मादि पिपीलिकापर्यंत सर्वप्राणियोंकी यह पृथिवी मधुकी न्याई मधु नाम कार्य है। पृथिवीके सर्व भूत कार्य हैं। जो या पृथिवीमें प्रकाशस्वरूप तथा अमृतस्वरूप पुरुष है। तथा जो लिंगात्मा पुरुष या शरीरविषे वर्त्तमान है। तिन दोनों समष्टि व्यष्टि अभिमानी पुरुषोंका अभेद है। यह एक ही आत्मा उपकारकरूपसे तथा उपकार्यरूपसे स्थित है। तथा जल अग्नि वायु आदित्य दिशा चंद्र विद्युत् मेघ आकाश धर्म सत मानुष्य इत्यादि सर्व आधिदैवोंमें तथा रेतवागादिक सर्व अध्यात्मोंमें स्थित जो पुरुष है तिन दोनोंका अभेद है। एक ही आत्मा पृथिवी आदिकोंमें स्थित हुआ सर्व भूतोंविषे उपकार करनेहारा है। व्यष्टिभूतोंके अदृष्टोंके अधीन ही पृथिवी आदि रचे हैं, यातें व्यष्टिभूतोंमें स्थित हुआ यह आत्मा पृथ्वी आदिकोंका उपकार करनेहारा है। 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' अर्थ यह वास्तवसे यह उपकार्य उपकारकरूप सर्व जगत ब्रह्मस्वरूप है। और यह ब्रह्मात्मा सर्व भूतोंका स्वतंत्र पति है तथा सर्व भूतोंका प्रकाशक राजा है। जैसे रथकी नाभिमें अरा स्थित होवे हैं तैसे या ब्रह्मात्मामें ब्रह्मादि पिपीलिकापर्यंत सर्व भूत स्थित होवे हैं। तथा अग्नि आदि सर्व देव तथा भूरादि सर्व लोक वागादि सर्व प्राण विज्ञानमय सर्व आत्मा या परमार्थरूप अधिष्ठान आत्मामें स्थित होवे हैं। या ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासते आख्यायिका कही है ता आख्यायिकाकूं संक्षेपसे कथन करे हैं। कोई एक ऋषि अश्विनीकुमारोंकूं अपने कार्यवासते प्राप्त हुआ यह कहता भया। हे अश्विनौ! मेरे कार्यकूं करो। जबी तुम मेरा कार्य नहीं करोगे तब तुमारे घोर पापकूं मैं प्रगट करूंगा। ऐसे वचनकूं श्रवण करि अश्विनीकुमार कहे हैं। हे ऋषे! हमारे

पापकूं प्रथम प्रगट करो पश्चात् हम आपका कार्य करेंगे । ऋषिरुवाच । हे अश्विनौ ! तुम रूप और यौवन अवस्थाके अभिमान करिके कदाचित् देवराज इंद्रकी अवज्ञा करते भये । तुमकूं वैद्य जानकरि तथा अवज्ञा प्राप्त हुआ इन्द्र तुमारे यज्ञ भागकूं दूर करता भया । यज्ञभागसे रहित हुए तुम महान् दुःखकूं प्राप्त होते भये । अपने दध्यङ्नामक दधीचगुरुके समीप आइकरि क्रोधसे यह वचन कहते भये । हे गुरो ! इंद्रने हमारा यज्ञ भाग दूर करा है । अब हम क्या करें । हम इंद्रके मारनेके अनेक उपाय जानते हैं । अब हम इन्द्रका नाश करेंगे । आपकी कृपासे हम इन्द्रसे मृत्युकूं न प्राप्त होवेंगे । आप भी संमति देवो जो अब क्या करना उचित है । ऐसे तुमारे वचनकूं श्रवणकरि तुमारा गुरु यह कहता भया । हे अश्विनौ ! तुमारा इन्द्र शत्रु नहीं है यह क्रोध ही तुमारा शत्रु है । जबी तुम क्रोधरूपी शत्रुके जीतनेविषे भी समर्थ नहीं तब तुम इन्द्रकूं कैसे जीतोगे । जबी इन्द्र ही तुमारा शत्रु होता तब तिस इन्द्रने तुमारे क्रोधसे प्रथम ही तुमारा यज्ञभाग किसवासते दूर न करा । यातें इन्द्र शत्रु नहीं क्रोधने ही तुमारेकूं दीनसे दीन करा है । जो प्राणी अपने महावैरी कामक्रोधके जीते विना औरसे वैर करता है, सो महामूढ पुरुष है । हे अश्विनौ ! जबी तुमारेमें कुछ सामर्थ्य है तब तुम अपने कामक्रोधरूप वैरियोंका नाश किसवासते नहीं करते । दधीच गुरुने तुमारे क्रोधके दूर करनेहारे शांतिवाक्य कहे भी परंतु तुमारा क्रोध निवृत्त नहीं भया । तब तुमारे गुरुने कह्या । हे अश्विनौ ! जब तुम क्रोधरूप अग्निकूं शांत करोगे तब तुमारे ताईं दुर्लभ ब्रह्मविद्याका हम दान करेंगे । इंद्रके साथ युद्ध करना अत्यंत अनुचित है । जबी पृथिवीके देवतारूप ब्राह्मणोंका मारना

भी महापातक होनेसे अत्यन्त अनुचित है। तब स्वर्गके देवता इन्द्रादिकोंका मारना कैसे अनुचित नहीं है। यातें इन्द्रसे तुम वैरका त्याग करो। और यज्ञभागकी प्राप्तिके उपायकूं मैं तुमारे ताईं कथन करता हूं। शर्यातिनामक राजाका जामातारूप च्यवन ऋषि तुमारेकूं यज्ञभागका दान करेगा। च्यवनऋषिके नेत्र नहीं हैं। जब तुम ता ऋषिके ताईं नेत्रका दान करोगे तब तुमारे ताईं सो ऋषि यज्ञभाग अवश्य देवेगा। ऐसे गुरुके वचनोंकूं श्रवण-करि तुम च्यवनऋषिके समीप जायकरि यज्ञभागकूं प्राप्त भये। सो च्यवनऋषि इन्द्रसे निर्भय होइकरि तुमारे ताईं यज्ञभागका दान करता भया। या च्यवनऋषिकी कथा भारतके वनपर्वमें लोमशनामक ऋषिने महाराजा धर्मपुत्र युधिष्ठिरके प्रति कथन करी है। जब तुम दधीच नामक गुरुके समीपसे चले आये तब पश्चात् ता दधीचनामक गुरुके समीप देवराज इन्द्र प्राप्त होता भया। तुमारे गुरुने इन्द्रका आतिथ्यभावकरिके यह कहा। हे इन्द्र! तुमारा प्रिय मैं क्या करूं। इन्द्र उवाच। हे ऋषे! दुर्लभ जो ब्रह्मविद्या है ता ब्रह्मविद्याकूं मेरे ताईं तुम कथन करो। तब दधीचऋषि अपने मनमें यह विचार करता भया। वैराग्य श्रद्धा गुरुभक्ति आदि साधनोंसे विना अनधिकारीकूं ब्रह्मविद्याका उपदेश करना अत्यंत अयोग्य है। भोगोंमें लम्पट या इन्द्रमें वैराग्यदिक साधनोंके अभावसे ब्रह्मविद्याका अधिकार नहीं। और जबी मैं ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं करूं तब मैंने प्रथम यह कह्या था। जो तेरा प्रिय मैं क्या करूं। इन्द्रने ब्रह्मविद्या मांगी। जबी मैं ब्रह्मविद्याका दान नहीं करूं तब मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होवेगी। ता प्रतिज्ञा भंगके भयसे इन्द्रके ताईं दधीचऋषि ब्रह्मविद्याका उपदेश करता भया। सो ब्रह्मविद्या मधुब्राह्मणरूप है। ताका पूर्व

निरूपण करा है । और संक्षेपसे मधुब्राह्मणका अर्थ यह है । एक ही ब्रह्मात्मा पृथिवी आदिकोंमें तथा मनुष्यशरीरादिकोंमें व्यापक होइ रहा है । और या ब्रह्मात्माने ही पशु पक्षी आदिकोंके शरीरोंकूं उत्पन्न करिके आप ही प्रवेश करा है । हे इन्द्र ! एक ही आत्मा तेरे शरीरमें तथा श्वानके शरीरमें समान ही व्यापक है । पञ्च भूतोंका देह भी श्वानका तथा तुम इन्द्रका तथा मेरा समान है । और इंद्र नाम परम ऐश्वर्यवालेका है । परम ऐश्वर्यवाला परमात्मा है । तुम तौ व्यर्थ ही अभिमानकरि अपना ऐश्वर्य मानते हो । ऐसे अनेक यथार्थ वाक्योंकूं श्रवणकरि राजस प्रकृतिवाला इन्द्र परमक्रोधकूं प्राप्त होता भया । और यह कहता भया । हे ऋषे ! आजसे लेकर या मधुविद्याकूं तू किसीके ताईं कहेगा तब तेरा शिर अपने वज्रसे मैं काट देऊंगा । ऐसे वचनकूं श्रवण करि दधीचऋषि परम हर्षकूं प्राप्त भया । जिस विचारकूं करिके ता दधीचऋषिने इन्द्रकूं शाप न दिया सो विचार यह है दैवोथर्वाऋषि मेरे गुरुने मेरे ताईं वेद विद्याका उपदेश तौ करा परंतु जीवन्मुक्तिके सुखकी प्राप्ति तौ इन्द्रकी कृपासे ही भयी है । जीवन्मुक्ति सुखका विरोधी तौ मेरेमें यह ही था जो विद्याका उपदेश करना । यह मेरा शिष्य है मैं गुरु हूं इत्यादि भेदबुद्धिकी इन्द्रकी कृपासे सर्वथा निवृत्ति भयी है । और किंचित अपकारके प्राप्त होनेसे ज्ञानी पुरुष भी जबी क्रोध करेंगे तब सर्प श्वानादिकोंसे ज्ञानीकी क्या विलक्षणता होवेगी । जे पुरुष अपकार करनेवालेमें क्रोध नहीं करते ते उत्तम ज्ञानी हैं और अपकार करनेवाला भी आत्माका अपकार करता है वा देहइंद्रियादिरूप अनात्माका उपकार करता है । निर्विकार आत्माके अपकार करनेकूं तौ कोई समर्थ नहीं । अंगीकार करें तौ भी आत्मा नाम अपने स्वरूपका है आत्मा एक ही है

तब अपकारकर्त्ता सो पुरुष अपना ही अपकार करे। और अनात्मा देह इंद्रियादिकोंके अपकार करनेसे भी ज्ञानीको क्या ? ज्ञानी तौ देहइंद्रियादिकोंसे भिन्न शुद्ध निर्विकार ब्रह्मरूप आपकूं मानता है और ज्ञानीके ही सर्व देह हैं एक देहसे दूसरे देहके अपकार हुए भी ज्ञानीकूं क्रोध करना योग्य नहीं। जैसे अपने दंतोंकरि अपनी जिह्वाके काटनेसे पुरुष पाषाणकरिके अपने दंतोंकूं तोडकरि बाहिर निकासे नहीं। तैसे एक देहमें स्थित हुआ आत्मा अपकार करे है दूसरे देहमें स्थित हुआ अपकारकूं प्राप्त होवे है। और वास्तवसे तौ आत्मामें अपकारादिकोंका संबंध नहीं। आत्माके यथार्थ स्वरूपकूं न जाननेवाले पुरुषने भी यह विचार करना चाहिये। उपकार अपकारादिकोंसे होनेवाले सुख दुःख अपने कर्मजन्य हैं। यातें अपने पापरूप कर्मके फल दुःखकूं पुरुष प्राप्त होवे है। दूसरा कोई सुखदुःखके करनेहारा नहीं है। ऐसे अनेक प्रकारके विचार करि सो दधीचऋषि शाप न देता भया। पश्चात् इंद्रकूं सो ऋषि यह कहता भया। हे इन्द्र! तुम कुछ और अपना कार्य कहो। विद्याका उपदेश नहीं करना यह जो तुमने मेरेकूं कहा सो यह तौ मेरा ही हित करा है। अपना कोई और कार्य कहो जाकूं मैं करूं। ऐसे वचनकूं श्रवण करि इन्द्र यह कहता भया। हे ऋषे! मेरा यही कार्य है तुमने विद्याका किसीकूं उपदेश नहीं करना। ऐसे कथन करिके इन्द्र स्वर्गलोकमें प्राप्त होता भया। पश्चात् तुम दोनों ता दधीच गुरुके समीप आइकरि यह कहते भये। हे गुरो! आपने ब्रह्मविद्याके देनेवासते कहा था। सो अब आप कृपा करि ब्रह्मविद्याका उपदेश करो। ऐसे तुम्हारे वचनकूं श्रवणकरि सो दधीचऋषि परम चिंताकूं प्राप्त भया। और चिंताका निमित्त तुमारेकूं सर्व कहकरि यह कहता भया। जबी तुमारेकूं मैं ब्रह्म-

विद्याका दान नहीं करता तब मेरी प्रतिज्ञा भंग होवे है, जबी ता ब्रह्मविद्याका तुमारेकूं उपदेश करूं तब इन्द्र मेरा शिर काटेगा। मरणसे तौ मैं भय नहीं करता। काहेते जो शरीर तौ दृष्ट विनश्वर है। शरीरका नाश होनेके यह निमित्त प्रसिद्ध हैं। व्याधि सप सिंह चोर विष जल अग्नि शत्रु अजीर्ण उच्च स्थानसे गिरना इत्यादि अनंतनिमित या शरीरके नष्ट होनेके वर्त्तमान हैं। यातें शरीरका नाश तौ अवश्य होवेगा। शरीरके नाश होनेसे मेरेकूं किंचित् भीति नहीं। भीति तौ मेरेकूं प्रतिज्ञाभंगसे है। और शरीरनाश होना तौ उत्तम है, परंतु प्रतिज्ञा भंग करनी अत्यंत निंदित है। जबी तुमारे ताईं ब्रह्मविद्याका मैं दान करने लगा बीचमें ही इद्रने मेरा शिर काट दिया तब मेरी प्रतिज्ञा भंग होवेगी। ऐसे गुरुके वचनोंकूं श्रवण करि तुमने गुरुवोंकूं यह कहा। हे गुरो! यह अश्व है इसका शिर काटकरि हम आपकी ग्रीवामें स्थापन करते हैं आपका शिर काटकरि अश्वकी ग्रीवामें स्थापन करते हैं ता अश्वके मुखसे आप हमारे ताईं ब्रह्मविद्याका उपदेश करो। जबी इन्द्र वज्रसे आपका शिर काट देवेगा तब हम पुनः आपका शिर ही स्थापन करेंगे। ऐसे करनेसे आपका भी मृत्यु नहीं होगा तथा अश्वका भी मृत्यु नहीं होगा। जबी आप हमारे ताईं ब्रह्मविद्याका दान करोगे तब आपकी प्रतिज्ञा भंग भी नहीं होगी। जबी तुमारे गुरुने अंगीकार करा तब तुम शस्त्रसे अपने गुरुका शिर काटकरि अश्वका शिर लगाइ दिया। हे अश्विनौ! जबी तुमने ऐसा घोर पाप करा तब तुमारा गुरु अश्वके शिरसे ही तुमकूं ता मधुविद्याका उपदेश करता भया। तिस कालमें दधीचगुरुके ता अश्वके शिरकूं इंद्र काट देता भया। तब तुमने अश्वके शिरकूं पृथिवीमें गिरा देखकरि अश्वके शिरकूं अश्वकी ग्रीवामें स्थापन करा। और दधीचगुरुके

शिरकूं गुरुकी ग्रीवामें स्थापन करा । हे अश्विनौ ! संक्षेपसे ता विद्याकूं मैं कथन करता हूं । यह आत्मा पृथिवी आदि सर्व भूतोंकूं उत्पन्न करिके दो पदोंवाले शरीरोंकूं उत्पन्न करता भया । तथा चारि पदोंवाले शरीरोंकूं उत्पन्न करता भया । शरीरोंकू उत्पन्न करिके तिनमें लिंगशरीर उपहित हुआ प्रवेश करता भया । सर्व शरीररूपी पुरियोंमें स्थित होनेसे ही पुरुष कहावे है । परमात्मा ही अंतर बाहिर सारे परिपूर्ण है । या आत्माका प्रवेश भी सूर्यके प्रतिबिंबकी न्याई बुद्धिमें प्रतिबिंबरूप ही जानना । यह आत्मा अनेक शक्तिवाली अपनी मायाशक्तिकरि बहुत रूपसे प्रतीत होवे है इति । षष्ठ ब्राह्मणमें ब्रह्मविद्याकी स्तुतिवासते तथा जपवासते तथा ब्रह्मविद्यामें असांप्रदायिकत्वशंकाकी निवृत्तिवासते ऋषियोंका वंश कथन करा है। इति बृहदारण्यके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ नमः परमेष्ठिने । पूर्व चतुर्थाध्यायमें शास्त्रप्रधानतासे आत्माका निरूपण करा । युक्तियोंसे आत्माके निरूपणवासते या पंचमाध्यायका आरंभ है । प्रथम विद्याकी स्तुतिवासते कथा कही है । विदेहोंके वंशमें होनेसे वैदेहनामकूं प्राप्त होनेवाला जनकराजा यज्ञकूं करता भया । ता यज्ञका नाम बहुदक्षिण था । ता यज्ञमें कुरुपांचालादि देशोंके ब्राह्मण इकट्ठे होते भये । तिन अनेक ब्राह्मणोंकूं देखकरि राजा जनकके मनविषे ऐसी जिज्ञासा भयी जो इनमें अधिक वेदके अर्थकूं जाननेवाला ब्रह्मिष्ठ कौन है । पश्चात् राजाने अपने मनविषे यह विचार करा धनमें अनेक प्रकारके दोष हैं । धनकरि ही आपसमें विवाद करेंगे तब इन ब्राह्मणोंविषे ब्रह्मिष्ठका निर्णय होवेगा । ऐसे विचारकरि एक सहस्र गौवोंके एक एक शृंगमें पंच पंच मुहररूप स्वर्णकूं बांधकरि सभामें स्थापन करता हुआ यह कहता भया । भो ब्राह्मणाः !

जो तुमारेमें अतिशयकरि ब्रह्मज्ञ है ऐसे ब्रह्मिष्ठके वासते यह गौवाँ स्थापन करी हैं। जब कोई ब्राह्मण भी अपनेकूं ब्रह्मिष्ठ मानकरि गौवोंके लेजाने विषे समर्थ न भया तब याज्ञवल्क्य सामवेदके पठन करनेवाले ब्रह्मचारी शिष्यकूं यह कहते भये। हे सौम्य! इन गौवोंकूं मेरे गृहविषे तू ले जा। ऐसे याज्ञवल्क्यके वचनकूं श्रवण करि सो ब्रह्मचारी गौवोंकूं याज्ञवल्क्यके गृहविषे ले जाता भया। तिस कालमें ब्राह्मण क्रोधकूं प्राप्त भये और यह कहते भये। यह याज्ञवल्क्य आपकूं ब्रह्मिष्ठ मानकरि हमारा सर्वका तिरस्कार करता भया। तब राजा जनकका ऋत्विग् राजअश्रित होनेसे महा अभिमानी याज्ञवल्क्यकूं यह कहता भया। हे याज्ञवल्क्य! तू आपकूं सर्वसे अधिक ब्रह्मज्ञानी मानता है क्या दूसरे ब्राह्मण ब्रह्मिष्ठ नहीं हैं। याज्ञवल्क्य उवाच। हे आश्वल! ब्रह्मिष्ठकूं हम वारंवार नमस्कार करते हैं। आश्वल उवाच। हे याज्ञवल्क्य! जब तू ब्रह्मवेत्ताकूं नमस्कार करता है तब सर्व ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मणोंके वासते प्राप्त भयी गौवोंकूं तूं अपने गृहविषे किसवासते ले जाता भया है? याज्ञवल्क्य उवाच। हे आश्वल! स्वर्णसहित गौवोंकूं देखकरि मेरे मनविषे अभिलाषा उत्पन्न भयी यातें ही मैं गौवोंकूं अपने गृहविषे ले गया। राजा देनेवाला है मैं लेजानेवाला हूं। ब्राह्मणोंकूं अकारण क्रोध किसवासते उत्पन्न भया है और धनकूं यह ब्राह्मण राजासे ग्रहण करें। हे आश्वल! तुम या राजासे और धनकूं ग्रहण करो मैं वारण नहीं करता। यातें ब्राह्मण क्रोध किस वासते करते हैं। जैसे अग्निमें आहुतिके गेरनेसे अग्नि ज्वलित होवे है तैसे याज्ञवल्क्यके वचनकूं श्रवण करि आश्वल महान् क्रोधकूं प्राप्त हुआ वाद करता भया। सो आश्वल कर्मसंबंधी अनेक प्रश्नोंकूं करता भया इति। पश्चात् आर्तभाग ग्रह और अतिग्रह

विषयक प्रश्न करता भया और मरणकालमें पुरुषके वागादिक जब लीन होवे हैं तब पूर्व शरीरकूं त्यागकरि किसकूं आश्रयकरिके दूसरे शरीरकूं पुरुष ग्रहण करे है। ऐसे प्रश्नोंकूं श्रवणकरि तब याज्ञवल्क्यमुनि उत्तर देते भये। इंद्रिय ग्रह हैं और विषय अतिग्रह हैं। जैसे समुद्रविषे प्राप्त भये पुरुषकूं मकरादिक ग्रह भक्षण करे हैं और तिन मकरादिकोंकूं अतिग्रहरूप तिमिंगिलादि भक्षण करे हैं। तैसे संसाररूप समुद्रमें नेत्र श्रोत्रादिरूप ग्रह पुरुषकूं अपने अधीन करे हैं। तिन ग्रहरूप इंद्रियोंकूं रूपादि विषयरूप अतिग्रह अपने अधीन करे हैं। और दूसरे शरीरके ग्रहणका निमित्त कर्मकूं कथन करा। हे आर्त्तभाग! पुण्यके करनेहारा पुरुष देवादि उत्तम योनियोंकूं ही प्राप्त होवे है। पापके करनेहारा पुरुष श्वान शूकरादि नीच योनियोंकूं ही प्राप्त होवे है इति। पश्चात् भुज्युनामक ब्राह्मण याज्ञवल्क्यसे यह पूछता भया। अश्वमेधनामक यागके करनेहारे पुरुष या शरीरकूं त्यागकरि कहां प्राप्त होवे हैं। याज्ञवल्क्य उवाच। हे भुज्यो! इन्द्रादिक देवताओंकी कृपासे अश्वमेध करनेहारे पुरुष या ब्रह्मांडसे बाह्य सूत्रात्माकूं प्राप्त होवे हैं इति। ऐसे संसारमें होनेहारे कर्मफलकी अवधिकूं निरूपण करिके अब वास्तव ब्रह्मस्वरूपके निरूपणवासते अध्यायका शेष है। प्रथम चतुर्थ उषस्तब्राह्मणमें अपरोक्ष साक्षी आत्मासे ब्रह्मका अभेद निरूपण करा है। उषस्त उवाच। हे याज्ञवल्क्य! जैसे कोई पुरुष गौका शृङ्ग ग्रहण कराइकरि गौका उपदेश करे जो यह गौ है। तैसे तू मेरे ताईं आत्माका अपरोक्षरूपसे कथन कर जो यह आत्मा है। याज्ञवल्क्य उवाच। हे उषस्त! यह जड प्राण जा आत्माकी चेतनसे चेष्टा करे है तथा रूपादिकोंकूं नेत्रादि ग्रहण

करे हैं। यह सर्वके अन्तर आत्मा देह इंद्रियादिकोंकी चेष्टा करनेवाला ही ब्रह्मरूप है। ' अतोऽन्यदार्त्तं ' अर्थ यह हे उषस्त ! या अन्तर ब्रह्मात्मासे अन्य नाम रूप प्रपञ्च आर्त्त है। नाम पीडित है। अर्थ यह मिथ्या है इति। पूर्व चतुर्थब्राह्मणमें ब्रह्मविद्या कही अब जीवन्मुक्तिसुखकी प्राप्तिवास्ते संन्याससहित ब्रह्मविद्याका या पञ्चमब्राह्मणमें कथन करे हैं। कहोलनामक ब्राह्मण यह प्रश्न करे है। हे याज्ञवल्क्य ! क्षुधा पिपासा शोक मोह जरा मृत्यु इन षट् ऊर्मियोंसहित जीवात्माकी सर्वधर्मातीत शुद्धब्रह्मके साथ एकता कैसे है। याज्ञवल्क्य उवाच। हे कहोल ! क्षुधा पिपासा प्रणोंका धर्म है। शोक मोह मनका धर्म है। जरामृत्यु या स्थूल शरीरका धर्म है। साक्षी आत्मा सर्व धर्मसे रहित है। यातें ही या प्रत्यगात्माकी ब्रह्मसे एकता बने है। या ब्रह्मात्माकूं जानकरि सर्व इच्छारूप एकपनेकूं त्याग करि विद्वान् संन्यासकूं ग्रहण करे है। जिन एषणावोंको ज्ञानी त्याग करे है। ते एषणा तीन प्रकारकी है। एक पुत्रएषणा है। दूसरी वित्तएषणा है। तीसरी लोकएषणा है। या लोककी तथा स्वर्गादिलोकोंकी इच्छाका नाम लोकएषणा है। इन सर्व एषणावोंकूं त्यागकरि संन्यासाश्रमकूं ग्रहण करते हुए विद्वान् भिक्षाटनसे शरीरनिर्वाहकूं करे हैं। और हे कहोल ! पुत्र पशु गृह क्षेत्र धन इन सर्व पदार्थोंका नाम वित्त है। यातें वित्तएषणा तथा लोकएषणा यह दोनों एषणा हैं। ऐसी एषणासे निवृत्त हुए वामदेवादिक विद्वान् जीवन्मुक्तिके परमानंदकूं प्राप्त होते भये। यातें अबके मुमुक्षु जनोंकूं भी सर्व एषणाके त्यागपूर्वक संन्यासाश्रमकूं ग्रहण करिके आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासन कर्त्तव्य हैं। तिन श्रवणादिकोंसे अपरोक्ष ज्ञानकूं प्राप्त होवे है। ता अपरोक्ष ज्ञानकूं प्राप्त हुआ विद्वान् कृता-

र्थताकूं प्राप्त होवे है और या ब्रह्मात्मा रूप ज्ञानीसे भिन्न नाम रूप प्रपंच मिथ्या है । और मिथ्याभूत क्षुधापिपासादि अनात्म धर्मोंसे निर्विकार असंग आत्माका संबंध नहीं है। यातें ता असंग प्रत्यगात्माकी ब्रह्मके साथ एकता बने है । इति। पूर्व निरूपण करे सर्वान्तरआत्माके निर्णयवासते षष्ठगार्गी ब्राह्मणका आरंभ है। वचक्नुऋषिकी पुत्री गार्गी नामा ब्रह्मविदुषी ता याज्ञवल्क्यकूं यह पूछती भयी । हे याज्ञवल्क्य ! यह नियम है । जो जो कार्य है सो सो अपने कारणमें स्थित होवे है। जैसे पटरूपकार्य अपने तन्तुरूप कारणमें स्थित होवे है तैसे ब्रह्मांडरूप पृथिवी अपने कारणरूप जलोंमें स्थित होवे है । तिन जलोंका आश्रय कौन है । याज्ञवल्य उवाच । हे गार्गि ! तेज वायुमें ही तन्तुवों विषे पटकी न्याईं ओत प्रोत होइ करि स्थित है। इन्धनादि आश्रयसे विना अग्नि प्रतीत होवे नहीं यातें अग्निरूप आश्रयकूं त्यागकरि वायुकूं ही पृथिवीका आश्रय कथन करा। गार्गी प्रश्न करे है। हे याज्ञवल्क्य ! वायु किसमें ओतप्रोत है । पक्षी आदिकोंके गमनका आश्रय जो अंतरिक्षलोक है ता अंतरिक्ष लोकमें ही वायु ओतप्रोत है। अंतरिक्षलोकका आश्रय गंधर्वलोक है। गंधर्वलोकका आश्रय आदित्यलोक है। आदित्यलोकका आश्रय चंद्रलोक है। चंद्रलोकका आश्रय नक्षत्रलोक है। नक्षत्रलोकका आश्रय देवलोक है। देवलोकका आश्रय इन्द्रलोक है। गन्धर्वलोकसे लेकरि या इन्द्रलोकपर्यन्त स्थूल भूतोंकी सूक्ष्म अवस्था जाननी योग्य है । ते अवस्था पूर्व अवस्थाकी अपेक्षासे सूक्ष्म हैं उत्तर उत्तर अवस्थाकी अपेक्षासे स्थूल हैं। इन्द्रलोककी जनक जे भूतोंकी सूक्ष्मावस्था हैं ते अवस्था ही इन्द्रलोकका आश्रय हैं। इन्द्रलोककी आश्रय जो अवस्था है तिसका नाम प्रजापति-

लोक ही श्रुतिमें कह्या है । प्रजापति पदका अर्थ स्थूल भूतरूप विराट् है । तिस स्थूल भूतरूप विराट्का अपंचीकृत सूक्ष्मभूत आश्रय है । तिन अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूतोंका सूत्रात्मरूप ब्रह्मलोक नामसे कथन करा है । गार्गीने पूर्व पूर्वके आश्रयका प्रश्न करा याज्ञवल्क्यने उत्तर उत्तर आश्रय वर्णन करे । पश्चात् गार्गी तर्करीतिसे तिस ब्रह्मलोकका आश्रय पूछती भई । शास्त्रगम्य सूत्रात्माकूं तर्करीतिसे पूछनेवाली गार्गीकू याज्ञवल्क्य यह कहते भये । हे गार्गि ! तुम अति प्रश्न मति करो शास्त्रगम्य सूत्रात्मकूं जबी तुम तर्करीतिसे पूछेंगी तब तेरा शिर पृथिवीपर गिर जावेगा । ऐसे श्रवणकरि भयभीत हुई गार्गी तूष्णीं होती भयी इति । सप्तब्राह्मणमें शास्त्ररीतिसे सूत्रात्मा तथा अंतर्यामीका निर्णय करा है । उद्दालक प्रश्न करे है । हे याज्ञवल्क्य ! यह पृथिवीलोक तथा परलोक तथा ब्रह्मासे लेकरि पिपीलिकापर्यन्त सर्व भूत जा सूत्रकरिके ग्रथित हैं ता सूत्रकूं तूं जानता है । याज्ञवल्क्य उवाच । हे उद्दालक ! ता सूत्रकूं मैं जानता हूँ । उद्दालक उवाच । हे याज्ञवल्क्य ! जबी तूं जानता है तौ किसवासते कहता नहीं व्यर्थ ही अपनी वाचालतासे तूं कहता है मैं जानता हूं मैं जानता हूँ । याज्ञवल्क्य उवाच । हे उद्दालक ! श्रवण कर। सूत्रात्मरूप समष्टि वायु करिके ही यह लोक तथा परलोक ब्रह्मादि सर्वभूत ग्रथित होइ रहे हैं । जब प्राणरूप वायु या शरीरसे निकसे है तब यह शरीर नाशकूं प्राप्त होवे है । उद्दालक उवाच । हे याज्ञवल्क्य ! अब अंतर्यामीका निरूपण कर । याज्ञवल्क्य उवाच । " यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्यामंतरो य पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष त आत्मा अंतर्याम्यमृतः ।", अर्थ यह हे उद्दालक ! जो पृथिवीमें स्थित है सो अंतर्यामी है ।

पृथिवीमें स्थित तौ घटादिक भी हैं क्या घटादिक ही अंतर्यामी हैं। या शंकाकी निवृत्तिवासते पृथिवीके अंतर है। यह कह्या। घटादिक पृथिवीके बाह्य है। अंतर्यामी पृथिवीके अंतर है। पृथिवीके अन्तर तौ पृथिवी अभिमानी देवता है क्या पृथिवी अभिमानी देवता ही अंतर्यामी है। या शंकाकी निवृत्तिवासते पृथिवी-देवता जाकूं जाने नहीं यह कह्या। ता अंतर्यामीका शरीर कौन है। तहां उत्तर कहे हैं 'यस्य पृथिवी शरीरं' जा अंतर्यामीका पृथिवी ही शरीर है। अंतर्यामी जिसकूं प्रेरण करे है ता प्रेर्यसे भिन्न प्रेरकरूप अंतर्यामीका शरीर नहीं है। ऐसे अतर वर्त्तमान हुआ जो अंतर्यामी पृथिवीकूं तथा पृथिवीअभिमानी देवताकूं प्रेरण करे है। हे उद्दालक! सो यह अंतर्यामी तेरा आत्मा है। और अंतर्यामी आत्मा अमृतनाम कूटस्थ तथा आनंदस्वरूप है। ऐसे ही जो अंतर्यामी जलोंमें स्थित है। जलअभिमानी देवता जाकूं जाने नहीं इत्यादि सर्व पदार्थोंविषे पृथिवीमें कही रीतिसे सो अर्थ सर्व घटा लेना। अग्नि अंतरिक्ष वायु स्वर्ग आदित्य दिशा चंद्र तारा आकाश तमः तेज सामान्य इन अधिदैव पदार्थोंमें अंतर्यामी कह्या। अब अधिभूत पदार्थोंविषे अंतर्यामीका निरूपण करे हैं। ब्रह्मादि पिपीलिकापर्यंत सर्वभूतोंविषे अन्तयामी स्थित है सर्वभूत जा अंतर्यामीकूं जाने नहीं। पृथिवीमें कही रीति सर्वत्र इन पदार्थोंविषे घटाय लेनी। अब अध्यात्मपदार्थोंमें अंतर्यामीका निरूपण करे हैं। जो अंतर्यामी प्राणमें है। तथा वाक् चक्षु श्रोत्र मन त्वक् विज्ञान रेत इत्यादि सर्व जगत्में जो अंतर्यामी व्यापक है। जो अंतर्यामी नेत्र श्रोत्र मन बुद्धि आदिकोंका अविषय है। तथा नेत्र श्रोत्र मन बुद्धिके साथ मिलकरि द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता होवे है। और वास्तवसे या अंतर्यामीसे द्रष्टा श्रोता मंता

विज्ञाता जीव भिन्न नहीं है। यह अंतर्यामी ही जीवभावकूं प्राप्त हुआ द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञातादिरूप होवे है इति। सप्तम उद्दालकब्राह्मणमें सोपाधिक ब्रह्मका निरूपण करा। निरुपाधिक ब्रह्मके निरूपणवासते यह अष्टम गार्गी ब्राह्मण है। याज्ञवल्क्यके शापके भयसे गार्गी ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेवे है। हे ब्राह्मणा भगवंतः! जब आप मेरेकूं आज्ञा देवो तब मैं दो प्रश्न याज्ञवल्क्यसे पूछती हूं तिन मेरे दोनों प्रश्नोंके उत्तरोंकूं जब यह याज्ञवल्क्य कह देवेगा तब तौ या याज्ञवल्क्यकूं कोई जीतनेवाला नहीं है। जबी नहीं कहेगा तब मेरे शापसे इस याज्ञवल्क्यका मस्तक पृथिवीपर गिरेगा। यातें तुम सर्वही मेरेकूं आज्ञा देवो। ब्राह्मण आज्ञा देते भये। तब गार्गी याज्ञवल्क्यकूं यह कहती भयी। हे याज्ञवल्क्य! बहुलताकरिके पुरुषोंसे स्त्रीकी बुद्धि अधिक होवे है। तिन स्त्रियोंमें भी मेरेकूं सरस्वती जैसा तुमने जानना। मैं तौ यह जानती हूं जो पुरुष अपने हृदयमें साक्षीरूपसे स्थित आत्माकूं नहीं जानता सो पुरुष नपुंसक है पुरुष नहीं। और जो पुरुष आत्मज्ञानसे रहित है सोई स्त्री है। आत्मज्ञानकरि युक्त मैं स्त्री नहीं हूं। अज्ञानी पुरुष स्त्रियोंमें भी निषिद्ध स्त्री वेश्यारूप है। जैसे वेश्याकूं अनेक पामर पुरुष भोगते हैं तैसे काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादिरूप अनेक पुरुष अज्ञानी पुरुषरूप स्त्रीकूं भोगते हैं। और मैं तो दुःख सह या यौवनअवस्थामें काम क्रोधादिकोंसे रहित हुई स्थित हूं। यातें मैं स्त्री नहीं किंतु पुरुष हूं। आत्मबोध सहित ही पुरुष होवे है। आत्मबोधशून्य तौ वेश्या जैसी स्त्री है। और हे याज्ञवल्क्य! वास्तवसे तौ स्त्री पुरुष नपुंसक यह भेद ही अज्ञानकृत है। जैसे एक नट अपनी मायासे अनेक रूपोंकूं धारण करे है तैसे एक ही आत्मदेव अपनी मायाकरि अनेक रूपोंकूं

धारण करे है । परंतु वास्तवसे तो अद्वितीय ब्रह्म है । जैसे स्वप्नमें एक ही द्रष्टा अपनी निद्राशक्तिकरि हस्ती सिंह पुरुष स्त्री आदि रूपसे प्रतीत होवे है तैसे एक ही ब्रह्मदेव अपनी मायाशक्तिकरि अनेक रूपसे प्रतीत होवे है । हे याज्ञवल्क्य ! जैसे काशीका राजा दिवोदासका पुत्र प्रतर्दन वा जनकराजा अपने धनुषमें दो बाणोंकूं आरोपण करिके क्रोधसे शत्रुवोंपर चलावे । तैसे मैं गार्गी दो प्रश्नरूपी बाणोंकूं अपनी वाणीरूपी धनुषमें आरोपण करिके चलाती हूं । तिन बाणरूपी प्रश्नोंकूं सहारो । अर्थ यह तिन प्रश्नोंका उत्तर देवो । याज्ञवल्क्य उवाच । हे गार्गि ! तुम प्रश्न करो । गार्गी कहती भयी । हे याज्ञवल्क्य ! पृथिवी तथा स्वर्गके मध्यमें होनेहारे सर्व पदार्थ तथा पृथिवीके नीचे तथा पृथिवी और स्वर्गलोक तथा भूत भविष्यत् वर्त्तमान या तीन कालमें होनेहारे पदार्थ इत्यादि सब पदार्थ किसमें ओतप्रोत हैं । याज्ञवल्क्य उवाच । हे गार्गि ! अव्याकृत आकाश ईश्वर अंतर्यामी नारायण इत्यादि जाके अनंत नाम हैं ता मायाशबल ईश्वरमें ही सूत्रात्मापर्यंत सर्व जगत् स्थित है । ऐसे जबी याज्ञवल्क्यने प्रथम प्रश्नका उत्तर दिया तब गार्गी यह कहती भयी । हे याज्ञवल्क्य ! तेरे ताईं मेरा नमस्कार है । अब दूसरे प्रश्नके उत्तरकूं कहो । याज्ञवल्क्य उवाच । हे गार्गि ! तुम दूसरा प्रश्न करो । गार्गी कहे है हे याज्ञवल्क्य ! जिस अव्याकृत आकाशमें सर्व नाम रूप प्रपंच ओतप्रोत है सो अव्याकृत आकाश किसमें ओतप्रोत है । गार्गीके मनमें यह अभिप्राय था । याज्ञवल्क्य जबी उत्तर कहेगा तब शुद्ध ब्रह्मकूं वाणीका अविषय होनेसे अवाच्यवचनरूप दोष है । उत्तर नहीं कहेगा तब उत्तरकी अस्फूर्तिरूप अप्रतिभानामक निग्रह स्थानकूं प्राप्त होवेगा । जिस दोषके प्राप्त होनेसे उत्तरदाता जीत्या

जावे ताकूं निग्रहस्थान कहे हैं। सो याज्ञवल्क्य उत्तर कहेगा तब भी जीत्या जावेगा। नहीं कहेगा तबभी जीत्या जावेगा। दोनों प्रकारोंसे गार्गी अपना जय मानती हुई पूछती भयी। तब याज्ञवल्क्य भी ता गार्गीके अभिप्रायकूं जानते हुए यह उत्तर देते भये। स्थूलता सूक्ष्मतादि धर्मोंसे रहित जो अक्षर ब्रह्म है ता शुद्धब्रह्ममें ही अव्याकृत आकाश ओतप्रोत है। ऐसे ब्रह्मवेत्ता कहे हैं। ऐसे कहनेसे दोनों दोषोंका याज्ञवल्क्यने निवारण करा। प्रथम अवाच्यवचनदोष तौ मेरेकूं तब प्राप्त होता जब केवल मैं ही कहता। सर्व ब्रह्मवेत्ता ऐसे कहे हैं यातें अवाच्यवचनरूप प्रथम दोष नहीं। स्थूलतादि सर्व धर्मोंसे रहित अक्षर ब्रह्मकूं अव्याकृत आकाशका आश्रय कथन करा। यातें अप्रतिभानामक दूसरा दोष नहीं। अब ता अव्याकृत आकाशके अधिष्ठानरूप अक्षरका ही निरूपण करे हैं। हे गार्गि! यह अक्षर नाम नाशसे रहित तथा व्यापक जो ब्रह्म है सो ह्रस्व दीर्घ लोहित स्नेह छाया तम इन सर्वसे रहित है तथा इन सर्वसे भिन्न है। पृथिवी आदि पञ्च भूतोंसे तथा शब्दस्पर्शादिकोंसे रहित है तथा तिन पृथिवी आदिकोंसे भिन्न है। हे गार्गि! यह अक्षर आत्मा भोक्तृत्व भोग्यत्वादिक धर्मोंसे रहित है। और यह शुद्ध अक्षर ही अपनी मायाशक्ति साथ मिल करि सूर्य चंद्रादिकोंकूं अपनी आज्ञाविषे चलावे है। हे गार्गि! या अक्षरब्रह्मकी आज्ञाविषे स्वर्गलोक तथा पृथिवीलोक इत्यादि लोक स्थित हैं। या अक्षरब्रह्मकी आज्ञाविषे निमेष मुहूर्त्त दिन रात्रि पक्ष मास ऋतु वर्ष युग कल्प इत्यादि काल स्थित है। हे गार्गि! पर्वतोंसे निकसकरि पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणादि दिशावोंमें चलनेहारी श्रीगंगा यमुना नर्मदादि नदियां या अक्षरब्रह्मकी आज्ञामें वर्त्तें हैं। और हे गार्गि! फलप्रदाता या अक्षर आत्माकूं मानकरि ही

दाता पुरुष अन्न वस्त्र गौ स्वर्णादिकोंका दान करे हैं। और ता अक्षरकूं मानकरिके ही श्रेष्ठ पुरुष दाता पुरुषकी स्तुति करे है। और यजमान पुरुषके आश्रय होइकरि देवता पितर अपना जीवन करे हैं। सो देवतादिकोंका यजमानके अधीन होना भी ता अक्षरकी आज्ञासे जानना। महान् शक्तिवाले इंद्रादिक भी यजमानके अधीन ही परमेश्वरने रचे हैं। हे गार्गि! जो पुरुष या अक्षरके ज्ञान विना या लोकमें अग्निहोत्र यज्ञ तप दानादि अनेक कर्म करे हैं तिन सर्व कर्मका फल विनाशी ही उत्पन्न होवे है। 'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः' अर्थ यह हे गार्गि! जो पुरुष या अक्षरके जाने विना या लोकसे मृत्युकूं प्राप्त होवे है सो पुरुष कृपण है नाम महादीन है। और जो पुरुष या अक्षर ब्रह्मकूं जानकरि या शरीरका त्याग करे सो विद्वान् ब्राह्मण होवे है। अर्थ यह ब्रह्मस्वरूप हुआ मुक्त होवे है। हे गार्गि! यह अक्षर नेत्र श्रोत्र मन बुद्धि आदिकोंका अविषय हुआ भी आप द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञातादिरूप है। चैतन्यरूप होनेसे द्रष्टृत्वादिक मुख्य आत्माविषे ही हैं। नेत्रादिकोंविषे तो आत्माके अधीन ही रूपादिकोंके दर्शनका सामर्थ्य है। और हे गार्गि! या अक्षरसे भिन्न द्रष्टा कोई नहीं है। तथा या अक्षरसे भिन्न श्रोता मंता विज्ञाता नहीं है। या ब्रह्मात्मारूप अक्षरमें ही अव्याकृत आकाश ओतप्रोत होइकरि स्थित है। अर्थ यह मायाका आश्रय निर्विभाग शुद्धचिति है ऐसे याज्ञवल्क्यसे श्रवण करि ता याज्ञवल्क्यकूं गार्गि नमस्कार करती भयी। और सो गार्गी ब्राह्मणोंकूं यह कहती भयी। हे ब्राह्मणाः! मैं सत्य कहती हूं तुम सर्व श्रवण करो या याज्ञवल्क्यसे तुमने व्यर्थ ही विवादका आरंभ करा है। जब तुम या याज्ञवल्क्यमुनिके ताईं नमस्कार करोगे तब ही तुम कल्याणकूं प्राप्त होवोगे।

और इस याज्ञवल्क्यके जीतनेकी इच्छा कबी करनी नहीं यह तौ सर्वज्ञ पुरुष है । ऐसी अनेक प्रकारकी याज्ञवल्क्यकी स्तुति करती हुई सो गार्गी पश्चात् तूष्णीं होइ जाती भयी । गार्गीके वचनोंकूं श्रवण करि सर्व ब्राह्मण याज्ञवल्क्यके ताईं नमस्कार करते भये । परंतु एक शाकल्य नाम ब्राह्मण नमस्कारकूं न करता भया । ऐसे या अष्टम गार्गी ब्राह्मणमें अक्षरब्रह्मका पारमार्थिकरूप वर्णन करा इति । पूर्व अंतर्यामी ब्राह्मणमें सूर्यचंद्रादि देवतावोंका प्रेरक अंतर्यामी परमात्मा है यह कह्या था । तिन प्रेरने योग्य देवतावों-के विस्तारसंकोचद्वारा ता परमेश्वरके निर्णयवासते ही यह नवम शाकल्य ब्राह्मण है । देवताओंकी संख्याके प्रश्नोंके उत्तर याज्ञवल्क्यमुनिने सर्व कहे । परंतु सो शाकल्य कालकरि प्रेरा हुआ प्रश्नोंसे उपराम न होता भया । अनेक प्रश्नोंके उत्तर देते पश्चात् याज्ञवल्क्य ता शाकल्यकूं यह कहते भये । हे शाकल्य ! तुम प्रश्नोंसे उपराम होइ जावो । जब शाकल्य निवृत्त न भया तब याज्ञ-वल्क्य यह कहते भये । हे शाकल्य ! जब सूर्यभगवान्‌से मैंने विद्या ग्रहण करी थी तब ता सूर्यभगवान्‌ने मेरेकूं यह कह्या था । जो पुरुष तेरेमें स्थित मेरी विद्याका तिरस्कार करेगा तिसका मैं शिर काट देऊंगा । पुनः मैंने नाना वरोंकूं लेकरि ता सूर्यभगवान्‌कूं क्षमा करवाई । पश्चात् सूर्यभगवान् यह अवधि करते भये । हे याज्ञवल्य ! जो पुरुष बीस २० प्रश्नपर्यंत भी निवृत्त न होगा ता दुरात्माका मैं शिर काट देऊंगा । तब मैं ता सूर्यभगवान्‌से भयभीत हुआ तूष्णीं होइ जाता भया । यातें तुमारा मृत्यु न होवे । ऐसे कहनेसे भी शाकल्य द्वेषकूं न त्यागता भया । तब अंतमें याज्ञवल्क्यने यह वचन कहा । 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' अर्थ यह हे शाकल्य ! तिस उपनिषदोंकारि जानने योग्य आत्माकूं मैं तेरेसे पूछता हूं ।

जबी तुम या सर्वके अधिष्ठान आत्माकूं नहीं कहेगा तब तेरा मस्तक पृथिवीपर गिर जावेगा। जब शाकल्य उत्तर कहनेकूं समर्थ नहीं भया शाकल्यका मस्तक पृथिवीपर गिर गया। तब सर्व ब्राह्मण भयभीत होइ जाते भये। शाकल्यकी ही सर्व लोक निन्दा करते भये। तब याज्ञवल्क्य ब्राह्मणोंकूं यह कहते भये। तुम सर्व ही प्रश्न करो मैं उत्तर देऊंगा जब किसी ब्राह्मणने प्रश्न नहीं करा। तब याज्ञवल्क्य आपही प्रश्न करते भये। विस्तारभयसे या शाकल्यके प्रश्न तथा याज्ञवल्क्यके प्रश्न लिखे नहीं इति। इति बृहदारण्यके पंचमोऽध्यायः ॥५॥ ॐ नमः स्वप्रकाशचिदात्मने। पूर्व पञ्चमाध्यायमें जल्पकथासे ब्रह्मका निरूपण करा अब षष्ठाध्यायमें वादकथासे ता ब्रह्मका निरूपण करे हैं। पञ्चमाध्यायके अन्तमें विज्ञानानन्दरूप ब्रह्मका निरूपण करा है। ता ब्रह्मकी प्राणवागादिकोंके अधिष्ठाता वायु अग्नि आदिकोंमें ब्रह्मदृष्टिरूप उपासनाके विधानवासते प्रथम दो ब्राह्मण हैं। प्रथम ब्राह्मणका नाम षडाचार्य ब्राह्मण है। दूसरे ब्राह्मणका नाम कूर्च ब्राह्मण है। विद्याकी स्तुतिवासते कथा दिखावे हैं। जब याज्ञवल्क्यमुनिके शापकरि शाकल्य मृत्युकूं प्राप्त भया और सो रात्रि व्यतीत भयी। प्रातःकालविषे राजा जनक अपनी सभामें विराजमान भया। तथा याज्ञवल्क्यमुनि अत्यन्त सत्कारकूं प्राप्त हुए ता सभामें विराजमान होते भये तब राजा जनक नम्रतासहित हुआ याज्ञवल्क्यमुनिकूं यह कहता भया। हे भगवन्! आप सदृश महात्मा केवल हमलोगोंके उद्धारवासते ही या पृथिवीमंडलमें विचरते हैं। आप कृपा करि मेरेकूं उपदेश करो जिसकूं ग्रहणकरि मैं मोक्षकूं प्राप्त होऊं। याज्ञवल्क्य उवाच। हे राजन्! तेरे ताईं जो ऋषियोंने पूर्ण उपदेश करा है सो मेरेकूं श्रवण कराओ पश्चात् मैं तेरे ताईं कहूंगा। तब

राजा जो ऋषियोंने देवतावोंकी उपासनारूप उपदेश करा था ताकूं कहता भया । याज्ञवल्क्य उन उपासनावोंमें न्यूनता कहते हुए ता उपासनाकी पूर्तिकूं कथन करते भये । तब राजा जनक गुरुदक्षिणा एक सहस्र गौ देनेकूं कहता भया। याज्ञवल्क्य यह कहते भये । हे राजन् ! मेरेकूं अपने पिताने यह उपदेश करा था जो शिष्यके कृतार्थ हुए विना गुरुदक्षिणा ग्रहण करनी नहीं ऐसे लोभरहित याज्ञवल्क्यमुनिकूं देखकरि राजा अपने कूर्चनाम सिंहासनकूं त्यागता हुआ दंडवत् प्रणाम करिके ता याज्ञवल्क्य मुनिकूं यह कहता भया । हे मुने! तेरे ताईं मेरा वारंवार नमस्कार है संसारसमुद्रविषे डूब रहा जो मैं हूं तिस मेरेकूं आप कृपाकरि शीघ्र बाहिर निकासो । याज्ञवल्क्य उवाच । हे राजन् ! यह इन्द्ररूप आत्मा जागरित अवस्थामें दक्षिणनेत्रमें स्थित होवे है । और बुद्धिरूप इंद्राणी वामनेत्रमें स्थित होवे है। जागरित अवस्थामें नेत्रश्रोत्रादि इंद्रियोंसे नाना प्रकारके भोगोंकूं सो इंद्र भोगता हुआ नाडीरूप द्वारकरि स्वप्नकूं अनुभव करे है । तथा सुषुप्तिमें परमानन्दकूं प्राप्त होवे है। और वास्तवसे यह आत्मा स्थूल सूक्ष्म संघातसे रहित है । यह आत्मा कर्म इन्द्रियोंकार ग्रहण होवे नहीं । देहइन्द्रियादिकोंके नाश होनेसे आत्माका नाश होवे नहीं । और या असंग आत्माका किसीके साथ वास्तवसे सम्बन्ध नहीं है । हे जनक ! या आत्माकूं जानकरि तू अभय पदकूं प्राप्त भया है । जनक उवाच । हे भगवन् ! आप मेरेकूं अभयरूपताका बोधन करते हो। यातें आपके ताईं मेरा वारंवार नमस्कार है । मेरे विदेहदेशोंकूं आप भोगवासते ग्रहण करो। और यह मेरा देह भी आपकी सेवाविषे सर्वदा तत्पर रहे । मेरेकूं अपना दास जानकरि अपने चरणोंविषे राखो

ऐसे वचनकूं श्रवणकरि याज्ञवल्क्यमुनि अपने आश्रममें चलनेका संकल्प करते हुए राजा जनककूं यह कहते भये। हे राजन्! यह देश तथा धन तथा तुमारा शरीर सर्व ही हमारे हैं। परंतु हमारी आज्ञासे तुम या देशका राज्य करो तुम हमारे दास हो तुमारी इसी प्रकारकी श्रद्धाभक्ति सर्वदा बनी रहै। ऐसे कथन करिके याज्ञवल्क्यमुनि तौ अपने आश्रममें चले आवते भये। काल पाइकरि राजा जनक अग्निहोत्रमें तत्पर हुआ ता आत्मज्ञानकूं विस्मरण करता भया। या याज्ञवल्क्यमुनि भी लोकोंसे यह श्रवण करते भये तथा दिव्यदृष्टिसे यह जानते भये जो राजा जनकने आत्मज्ञानकूं विस्मरण करा है। तब याज्ञवल्क्यमुनि अपने मनमें यह विचार करते भये अब जनककूं जाते ही आत्मउपदेश करेंगे। और व्यवहारकी वार्त्ता करनी नहीं। ऐसे विचारकरि जनककी सभामें सो याज्ञवल्क्यमुनि प्राप्त होते भये। आगे राजा जनकने अपनी सभामें त्रैवर्णिक पुरुषोंकूं यह कह्या था जो तुम अग्निहोत्रविषे प्रश्न करो। मैं सर्वके उत्तर देऊंगा। तब याज्ञवल्क्यमुनि अग्निहोत्रमें नाना प्रकारके प्रश्न करते भये। राजा जनक संपूर्ण प्रश्नोंके उत्तरोंकूं कहता भया। तब राजाकी बुद्धिकी कुशलताकूं देखकरि परम प्रसन्न हुए याज्ञवल्क्यमुनि वर देते भये। राजा जनक काम प्रश्नरूप वरकूं मांगता भया। जैसे शाकल्य बहुत प्रश्न करनेसे मृत्युकूं प्राप्त भया तैसे बहुत प्रश्नोंके करनेसे याज्ञवल्क्यमुनिके शापकरि मैं भी मृत्युकूं प्राप्त नहीं होऊं। या अभिप्रायसे प्रश्नसमुदायरूप वरकूं सो जनकराजा मांगता भया। ऐसे कामप्रश्नरूपी वरकूं प्राप्त हुआ जनक प्रश्न करता भया। जनक उवाच। हे भगवन्! यह स्थूल सूक्ष्म संघातरूप पुरुष किस प्रकाशकज्योतिकरिके अनेक व्यवहारोंकूं करे है।

याज्ञवल्क्य उवाच । हे राजन् ! या आदित्यरूप ज्योतिकरिके यह संघातरूप पुरुष अशनादि व्यवहार करे है । तथा या आदित्य करिके ही देशांतरोंसे गमन करे है । तथा गमन करिके कर्म करे है । तथा देशांतरोंसे आगमन करे है । जनक उवाच । हे भगवन् ! जब सूर्य अस्त होवे है तब या संघातका प्रकाशक ज्योति कौन है । याज्ञवल्क्य उवाच । हे जनक ! तब चन्द्रमाकरिके या पुरुषका पूर्व कह्या सर्व व्यवहार सिद्ध होवे है । जनक उवाच । हे भगवन् ! जब सूर्य चन्द्रमा यह दोनों अस्त होइ जावें तब या पुरुषका कौन ज्योति है । याज्ञवल्क्य उवाच । तब अग्नि ही या संघातका ज्योति है । जनक उवाच । हे भगवन् ! जब सूर्य चन्द्र यह दोनों अस्त होइ जावें और अग्नि शांत होइ जावे तब कौन ज्योति है । याज्ञवल्क्य उवाच । तब वाग् ही ज्योति है । जा अन्धकारमें अपना हाथ भी नहीं देखा जाता ता अन्धकारमें दूसरे पुरुषके कहनेसे पुरुष आसनादि सर्व व्यवहार करे हैं । यातें सूर्य चन्द्र अग्नि इन तीनोंकरि जहां प्रकाश नहीं तहां वाग्रूप ज्योतिसे ही व्यवहार होवे है । जनक उवाच । हे भगवन् ! जा स्वप्नअवस्थामें सूर्यादि च्यारोंका प्रकाश नहीं तहां किस ज्योतिकरि सव व्यवहार होवे है । याज्ञवल्क्य उवाच । ता स्वप्नावस्थामें साक्षी आत्मारूपज्योति करिके सर्व व्यवहार सिद्ध होवे है । जनक उवाच । हे भगवन् ! देह इंद्रिय प्राण मन बुद्धि इनमें कौन ज्योति आत्मा है । याज्ञवल्क्य उवाच । हे राजन् ! देह इंद्रिय प्राण मन बुद्धि आदिकोंसे भिन्न देह इंद्रियादिकोंकी चेष्टा करनेवाला स्वयंज्योति आत्मा है । बुद्धि उपाधिक होनेसे ता आत्माकूं विज्ञानमय भी कहे हैं । सो विज्ञानमय आत्मा ही बुद्धिके साथ मिलकरि लोक परलोकमें तथा

जागरित स्वप्नमें गमन आगमन करे है । जैसे अग्निकरि तपाये लोहेके चतुष्कोणादिके होनेसे अग्नि भी चतुष्कोणादि रूप प्रतीत होवे है 'ध्यायतीव लेलायतीव' अर्थ यह तैसे लोहप्रविष्ट अग्निकी न्याईं बुद्धिके ध्यान करते आत्मा भी ध्यान करतेकी न्याईं प्रतीत होवे है । और बुद्धि प्राणादिकोंके चलनेसे आत्मा भी चलतेकी न्याईं प्रतीत होवे है वास्तवसे ता आत्मामें ध्यानादि तथा चलनादि नहीं हैं। काहेते जो यह बुद्धिउपाधिक विज्ञानमय आत्मा जब जागरितमें होनेहारे स्थूल शरीरके अभिमानकूं त्याग करे है तथा ता स्वप्नअवस्थामें अविद्यारचित जागरितके पदार्थोंका त्याग करे है और यह विज्ञानमय अपने कर्मोंके अनुसार पूर्व शरीरके त्यागरूप मरणकूं प्राप्त हुआ अपूर्व शरीरके साथ प्राणादिकोंके संयोगरूप जन्मकूं प्राप्त होवे है । ता विज्ञानमयके ही दो स्थान हैं। एक तौ यह दृश्यमान जन्म है दूसरा भावी जन्म है और तीसरा स्वप्नस्थानरूप संध्य है। ता संध्यरूप अवस्थामें स्थित हुआ पुरुष या जन्मके शुभाशुभकूं देखे है । तथा भावी जन्मके शुभाशुभकूं देखे है। और स्वप्नअवस्थामें अपने कर्मके अनुसार स्वप्नके देहकूं रचकरि आप ही प्रकाश करे है। 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति' अर्थ यह या स्वप्नावस्थामें यह आत्मा स्वयंज्योति ही प्रकाशक है। आदित्यादि प्रकाशक स्वप्नावस्थामें है नहीं । वागादिक उपसंहारकूं प्राप्त होइ रहे हैं और मन आप ही विषयरूप करि परिणामकूं प्राप्त होइ रहा है यातें स्वप्नअवस्थामें आत्माकूं स्वयंज्योतिरूपसे वर्णन करा है । ता स्वप्नअवस्थामें रथ नहीं हैं तथा रथके चलानेवाले अश्व नहीं हैं तथा रथके चलने योग्य मार्ग नहीं हैं । व्यावहारिक रथादिकोंके अभाव हुए भी ता स्वप्नमें अपनी अविद्याके बलसे तिन रथा-

दिकोंकूं उत्पन्न करे है। तैसे जागरितमें होनेहारे सर्व सुख तथा तडाग नदियां इत्यादि सर्व जगत् स्वप्नमें व्यावहारिक नहीं हैं। केवल अपनी अविद्याकरिके यह विज्ञानमय ता स्वप्नअवस्थामें तिन सर्वकूं उत्पन्न करे है ता स्वप्नअवस्थामें दृग्रूप यह आत्मा उत्पन्न भये मिथ्याभूत सर्व पदार्थोंकूं प्रकाश करे है। और यह आत्मा प्राणकरिके या स्थूल शरीरकी रक्षा करे है। वास्तवसे आप असंग हुआ भी जिन जिन विषयोंमें याकी कामना है तिन तिन विषयोंकूं प्राप्त होवे है। तथा ता स्वप्नअवस्थामें देवादि उत्तम देहोंकूं प्राप्त होवे है। तथा पशु पक्षी आदि नीच देहोंकूं प्राप्त होवे है। ऐसे अनंत शरीरोंकूं धारण करता हुआ तथा स्त्री आदिकोंके साथ मोदमान हुआ तथा सिंहादिकोंसे भयकूं प्राप्त हुआ यह आत्मा स्वप्नकूं अनुभव करे है। ' आराममस्य पश्यंति न तं पश्यंति कश्चन ' अर्थ हे जनक ! अज्ञानी पुरुष या आत्माकी क्रीडाके स्थान स्वप्नरूप सर्व जगत्कूं ही देखे हैं ता द्रष्टा आत्माकूं कोई देखे नहीं। जागरित स्वप्न दोनों तुल्य हैं। दोनों अवस्थामें आत्मा स्वप्रकाश है। और स्वप्नकथामें जो स्वप्रकाशता श्रुतिमें वर्णन करी है सो मुमुक्षुके बोधनवासते है जागरित अवस्थामें सूर्यादि प्रकाशोंके संकीर्ण होनेसे आत्माकी स्वयंज्योतिरूपता मुमुक्षु जनोंकूं निर्णय होवे नहीं। और सुषुप्ति अवस्थामें मन आदि सर्वके लीन होनेसे विशेष ज्ञानका अभाव है। यातें मुमुक्षु जनकूं ता सुषुप्ति अवस्थामें कोई व्यवहार प्रतीत होवे नहीं जा व्यवहारका साधक आत्मा अंगीकार करे। यातें तिन जागरित सुषुप्ति इन दोनों अवस्थावोंकूं त्यागकरि केवल स्वप्नअवस्थामें श्रुति भगवतीने आत्माकी स्वप्रकाशता निरूपण करी है। ऐसे उपदेशकूं ग्रहण करिके राजा जनक याज्ञवल्क्यकूं यह कहता

भया । हे मुने ! आपने मेरे ताईं उपदेश करा है । यातें आपके ताईं मैं एक सहस्र गौ देता हूँ । और हे भगवन् ! स्वप्न अवस्थामें आत्माकी स्वप्रकाशता तौ कही परंतु स्वप्नअवस्थामें भयशोकादि जे संसारधर्म हैं तिनसे यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिवासते आप उपदेश करो । याज्ञवल्क्य उवाच । हे राजन् ! यह विज्ञानमय आत्मा स्वप्न अवस्थामें अनेक प्रकारकी क्रीडाकूं करता हुआ सुखदुःखकूं अनुभवकरिके सुषुप्ति अवस्थाकूं प्राप्त होवे है । और स्वप्नअवस्थामें जिन पुण्य पापके फल सुखदुःखकूं अनुभव करे है । तिन सुखदुःखके सम्बन्धसे यह आत्मा रहित है । 'असंगो ह्ययं पुरुषः' अर्थ यह—जिस हेतुसे यह आत्मा असङ्ग है । इसी वासते यह आत्मा सुखदुःखादि संसारधर्मोंसे सम्बंधकूं प्राप्त होवे नहीं । हे जनक ! जैसे एक महामत्स्य नदीके पूर्व तथा परतीरमें विचरे है और तिन दोनों तीरोंसे आप असंग है तथा भिन्न है। तैसे वह आत्मा जागरित स्वप्न इन दोनों स्थानोंकूं प्राप्त होवे है । और तिन स्थानोंके संबंधसे रहित होनेसे तिन स्थानोंसे भिन्न है । और जैसे श्येनपक्षी वा गरुडपक्षी अनेक प्रकारकी चेष्टासे श्रमकूं प्राप्त हुआ अपने पक्षोंकूं संकोच करिके नीडविषे धावन करे है । तैसे यह विज्ञानमय जागरित स्वप्नमें भ्रमण करनेसे श्रमकूं प्राप्त हुआ अपने नीडरूप ब्रह्ममें आनंदप्राप्तिवासते धावन करे है । पूर्व कही हितानामा नाडियोंसे अपने स्वरूपभूत ब्रह्मानंदकूं प्राप्त हुआ नामरूपप्रपंचके ज्ञानसे रहित होवे है । जैसे अपनी प्रिया स्त्रीसे गाढ आलिंगन करनेवाला कामी पुरुष सुखकूं अनुभव करता हुआ बाह्य घटादिकोंकूं अंतरदुःखादिकोंकूं जाने नहीं । तैसे सुषुप्तिअवस्थाविषे अंतःकरणरूप उपाधिके लीन होनेसे ब्रह्मके साथ एकताकूं प्राप्त हुआ यह विज्ञानमय बाह्य अंतर

प्रपंचकूं जाने नहीं। सुषुप्तिअवस्थामें जिस ब्रह्मके साथ अभेद भावकूं यह विज्ञानमय प्राप्त होवे है सो ब्रह्म सर्वकाम पापशोकादि अनात्म धर्मोंसे रहित है और ता सुषुप्तिअवस्थामें ब्रह्म स्थूल शरीरादिकोंके संबंधसे रहित है या विज्ञानमयकूं ता ब्रह्मसे अभिन्न होनेसे ता विज्ञानमयका पिता अपिता होवे है। माता अमाता होवे है। ऐसे या स्थूल शरीरके सर्व धर्मोंसे रहित हुआ तथा पुण्य पापके फल सुख दुःखसे रहित हुआ सर्व शोकादिकोंसे रहित होवे है। और हे जनक ! सुषुप्तिअवस्थामें नाम रूप प्रपंचकूं आत्मा जाने नहीं सो आत्माने प्रपंचकूं न जानना प्रपंचके ही अभाव होनेसे है। कोई आत्माके अभावसे नहीं है। जिस हेतुसे साक्षी कूटस्थ आत्माके स्वरूपभूत जा दृष्टि है ता दृष्टिका कदाचित् नाश होवे नहीं। और ता सुषुप्तिअवस्थामें साभास अंतःकरण नहीं है चक्षु आदि करण नहीं हैं। रूपादि विषय नहीं हैं। यातें ही ता अवस्थामें नाम रूप प्रपंचकूं आत्मा जाने नहीं। ऐसे ही सुषुप्तिअवस्थामें घ्राण करि गंधकूं जाने नहीं। रसना करि रसकूं जाने नहीं। वाणी करि शब्दकूं कथन करे नहीं। श्रोत्र करि ता शब्दकूं श्रवण करे नहीं। मन करि किंचित् मनन करे नहीं। त्वग्इंद्रिय करि स्पर्श करे नहीं। बुद्धि करि किसी-के निश्चयकूं करे नहीं। पूर्व कही रीतिसे ता सुषुप्तिमें प्रमाता प्रमाण प्रमेयका अभाव होनेसे श्रोत्रादि इंद्रियों करि शब्दादिकों-का ज्ञान होवे नहीं। जागरितस्वप्नमें साभासें अंतःकरणरूप प्रमाता है। इंद्रियादिरूप प्रमाण हैं। रूपादि विषय हैं। इसी वासते जागरित स्वप्नमें भिन्न भिन्न रूपादिकोंकूं तिन नेत्रादिकों करिके देखे है ऐसे उपाधिकरि तीन अवस्थाकूं प्राप्त होनेवाला आत्मा वास्तवसे शुद्ध है। 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' अर्थ यह

हे जनक ! यह आत्मा शुद्ध जलकी न्याईं शुद्ध है यातें ता आत्मामें विजातीय भेद नहीं। एक कहनेसे सजातीय भेदका वारण करा। अद्वैत है नाम द्वितीय हस्तपादादिकोंकरिके होनेहारे स्वगतभेदसे रहित है। ऐसे विजातीय सजातीय स्वगतभेदसे रहित होनेसे यह आत्मा स्वप्रकाशद्रष्टा है तथा परम पुरुषार्थरूप है। और विज्ञानमय आत्माकी यह आत्मा ही परमगति है। ब्रह्मलोकादिकोंकी गति तौ अपरम हैं। तिन सर्व गतियोंसे यह आत्मा ही गति नाम परम गंतव्य स्थान है। और कुबेरकी संपत्की न्याईं परमसंपद्रूप है तथा स्वप्रकाशपरमानंदरूप है। 'एतस्यैवानंदस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवंति' अर्थ यह इस आनंदरूप आत्माके लेशमात्र आनंदकूं ग्रहण करिके चक्रवर्ती राजासे लेकरि हिरण्यगर्भपर्यंत सर्व भूत आनंदी होइ रहे हैं। चक्रवर्ती राजासे लेकरि हिरण्यगर्भपर्यंत शत शत गुण अधिक आनंद कह्या है। सो तैत्तिरीय उपनिषद्में हम कथन करि आये हैं। ऐसे उपदेशकूं श्रवण करिके राजा यह कहता भया। हे भगवन् ! आपने मेरे ताईं विद्याका उपदेश करा है यातें सहस्र गौवोंकूं मैं आपके ताईं देता हूं। और जिस उपदेशसे मेरा मोक्ष होवे ता उपदेशकूं आप कृपा करिके कहो। राजाके मनमें अभिप्राय यह जो वास्तवसे असंग आत्मा भी अविद्याकरि जागरितस्वप्नके भोगप्रद कर्मोंके क्षीण होनेसे सुषुप्तिमें ब्रह्मानंदकूं प्राप्त होवे है। पुनः तिन कर्मोंकरि जागरित स्वप्नकूं प्राप्त होवे है। अवस्थात्रयसे विवेक करे भी जन्ममरणरूप संसारके हेतु अविद्याकामकर्मके युक्तियोंकरि न निराकरण करनेसे या उपदेशसे भी मुक्ति होवे नहीं। यातें कर्तृत्वभोक्तृत्वादिकोंका निवर्तक मोक्षके करनेहारा अब उपदेश करो ऐसे प्रश्नकूं श्रवण करि याज्ञवल्क्यमुनि भयकूं प्राप्त

होते भये। भय प्राप्त होनेमें निमित्त यह जो मेरे हजारों शिष्य हैं परंतु या जनकराजाके सदृश कोई बुद्धिमान् नहीं है। जिस जनकने एक वरकरिके संपूर्ण मेरी विद्या ग्रहण करी है। वररूप पाशकरिके मैं निरुद्ध हुआ अब विद्याकूं कहूं। ऐसे मनमें विचार करि अविद्याकरि प्राप्त होनेहारे संसारकूं प्रथम याज्ञवल्क्यमुनि वर्णन करते भये। हे जनक ! जैसे स्वप्नके भोगप्रद कर्मके क्षीण होनेसे यह जीव जागरितकूं प्राप्त होवे है। तैसे शरीरके निमित्तभूत प्रारब्ध कर्मके क्षीण होनेसे अन्य शरीरकूं जीव प्राप्त होवे है। पूर्व शरीरके त्यागमें दृष्टांतकूं श्रवण करो। जैसे किसी धनीका कोई शकट अनेक पदार्थोंकरि परिपूर्ण होवे। जब सो धनी किसी नगरमें शकटसहित गमन करे है तब सो शकट अनेक पदार्थोंकरि पूर्ण होनेसे मार्गविषे शब्दोंकूं करता हुआ मंद मंद गमन करे है। ऐसे जीवरूपी धनीका पुण्यपापरूपी पदार्थोंसे पूर्ण हुआ सूक्ष्म शरीररूपी शकट या स्थूलदेहके त्यागकालमें नाना प्रकारके शब्दोंकूं करता हुआ परलोकविषे गमन करे है। मरणकालमें प्रिय पुत्र स्त्री आदिकोंके वियोगसे यह कहे है। हा पुत्र हा जाये नवयौवने हा धन! जो मेरेकूं बहुत क्लेशोंसे प्राप्त भया था हा मित्र हा बंधुजन! धिक्कार है मैं पापीकूं जो इनकूं त्याग-करि अत्यंत दूर मार्गविषे एकला ही मैं चला हूं। और मैंने बाल-कोंकूं बहुत ताडन करा है। तथा देवतावोंके मस्तकमें अपने पादोंका स्थापन करा है और जिस माताने मेरेकूं बहुत दुःखोंसे उत्पन्न करा तथा मेरा मल मूत्र अपने हस्तोंसे जा माताने उठाया तथा बहुत यत्नोंसे मेरा पालन करा ता माताका मैंने पालन न करा। उलटा ता माताकूं मैंने दुःख दिया तथा ता माताकूं दुःसह कठोर वचन कहे। जा माताका उपकार किसी प्रकारसे दूर नहीं

होइ सकता ता माताके हितवचन मैंने अंगीकार न करे। केवल अपनी स्त्रीके तथा अपने शरीरके पालन पोषणमें ही आसक्त रहा। धिक्कार है मेरेकूं जिस मैंने ऐसे उपकार करनेवाली माताका तिरस्कार करा। और पिता तथा वेदवेत्ता ब्राह्मण तथा संतजन तथा सुहृज्जन इत्यादिकोंकूं मैंने कठोर वचन कहे। और अभक्ष्य मांसादि मैंने भक्षण करे। और अपेय मदिरादि मैंने पान करे। और लोकवेदविरुद्ध ही सर्व कर्म करे। यौवन अवस्थामें प्रिय युवतीका ही चिंतन करा। जैसे उत्तम पुरुष अपने कल्याणवासते शिव विष्णु आदि देवतावोंका सर्वदा चिंतन करे हैं। तैसे यौवन-अवस्थाविषे अपनी तथा परकी स्त्रियोंका ही मैंने चिंतन करा। तिन स्त्रियोंकी कूकर सूकर योनियोंमें भी प्राप्ति होती रही। तिन क्लेश करनेहारे विषयोंका ही ध्यान करा। और अपने कल्याण-वासते तिन शिव विष्णु आदिकोंका ध्यान करा नहीं। हा महान् शोक है! यह दुर्लभ मनुष्यदेह व्यर्थ ही खोइ दिया। और दुष्पूर लोभके नित्य वृद्ध होनेसे साधुवोंके तथा ब्राह्मणोंके गृह क्षेत्र धनादिक मैंने हर लिये। ऐसे यौवनअवस्थामें संपूर्ण दिन लोभकरिके मैंने व्यतीत करे और सर्व रात्रि स्त्रियोंसे क्रीडा करते ही व्यतीत करी। और जे ब्रह्महत्यादि घोर पाप मैंने करे हैं ते पाप मेरेकूं अब महान् दुःख देवेंगे। जब मैं वृद्ध अवस्थाकूं प्राप्त भया तब काम क्रोध लोभादि अत्यंत अधिक होइ गये। तिन काम क्रोध लोभादिकोंकरि मैंने असमर्थ होनेसे अत्यंतदुःखकूं ही अनुभव करा है और या वृद्धअवस्थामें पुत्र स्त्री आदिकोंकरिके महान् तिर-स्कारकूं मैंने सहनकरा है। और शरीर तौ मेरा सर्वथा जीर्ण होइ गया परंतु काम क्रोध लोभादि वैरी जीर्ण न भये। जैसे काष्ठोंकरि अग्नि दिन दिनविषे प्रज्वलित होवे है तैसे दिनदिनविषे या वृद्धअवस्थामें

मेरे काम क्रोधादि वृद्धिकूं प्राप्त होते भये। अब मृत्यु भी मेरे मारने वासते समीप आया है। हा कष्ट है मेरेकूं कोई काटता है। जैसे हिंसक पुरुष पशुकी हिंसा करे है। तैसे मेरे अंगोंकूं कोई काटता है। जैसे बहुत सूचियों करिके कोई पुरुष किसीके शरीरका भेदन करे तैसे मेरे अंगोंकूं कोई भेदन कर रहा है। मेरेकूं दीखता नहीं। और मेरे हस्तपाद काष्ठके सदृश जड होते जावे हैं। जैसे दुर्दांत पशु अपने वश होवे नहीं तैसे नेत्र श्रोत्र मन आदि मेरे अधीन रहे नहीं। नेत्रोंसे मेरेकूं कुछ दीखता नहीं। श्रोत्रोंसे श्रवण होवे नहीं। ऐसे और सर्व इंद्रियोंके व्यापार होवे नहीं। जाठर अग्नि पवनसहित हुआ मेरे शरीरका दाह करि रहा है। जैसे कोई कोटि वृश्चिक किसी पुरुषकूं वारंवार काटें तिनके काटनेसे जितनी ता पुरुषकूं पीडा होवे है तैसे ही अब मरणकालमें मेरेकूं पीडा होइ रही है। हे जनक! ऐसे अनेक प्रकारके शब्दोंकूं उच्चारण करता हुआ या स्थूल देहका त्याग करे हैं। जैसे सुषुप्ति अवस्थामें यह जीव विशेष ज्ञानसे रहित हुआ ब्रह्मानन्दकूं प्राप्त होवे है तैसे मरणकालमें विशेष ज्ञानसे रहित हुआ यह जीव दीर्घ ऊर्ध्व श्वास लेता हुआ कारणोपाधिक ईश्वरसे अभिन्न होवे है। जब जराअवस्थासे तथा ज्वरादिक व्याधियोंसे अत्यन्त कृशताकूं यह देह प्राप्त होवे है तब या देहका त्याग करे है। जैसे आम्रादिक फल पक्व हुए पृथिवीपर अवश्य गिरे हैं। तैसे शरीरके हेतु प्रारब्ध कर्मके क्षीण होनेसे जीव आत्मा या देहका त्याग करे है। या देहकूं त्यागकरि पापोंकी अधिकता होनेसे अनेक प्रकारके नरकोंमें पीडाकूं अनुभव करे है। जबी पूर्वदेहके उत्पादक वासना तथा कर्मके तुल्य ही वासना तथा कर्म होवे तब पूर्व देहके सदृश ही दूसरे देहकूं प्राप्त होवे है। विना ब्रह्म-

बोधसे या सूक्ष्म शरीरका विनाश होवे नहीं। हे जनक! जैसे राजाके किंकरादि किसी देशांतरसे आनेवाले अपने राजाकी प्रतीक्षा करे हैं। तैसे जीव जब पूर्व स्थूल देहका त्याग करे हैं तब दूसरे स्थूल शरीरके जनक जे भूत हैं ते भूत दूसरे शरीरमें या जीवकी प्रतीक्षा करे हैं। हे राजन्! जब यह जीव अन्य लोकमें गमन करे है तामें दृष्टांतकूं श्रवण करो। जैसे राजाके किसी देशके गमनसमयमें ता राजाके भृत्यादिक संपूर्ण साथ ही गमन करे हैं। तैसे जब मरणकालमें यह जीव ऊर्ध्व श्वासोंकूं लेता है तब वागादिइंद्रियां मुख्यप्राणसहित या जीवके साथ ही गमन करे हैं। तब यह शरीर श्मशानभूमिके योग्य होवे है इति। पूर्वज्योति ब्राह्मणमें प्रथम आत्माके स्वप्रकाशरूपकूं कथन करिके अन्तमें आविद्यक संसारका वर्णन करा। संसारके निरूपण वासते तथा संसारकी निवृत्तिके निरूपणवासते यह शारीरक नाम ब्राह्मण है जब यह शरीर अति निर्बलताकूं प्राप्त होवे है तब यह जीव अपने पुत्रादिकोंकूं जाने नहीं तथा वागादिक इंद्रियोंकूं ग्रहण करिके हृदयमें स्थित ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। ता ब्रह्ममें एकताकूं प्राप्त हुआ नेत्रादिक इंद्रियोंसे दर्शनादि करे नहीं। जबी मरणकालमें पृथिवीपर शयन करे है तब पासमें स्थित पुरुष यह कहे हैं। जो अब यह नहीं देखता तथा नहीं श्रवण करता नहीं मनन करता। जब सर्व इंद्रियोंकूं उपसंहारकरि हृदयमें स्थित होवे है तब हृदयका नाडीरूप अग्रभाग चैतन्यके आभासकरिके प्रकाशित होवे है। ता प्रकाशित नाडीरूप मार्गकरि नेत्र श्रोत्र मुख नासिकादि द्वारसे प्राणोंसहित बाह्य गमन करे है। गुदासे नारकी पुरुष बाह्य गमन करे है। लिंग इंद्रियसे कामीका निकसना होवे है। अन्नरसमें आसक्त पुरुष मुखसे निकसे है। गंधमें आसक्त पुरुष

नासिकासे निकसे है। गायनके जाननेवाला श्रोत्रसे निकसकरि गंधर्वलोककूं प्राप्त होवे है। नेत्रसे निकसकरि सूर्यकूं वा चन्द्रकूं वा अग्निकूं प्राप्त होवे है। मस्तकसे निकसनेवाला ब्रह्मलोककूं प्राप्त होवे है। ऐसे नेत्रश्रोत्रादि मार्गोंके ज्ञानवाला हुआ पुनः भावी शरीरके ज्ञानवाला होवे है। पूर्व जन्मकी विहित निषिद्ध उपासना तथा विहित निषिद्ध कर्म तथा पूर्व जन्मके संस्कार यह तीनों इस जीवके साथ गमन करे हैं। और यह जीव स्थूल शरीर विना स्थित होवे नहीं। जैसे तृणजलोका नामक जीव उत्तर दूसरे तृणकूं ग्रहण करिके ही पूर्व तृणका त्याग करे है। तैसे यह जीव भी उत्तर देहकूं ग्रहण करिके ही पूर्व देहका त्याग करे है। और ता आत्मामें गमन आगमनादिक सर्व बुद्धिके संबंध करिके आरोपित हैं। वास्तवसे आत्मामें गमनागमनादि नहीं हैं। जैसे स्वर्णकार स्वर्णकूं ग्रहण करिके पूर्व रचनासे नवीन कुंडलादिरूप रचनाकूं करे है तैसे आत्मा अविद्यारूपी स्वर्णसे नवीन ही देहकू उत्पन्न करे है। पूर्व शुभकर्मोंसे उत्तम पितृलोकमें तथा गंधर्वलोकमें वा विराट्लोकमें वा हिरण्यगर्भ लोकमें देहकूं प्राप्त होवे है। मिश्रित कर्मोंसे मनुष्यादि देहोंकूं प्राप्त होवे है। अधम कर्मोंसे श्वान शूकरादिदेहोंकूं प्राप्त होवे हैं। यह बंध केवल उपाधि करिके ही कल्पित है वास्तव नहीं। या अर्थके कहनेवासते तिन उपाधियोंका निरूपण करे हैं। हे जनक! यह ब्रह्म ही बुद्धिके साथ अध्यास करनेसे विज्ञानमय कहिये है। मनके साथ अध्यास करनेसे मनोमय कहिये है। ऐसे प्राणमय चक्षुमय श्रोत्रमय कहिये है। पृथिवीके शरीरके साथ अध्यास करनेसे पृथिवीमय कहिये है। ऐसे ही आपोमय वायुमय आकाशमय तेजोमय तिनि तिनि भूतोंके देहोंके साथ

अध्यास करनेसे वायुमय इत्यादि रूप जानने और पशु प्रेतादिकोंके शरीर अतेजोमय हैं। आत्मा भी तिन शरीरोंके साथ मिलकरि अतेजोमय कहिये है। कार्यशरीरोंके साथ मिलकरि अनेक वृत्तियोंके भेदकरि आत्मा काममय अकाममय क्रोधमय अक्रोधमय धर्ममय अधर्ममय सर्वमय इत्यादिरूपवाला होवे है। प्रत्यक्ष घटादिरूप आत्मा ही होवे है यातें आत्माकूं इदंमय यह कह्या है। परोक्ष पदार्थरूप भी आत्मा ही होवे है यातें आत्माकूं अदोमय कह्या है। देह इंद्रियादिकोंके साथ मिलकरि आत्मा जैसे कर्म करे है तैसे ही देहकूं प्राप्त होवे है और या संसारका असाधारण कारण तौ काम है जैसा पुरुषके काम होवे है तैसा ही ता पुरुषका निश्चय होवे है। ता निश्चयके अनुसार ही पुरुष कर्म करे है। जैसे कर्म करे है तिन कर्मोंके अनुसार तैसे ही फलकूं प्राप्त होवे है। जिस पदार्थमें इस पुरुषका दृढ आसक्त मन है कर्मोंसहित तिस पदार्थकूं ही प्राप्त होवे है। या मनुष्यदेहमें जे कर्म करे हैं तिन कर्मोंके फलकूं परलोकादिकोंमें भोगकरि या पृथिवीलोकमें पुनः प्राप्त होवे है। पुनः पृथिवीमें करे कर्मके फलकूं भोगकरि या पृथिवीमंडलमें पुनः प्राप्त होवे है। ऐसे कामनावाला पुरुष या संसारमें घटीयंत्रकी न्याई प्राप्त होवे है यातें मुमुक्षुजनोंकूं कामनासे रहित होना चाहिये। और हे जनक! जो पुरुष आत्माविषे ही कामनावाला है सोई पुरुष आप्तकाम है यातें ही ता पुरुषकी अंतरबाह्य सर्वकामना निवृत्त भयी हैं। "न तस्य प्राणा उत्क्रामंति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" अर्थ यह निवृत्तकाम तिस जीवन्मुक्तके शरीरसे बाह्य प्राण निकसे नहीं ब्रह्मविषे ही लीन होवे हैं और सो ज्ञानी पूर्व ब्रह्मरूप हुआ ही ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। कामना ही प्रतिबंध था कामनाके निवृत्त

होनेसे शरीरकालमें ही ब्रह्मकूं प्राप्त होवे है। जैसे सर्प अपनी त्वचाकूं अपना स्वरूप न जानता हुआ ता त्वचाका त्याग करे है तैसे जीवन्मुक्त पुरुष स्थूल सूक्ष्म शरीरमें आत्मत्वबुद्धिकूं त्यागकरि अशरीर साक्षी अमृत ब्रह्म विज्ञानघनरूपसे स्थित होवे है। ऐसे जनक उपदेशकूं ग्रहण करिके यह कहता भया। हे भगवन्! आपके ताईं मैं सहस्र गौ दक्षिणा देता हूं। राजाने तत्त्वज्ञान तौ श्रवण करा परंतु ता तत्त्वज्ञानके कारण साधनोंके जाननेकी इच्छावाला हुआ पूर्वकी न्याईं प्रश्न करता भया। जनक उवाच। हे भगवन्! आप ज्ञानके साधनोंकूं भी कथन करो। तब याज्ञवल्क्यमुनि आत्मज्ञानके साधनोंकूं मंत्रोंसे कथन करते भये। तिन मंत्रोंके अर्थ ईशावास्य कठ इत्यादि उपनिषदों-में हम कथन करि आये हैं। जिन मंत्रोंके अर्थ नहीं कहे तिन मंत्रोंके संक्षेपसे अर्थ कहे हैं। हे जनक! यह ज्ञानरूप मोक्षका मार्ग सूक्ष्म है तथा संसारसमुद्रके पार करनेहारा है तथा वैदिक होनेसे यह ज्ञानमार्ग पुराण है और या ज्ञानमार्गकरिके ब्रह्मचर्यादि साधनयुक्त हुए विद्वान् या देहकूं त्यागकरि मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं। हे जनक! यह ज्ञानमार्ग मेरेकूं प्राप्त भया है। ऐसे ज्ञानमार्गकी स्तुतिवासते इतर नाडी आदि मार्गोंकी निंदा कथन करी है। पुनः ज्ञानमार्गविषे स्थित पुरुषके क्लेशोंकी निवृत्तिकूं यह मंत्र कथन करे है। "आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्।" अर्थ यह या नित्य अपरोक्ष पूर्ण आत्माकूं हृदयमें स्थित क्षुधातृषादि धर्मोंसे रहित जबी अधिकारी जाने तब आत्मासे भिन्न किस फलकी इच्छा करता हुआ किस भोक्ताके वासते तथा किस फलकी प्राप्तिवासते शरीरोंके दुःखी होते आप दुःखी होवे। तात्पर्य—यह विवेकी पुरुष प्रारब्धा-

नुसार शरीरोंके दुःखी होते भी आपकूं असंग निर्विकार मानता हुआ तपायमान होवे नहीं। या श्रुतिके व्याख्यान करते श्रीविद्यारण्यस्वामीने पंचदशीनामक ग्रंथमें चिदाभासकी सप्त अवस्था कथन करी हैं। अज्ञान आवरण विक्षेप परोक्षज्ञान अपरोक्षज्ञान शोकापगम निरंकुशतृप्ति यह सप्त अवस्था हैं। जैसे सरलमतिवाले दशपुरुष नदीसे पार उतरकरि दशम पुरुषकूं नदीमें बहगया मानते भये ता दशमकूं न जानना यह ही आज्ञान है। दशम नहीं है। और दशम भान नहीं होता इन दोनों व्यवहारोंका कारण असत्त्वापादक तथा अभानापादक दो प्रकारका यह आवरण है। दशमके शोकसे रोना पीटनारूप विक्षेप है। कृपालु पुरुषके कहनेसे दशम कहीं जीवता है, यह ज्ञान परोक्षज्ञान है। दशम तूं है यह वचन श्रवण करते दशम मैं हूं यह ज्ञान अपरोक्ष ज्ञान है। दशमके लाभ होनेसे शोककी निवृत्तिका नाम शोकापगम है। दशमके लाभ होनेसे ही पश्चात् होनेहारे परम आनंदका नाम निरंकुश तृप्ति है। तैसे यह चिदाभासरूप जीव विषयोंमें आसक्त हुआ अपने स्वरूपकूं जाने नहीं अपने स्वरूपकूं न जानना यह अज्ञानरूप प्रथम अवस्था है। और प्रसंगसे यह कहे है कूटस्थ नहीं है और कूटस्थ नहीं भान होता यह द्विविध आवरण है। कर्त्ता भोक्ता सुखी दुःखी कामी क्रोधी क्षुधा तृषावाला बली निर्बल इत्यादि रूप विक्षेप है। गुरुके उपदेशसे प्रथम कूटस्थ है ऐसा ज्ञान होना परोक्षज्ञान है। विचार करनेसे पश्चात् मैं ही कूटस्थ हूं ऐसे अपरोक्ष ज्ञानकूं प्राप्त होवे है। ता अपरोक्ष ज्ञानकूं प्राप्त हुआ कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूप शोककूं निवृत्त करे है। और करने योग्य मैंने करि लिया, प्राप्त होने योग्यकूं मैं प्राप्त भया, ऐसी निरंकुश तृप्तिकूं प्राप्त होवे है। ऐसे सप्त अवस्था प्रसंगसे

दिखलाई हैं। और हे जनक! यह आत्मा अनेक अनर्थयुक्त देहमें आविष्ट हुआ भी स्वयंज्योतिरूप है तथा सर्व अनात्म धर्मोंसे रहित है। यह आत्मा ही सर्व प्रपंचका कर्त्ता है या आत्माका जाननेवाला ब्राह्मण भी सर्व प्रपंचका कर्त्ता होवे है। तथा ता ब्राह्मणका ही सर्व प्रपंच आत्मा है सो प्रपंच ता ब्राह्मणसे भिन्न नहीं। ऐसे यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपकूं निश्चय करो। या भारतखंडमें मानुष्यदेहकूं प्राप्त होइकारि मनुष्यदेहमें भी शूद्रादिक अनधिकारी देहसे भिन्न उत्तम देहकूं प्राप्त होइकरि तथा रोगादि उपद्रवोंके न होते भी जब हम अपने स्वरूपकूं न जानें तब हम अनंतवार जन्ममरणादिरूप अत्यंत हानिकूं प्राप्त होवेंगे। यातें ऐसे दुर्लभ मानुष्यदेहकूं प्राप्त होइकारि क्षणिक विषयसुखकूं त्यागकरि जे पुरुष आत्माके यथार्थरूपकूं जानते हैं ते पुरुष मोक्षकूं प्राप्त होवे हैं और आत्माके यथार्थरूपकूं न जाननेवाले पुरुषोंके वासते चौरासी लक्ष योनि वर्त्तमान हैं तिन योनियोंविषे ते अज्ञानी पुरुष विषयरसास्वादी महान् दुःखकूं अनुभव करे हैं। हे जनक! सूर्यादिज्योतियोंका ज्योति सर्वका अधिष्ठान आकाशकी न्याई व्यापक तथा अजन्मा नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव या आत्माकूं गुरुशास्त्रके उपदेशसे जानकरि आत्माकारवृत्तिकूं ही मुमुक्षु पुरुष करे। और अनात्मवार्त्ताके कहनेसे कंठ शुष्क होवे है और मनकूं विक्षेप होवे है ऐसे आत्माकूं जाननेवाले विद्वान्‌की पापकर्मोंसे किंचित् हानि नहीं पुण्यकर्मोंसे किंचित् वृद्धि नहीं। अभिप्राय यह जो विद्वान् सर्व प्रपंचकूं मिथ्या जाननेवाला तथा परमानंदस्वरूप अपनेकूं मानता हुआ पापोंविषे कर्तृत्वबुद्धिके अभावसे प्रवृत्त होवे नहीं और जे पिपीलिकामर्दनादि अज्ञात पाप हैं तिनसे लिपायमान होवे नहीं। पूर्वजन्मके संचित

पुण्यपापोंके ज्ञानरूप अग्निकरि भस्मीभाव होवे है। कमलपत्रमें जलकी न्याई आगामी कर्म लिपायमान होवें नहीं प्रारब्धके भोगकरि नाश होवे है। ऐसे सर्वबंधरहित हुआ विद्वान् मोक्षकूं प्राप्त होवे है। हे जनक! ऐसे आत्मज्ञानकी प्राप्तिवासते ही वेदका पठन यज्ञ दान तप इत्यादि साधन हैं। और या आत्माके जाननेकी इच्छा करते हुए अधिकारी जन विधिपूर्वक विविदिषासंन्यासकूं धारण करे हैं। और या आत्माकूं जानकरि भी जीवन्मुक्तिके सुखकी प्राप्ति वासते पुत्र वित्त लोक इन तीनोंकी एषणाकूं त्यागकरि विद्वत्संन्यासकूं विधिपूर्वक ग्रहण करे हैं। और हे जनक! साधनोंके विना जिस वासते आत्माकी प्राप्ति होवे नहीं इसी वासते बाह्य इंद्रियोंके निरोधरूप दमसहित होवे। तथा शांत मन हुआ संन्यास आश्रमकूं ग्रहण करे। तथा श्रद्धा तथा शीतोष्णादि द्वंद्वोंका सहन रूप तितिक्षा तथा चित्तकी सावधानता इन साधनोंसहित हुआ अपने अंतःकरणमें अपने स्वरूपकूं प्रत्यक्ष करे। ता आत्माकूं प्रत्यक्ष करनेसे सर्व पुण्य पापादिकोंकूं दूर करि निःसंदेह हुआ ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवे है। हे जनक! ऐसे अभय ब्रह्मकूं तूं प्राप्त भया है। जनक उवाच। हे भगवन्! आपकी कृपाकरि मैं अभय ब्रह्मकूं प्राप्त भया हूं। यातें मेरे विदेहनाम देशोंकूं आप ग्रहण करो और मेरा शरीर भी आपकी सेवामें लगे मेरेकूं अपना सेवक जानकरि ग्रहण करो। इति पूव युक्तियोंसे आत्माका निवारण करा। पुनः आगम प्रधानतासे आत्माके निरूपणके वासते तथा संन्यासकूं ब्रह्मविद्याकी अंगताके निरूपण वासते मैत्रेयी ब्राह्मण है। या उपनिषद्‌के चतुर्थाध्यायमें तथा षष्ठाध्यायमें पठन करे मैत्रेयी ब्राह्मणका अर्थ कहे हैं। ऐसे सूर्यके शिष्य याज्ञवल्क्यमुनि जनकादिक राजा-

वोंकूं तथा अनेक ब्राह्मणोंकूं वेदविद्याका उपदेश करते भये। वृद्धावस्थाकूं प्राप्त हुए याज्ञवल्क्य विषयोंमें अनेक दोषोंकूं देखकरि परम वैराग्यकूं प्राप्त हुए संन्यासाश्रमके ग्रहणका संकल्प करते भये। ता याज्ञवल्क्यमुनिकी दो भार्या होती भयीं। एकका नाम कात्यायनी था दूसरीका नाम मैत्रेयी था। कात्यायनी तौ गृहकार्योंमें बहुत निपुणमति होती भयी। और दूसरी ज्येष्ठा भार्या मैत्रेयी परम वैराग्यकूं प्राप्त होती भयी। और संसारकूं दुःखरूप जानकरि उत्कट मोक्षकी इच्छाकूं करती भयी। याज्ञवल्क्यमुनि संन्यासके ग्रहणकालमें अपनी ज्येष्ठा भार्या मैत्रेयीकूं बुलायकरि यह कहते भये। हे मैत्रेयी! तेरेकूं तथा कात्यायनीकूं भिन्नभिन्न धन देकरि मैं तुमारा विभाग करा चाहता हूँ। और मेरा संन्यास लेनेका संकल्प है। ऐसे वचनकूं श्रवण करि अब मैत्रेयी कहे है। 'सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्याम्' अथ यह हे भगवन्! यह धन करि पूर्ण सर्व पृथवी जबी मेरेकूं प्राप्त होवे तब ता धनकरि तथा धनकरि होनेहारे अग्निहोत्रादि कर्मोंकरि क्या मैं मुक्त होऊंगी? याज्ञवल्क्य उवाच। हे मैत्रेयी! धन करिके या लोकमें अनेक भोग प्राप्त होवे हैं। धनके प्राप्त होनेसे भोजन आच्छादनादिकों करिके तेरा जीवना ही होवेगा। 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन' अर्थ यह-हे मैत्रेयी! मोक्षकी तौ ता धनकरिके आशा भी करना नहीं। मैत्रेयी कहे है। हे भगवन्! जिस धनकरि मेरा मोक्ष नहीं होना ता धनकूं मैं क्या करूंगी जो आप मोक्षका साधन जानते हैं ता साधनकूं ही मेरे ताईं कृपा करि कथन करो। याज्ञवल्क्य उवाच। हे मैत्रेयी! तू मेरेकूं प्रथम भी प्रियरूपसे ज्ञात थी अब भी मेरे अनुकूल ही कथन करती है। अब मैं तेरे ताईं मोक्षके साधन आत्मज्ञानकूं कथन करता हूँ तू

सावधान होइकरि श्रवण कर । प्रथम याज्ञवल्क्यमुनि आत्मज्ञानके साधन वैराग्यकी उत्पत्ति वासते कथन करे हैं । 'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' अर्थ यह अरे मैत्रेयी ! वै नाम यह वार्त्ता संसारविषे प्रसिद्ध है । भार्याकूं पतिके प्रयोजन वासते पति प्रिय नहीं है । किन्तु अपने प्रयोजन वासते ही भार्याकूं पति प्रिय है । ऐसे पतिकूं जायाके प्रयोजनवासते जाया प्रिय नहीं है किंतु अपने प्रयोजन वासते पतिकूं जाया प्रिय है । हे मैत्रेयी ! पुत्र धन ब्राह्मण जाति क्षत्रिय जाति भूरादिलोक देवता भूत इत्यादि सर्व जगत् अपने प्रयोजन वासते ही प्रिय हैं । पुत्रादिकोंके प्रयोजन वासते पुत्रादिक प्रिय नहीं । यातें और सर्व जगत्में गौणी प्रीति है आत्मामें मुख्य प्रीति है । 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः' अर्थ यह हे मैत्रेयी ! परमप्रीतिका विषय जो आत्मा है सो आत्मा साक्षात्कर्त्तव्य है । ता आत्माके साक्षात्कारवासते शास्त्र आचार्यसे श्रवण कर्त्तव्य है । तथा भेदबाधक युक्तियोंसे मनन कर्त्तव्य है । तथा वारंवार ध्यान कर्त्तव्य है । हे मैत्रेयी ! आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासनपूर्वक प्रत्यक्ष करनेसे सर्व प्रपंचका ज्ञान होवे है और हे मैत्रेयी ! भेदरहित या आत्मासे जो कोई पुरुष ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रियजातिकूं भिन्न जानता है ता भेदद्रष्टाका सो ब्राह्मणजाति तथा क्षत्रियजाति तिरस्कार करे हैं । नीच जातिकूं प्राप्त होइकरि तिन ब्राह्मणादि उत्तम जातियोंकी प्राप्ति न होनी यह ही तिन जातियोंका तिरस्कार है । ऐसे स्वर्गादि लोक तथा देवता तथा भूतादि सर्व जगत् ता भेदद्रष्टाका तिरस्कार करे हैं । यातें अभिन्न आत्मामें भेद देखना नहीं । ब्राह्मण क्षत्रिय लोक देवादि सर्व जगद्रूपसे यह आत्मा ही

प्रतीत होवे है। हे मैत्रेयी ! जैसे दुंदुभी शंख वीणा इनसे उत्पन्न भये जे अनेक प्रकारके विशेष शब्द हैं तिन सर्व शब्दोंमें रहनेहारे शब्दत्वरूप सामान्यके ग्रहण विना तिन दुंदुभी आदिकोंसे उत्पन्न भये विशेष शब्दोंका ज्ञान होवे नहीं। किंतु शब्दत्वरूप सामान्यके ग्रहण होनेसे ही तिन विशेष शब्दोंका ज्ञान होवे है। तैसे अस्ति भाति प्रियरूपसे व्यापक जो आत्मा है ता आत्माके भान विना किसी पदार्थकी प्रतीति होवे नहीं। ऐसे यह सर्व जगत् ब्रह्ममें स्थित है यामें दुंदुभी आदिक दृष्टांत कहे हैं। उत्पत्तिमें अग्निका दृष्टांत है। जैसे प्रज्वलित अग्निसे धूम विस्फुलिंगादि उत्पन्न होवे हैं। तैसे या विभु आत्मासे पुरुषके श्वासकी न्याईं चारि वेद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् मंत्र सूत्र विवरणवाक्यादि सर्व जगत् उत्पन्न होवे है। अब प्रलयकालमें प्रपंचकी ब्रह्ममें अभिन्नता विषे दृष्टांत कहे हैं। हे मैत्रेयी ! जैसे सर्व नदियोंके जलोंका समुद्र आश्रय होवे है। तैसे सर्व स्पर्शोंका त्वक् आश्रय है। रसोंका जिह्वा आश्रय है। गंधोंका नासिका आश्रय है। रूपोंका चक्षु तथा शब्दोंका श्रोत्र आश्रय है। सर्व संकल्पोंका मन आश्रय है। ऐसे सर्व विषयोंके इंद्रियोंकूं आश्रयता जाननी। पूर्व कहे दृष्टिसृष्टिवादके अभिप्रायसे शब्दादि विषयोंका श्रोत्रादि इंद्रिय कारण हैं। यातें शब्दादि विषय अपने कारण श्रोत्रादिकोंमें लीन होवे हैं। श्रोत्रादि इंद्रिय अपने कारण आकाशादि भूतोंविषे लीन होवे हैं। सर्व भूत मायाशबल ब्रह्मविषे लीन होवे हैं। अब आत्यंतिक प्रलयमें दृष्टांत कहे हैं। जैसे लवणका खंड जलमें गेरा हुआ जलभावकूं ही प्राप्त होवे है। ता विलीन लवण खंडकूं पुनः कोई पुरुष निकास सके नहीं। तैसे हे मैत्रेयी ! त्रिविधपरिच्छेदशून्य जो यह विज्ञानघन आत्मा है। भूतोंकरि

शरीरके उत्पन्न होनेसे यह आत्मा भी प्रतिबिंबरूपसे उत्पन्न होवे है। ब्रह्मवेत्ताके शरीराकारभूतोंके नाश होनेसे अमुक देवदत्त नामा मैं हूं अमुकका पुत्र हूं मेरा यह क्षेत्र है मेरा यह धन है इत्यादि सर्व विशेष ज्ञान नष्ट होवे है। अब मैत्रेयी प्रश्न करे है। हे भगवन्! आपने मेरे ताईं मोहके उत्पन्न करनेहारा वचन कह्या है। पूर्व आपने आत्मा विज्ञानघन ऐसे कह्या था अब यह कहते हो जो मृत्युकूं प्राप्त हुआ ज्ञानसे रहित होवे है। यातें पूर्व उत्तर विरोध होनेसे मेरेकूं मोह उत्पन्न होवे है। याज्ञवल्क्य उवाच। हे मैत्रेयी! या शरीरका ही नाश होवे है। अविनाशी आत्माका नाश होवे नहीं और शरीरके विनाश होनेसे मन आदिकोंसे होनेहारे विशेष ज्ञानका अभाव कह्या है। विज्ञानघन स्वप्रकाश नित्य आत्माका कदाचित् नाश होवे नहीं। और अज्ञानकालमें ही अज्ञानी आपकूं भिन्न मानता हुआ स्वभिन्न गंधकूं ग्रहण करे है। तथा रूपकूं देखे है। शब्दकूं श्रवण करे है तथा वाणीकरि शब्दका उच्चारण करे है। इतरकूं मनन करे है। इतरकूं ही निश्चय करे है। 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्।' अर्थ यह जा ज्ञानकालमें इस विद्वान्के सर्व नामरूपप्रपञ्च आत्मरूपताकूं ही प्राप्त भया है। ता ज्ञानकालमें किस इंद्रियकरि रूपकूं देखे तथा किससे गंधकूं ग्रहण करे। तथा किसका कथन, किसका मनन, किसका निश्चय करे। विदेह कैवल्यावस्थामें इंद्रियादिकोंके अभाव होनेसे किसी पदार्थका भी दर्शन श्रवण मननादि होवे नहीं। और हे मैत्रेयी जा आत्माकरि नामरूप प्रपंचकूं यह पुरुष जाने है ता आत्माकूं किस साधनकरि जाने। सर्वके विज्ञाता आत्माकूं कोई श्रोत्रादि विषय करि सके नहीं। ऐसे याज्ञवल्क्यमुनि मैत्रेयीकूं उपदेश

करिके संन्यासाश्रमकूं ग्रहण करते भये। और प्रारब्धकूं भोगकरि, क्षय करते हुए मोक्षकूं प्राप्त होते भये। इति बृहदारण्यके षष्ठोऽध्यायः। ॐ नमोऽस्तु ते पूर्णात्मने। पूर्व अध्यायमें निरुपाधिक ब्रह्मका निरूपण करा अब उपाधिविशिष्ट आत्माकी उपासनावोंके निर्णयवासते उत्तरके दो अध्याय हैं। सर्व उपासनावोंके अंगभूत ॐकार दम दान दया इन साधनोंके विधान करनेकी इच्छावाली हुई श्रुति जो उपासनाका विषय ब्रह्म है सो वास्तवसे शुद्ध है या अभिप्रायसे शुद्धब्रह्मके रूपकूं मंत्रसे वर्णन करे हैं। 'ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' अर्थ यह प्रथम तत्पदके लक्ष्यकूं पूर्ण कहे हैं अदः नाम परोक्ष जो तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म है सो ब्रह्म पूर्ण है। अब त्वंपदके लक्ष्यकूं पूर्ण कहे हैं। इदं नाम यह जो नामरूप उपाधिविशिष्ट व्यवहारका विषय भया है। सो भी निरुपाधिकरूप करिके ही पूर्ण है, विशिष्टरूप करिके पूर्ण नहीं। ऐसे दोनों लक्ष्य अंशोंकूं कथन करिके अब दोनों वाच्य अंशोंका निरूपण करे हैं। पूर्णस्य पूर्णमादाय नाम पूर्ण जो कार्यात्मा ब्रह्म ताकी एकरसतारूप पूर्णताकूं ग्रहण करिके पूर्ण ही शेष रहे है। तात्पर्य यह जो आविद्यकउपाधिकृत धर्मोंके त्याग करनेसे स्वभावसे शुद्ध परिपूर्ण ब्रह्म शेष रहे है। पश्चात् ॐकारका ध्यान कह्या है। प्रधान ॐकारकी उपासना कथन करिके दम दान दया इन तीन साधनोंका विधान करे है। प्रजापतिके संतानरूप देवता मनुष्य और असुर यह तीनों प्रजापतिके समीप ब्रह्मचर्यकूं करते भये। प्रथम देवता प्रजापतिकूं यह कहते भये। हे भगवन् प्रजापते! आप कृपा करि हमारे ताईं उपदेश करो। प्रजापति दकार अक्षरका उपदेशकरिके पूछते भये। हे देवाः! तुम जान लिया वा नहीं। देवा ऊचुः। हे भगवन्!

जान लिया। आपने यह उपदेश करा है तुम देवता स्वभावसे भोगोंविषे लंपट हो यातें तुम इंद्रियोंका दमन करो। प्रजापतिरुवाच। हे देवाः! तुमने यथार्थ जानलिया है इस रीतिसे मनुष्योंकूं दकार अक्षरसे दानका उपदेश करा और असुरोंकूं ता दकार अक्षरसे ही दयाका उपदेश करा। यातें यह दैवी वाक् मेघकी न्याईं ददद यह तीन अक्षरों करि उपदेशकरे है। मुमुक्षुजनोंने दम दान दया यह तीन दकार अक्षरोंका अर्थरूप धारण करने योग्य है। ऐसे दमादि साधनोंका उपदेश करिके पश्चात् हृदयरूपसे तथा सत्यरूपसे ब्रह्मकी उपासना कही है। पुनः ता सत्य ब्रह्मकी आदित्यमंडलमें तथा दक्षिणनेत्रमें उपासना कथन करी। पुनः ता सत्यब्रह्मकी मन उपाधिकरूपसे उपासना कथन करिके पश्चात् विद्युत् ब्रह्म है ऐसे ध्यान विधान करा। पश्चात् वाणीकी धेनुरूपसे उपासना कथन करिके पुनः ता ब्रह्मकी जाठराग्निरूपसे उपासना कही। पश्चात् तिन उपासनाओंके फलोंकूं निरूपण करिके पुनः अन्नकी तथा प्राणकी ब्रह्मरूपसे उपासना कथन करी। पश्चात् प्राण उपाधिक आत्माके उक्थादि गुणों विशिष्ट रूपसे ध्यान कह्या। उक्थनाम देहादिकोंके उठानेवालेका है। ऐसे हृदयादि अनेक उपाधिविशिष्ट ब्रह्मकी उपासना कथन करि पुनः गायत्रीउपाधिविशिष्ट ब्रह्मकी उपासना कही। गायत्रीके चतुर्थ पादकरि कथन करा जो सूर्य भगवान् ता सूर्यभगवान्के आगे तथा अग्निदेवके आगे उपासक प्रार्थना करे है। ता प्रार्थनाके प्रकारकूं हम प्रथम ईशावास्यउपनिषद्में कथन करि आये हैं। इति बृहदारण्यके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॐ प्राणाद्यात्मने नमः। सप्तमाध्यामें शेष रही जे उपासना हैं तिन उपासनावोंका निर्णय या अष्टमाध्यायमें करा है। प्राण उपासना तथा पंच अग्निउपा-

सनाका प्रथम निर्णय करा है। पश्चात् देवयानमार्गका निर्णय करा है। तथा पापी पुरुषोंकूं तिर्यग्योनियोंकी प्राप्तिरूप तृतीय स्थानका वर्णन करा है। यह सर्व छांदोग्यउपनिषद्में हम कथन करि आये हैं। पश्चात् कर्मी गृहस्थके वासते धनकी प्राप्तिके साधन श्रीमंथनामक कर्मका निरूपण करा है। पश्चात् ता कर्मी गृहस्थके वासते ही पुत्रमंथनामक कर्मका विधान करा है पश्चात् या विद्याके सांप्रदायिकत्वके बोधनवासते ब्रह्मविद्याके प्रवर्त्तक ऋषियोंके वंशका कथन है। इति बृहदारण्यकेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॐ शांतिः शांति शांतिः। ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः। नमस्तस्मै भगवते शिवविष्ण्वादिरूपिणे। यत्कृपालवलेशेन सारमेतत्समुद्धृतम् ॥१॥ भाषाप्रबद्धोऽयमतीव रम्यो ग्रंथः सतां हर्षमिहातनोतु। स्वाम्यच्युतानन्दविनिर्मितो यः प्रयत्नतः सज्जनरंजनाय ॥ १ ॥ श्रीमानुपनिषत्साराभिधः सोऽयं विजृंभताम्। शिष्यप्रशिष्यतच्छिष्यद्वारा सर्वत्र भूतले ॥ २ ॥ दयामयामृतात्मानं वंदे शैलसुतापतिम्। यत्पदांबुजयोर्भक्तिर्लोके कामदुघायते ॥ ३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-श्रीमच्छंकरभगवत्पूज्यपादशिष्यसंप्रदायप्रविष्टश्रीस्वामिलक्ष्मणानन्दगिरिशिष्येण स्वाम्यच्युतानन्दगिरिणा विरचिते प्राकृतोपनिषत्सारे बृहदारण्यकसारार्थनिर्णयः ॥ १० ॥

इति दशोपनिषद्भाषांतरं समाप्तम्।

क्रय्यपुस्तकें (वेदान्तग्रन्थ)।

नाम.	की० रु० आ०
भागवत वेदस्तुति—श्रीमन्नारायण शास्त्रिकृत व्रजभाषाटीका-सहित.	०—३
मध्वविजय—छलारी नरसिंहाचार्यशिष्य शेषकृत 'मन्दोपकारिणी' नामक संस्कृत टीकासहित ...	४—०
मध्वविजय—नारायणपण्डितार्यविरचित। इसमें श्रीमध्वाचार्यके दिग्विजयप्रसङ्गसे अत्युत्तम वेदान्तरहस्यका वर्णन है.	०—८
महावाक्यविवरण—स्वामी रामकृष्णानन्दगिरिकृत भाषाटीकासहित। मुमुक्षुओंको आत्मज्ञानसम्पादनमें अत्यन्त उपयोगी.	०—१०
महावाक्यरत्नावली—दर्शनोपनिषत्सारभूता। वेदान्तियोंको अत्युपयोगी	०—४
यथार्थगीता—श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीकृष्णार्जुनसंवाद) अर्थात् क्षात्रधर्मविशेषव्याख्यान भाषाटीकासहित। इससे तृतीयाध्यायके ३९ वें श्लोकतक और १८ वें अध्यायके कुछ श्लोक ही प्रकरणानुकूल क्षात्रधर्मोचित उपदेश और वही यथार्थ गीता है यह माना गया है। ...	०—६
योगवासिष्ठ—संस्कृतटीकासहित खुला पत्रा. ...	२०—०
रामगीता—मूल.	०—१॥
रामगीता—भाषाटीका, पदप्रकाशिका, अनुवादसमुच्चय और विषमपदी सहित.	०—८
लघुवासुदेवमनन—इसमें मोक्षोपायादि आत्मानात्मविवेक, जीवके दुःखादिविचार, कर्मविचार, रागद्वे-	

विज्ञापन ।

नाम.	की० रु० आ०
षादि वृत्तिभेद, चित्तशोधन, आत्मविचार, प्राणादिविचार, सच्चिदानन्दस्वरूपत्व आदि विषय हैं.	०-८
विषयवाक्यदीपिका-अर्थात् विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त श्रीभाष्योदाहृतोपनिषद्वाक्यविवरण, श्रीरंगरामानुजमुनिप्रणीत टिप्पणीसहित	३-०
विवेकचूडामणि-(शंकराचार्यकृत) भाषाटीकासहित.	१-४
वेदान्तपरिभाषा-शिखामणि और मणिप्रभा नामक संस्कृतटीकाद्वयसहित	३-८
वेदान्तपरिभाषा--अर्थदीपिका नामक संस्कृतटीकासहित	१-८
वेदान्तपरिभाषा-निर्मल पं० स्वामी गोविन्दसिंहकृत सरल भाषाटीकासहित.	१-४
वेदान्तसार-संस्कृत मूल और संस्कृत टीका तथा भाषाटीकासहित। इसमें सम्पूर्ण वेदान्तका तत्त्वरूप सार वर्णित है.	१-०
वेदांतरामायण-भाषाटीकासहित। रामायणका वेदांतपक्षमें भावार्थ लिखा गया है.	१-८

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.